Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक : 377; 16 से 31 मार्च, 1985

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा :
सुमीता

राजेंद्र सिंह बेदी विशेषांक

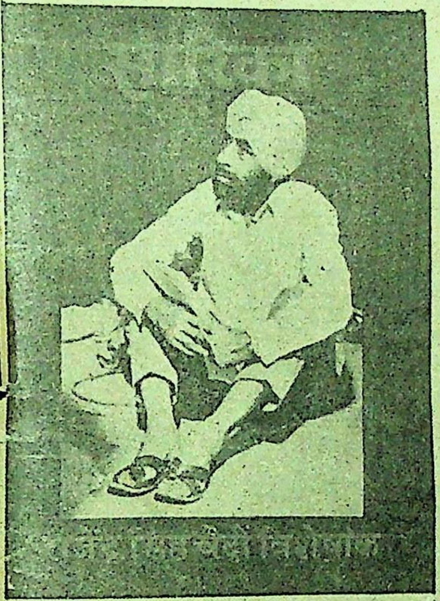

बेदी की कथा-रचनाएं

9. एक चादर मैली-सी
14. कल्याणी
18. लाजवंती
24. रहमान के जूते
29. मुक्तिबोध
36. मुअत्तिली
41. हज्जाम इलाहाबाद के
49. एक बाप बिकाऊ है
53. सिर्फ एक सिगरेट
64. गर्म कोट

बेदी स्मरण

27. लेकिन यह फिल्म अभी तक डिब्बों में बंद है : हरबंस सिंह बेदी
34. बेदी का कहानीकार रोटी को . . . : हंसराज रहबर
40. एक साहित्यकार की मौत डबल ट्रेजिडी होती है : ख्वाजा अहमद अब्बास
46. अस्फुट शब्दों में कसमसाता लेखक : उपेंद्रनाथ अश्क
63. प्रोड्यूसर की गाड़ी में आटे की बोरियां : प्रकाश पंडित
68. मेरे कू उनकी कमी बेचैन किये रहती है : त्रिलोचन पांडे
69. हम दोनों एक दूसरे को तसल्ली भर देते रहते थे : वीना बेदी
72. बेदी ने कला के साथ वेश्यावृत्ति नहीं की : ब्रजेश्वर मदान

लघु-रचनाएं

13. कलम और कागज का रिश्ता
21. पंज़ाबियत
22. शरणार्थी कैंप
23. मैं, किताबों से फिल्मों तक
26. बेदी कुछ खुशगवार बातें
31. हादसे
35. बेदी का खत रहबर के नाम
39. मेरी पहली कहानी
48. राजेंद्र सिंह बेदी : एक सिसिफ़स
51. फल
52. मंदिर
59. बेदी : और यह भी हुआ
67. गर्म कोट के बाद की लाल बत्ती
74. उसका अभिनय आत्मा की खुराक थी

स्तंभ

6. आपकी बात
8. अपनी बात

आवरण : श्रीमती वीना बेदी के सौजन्य से

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक : दो

जानकारी बजरिया मुखपृष्ठ

'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक—दो' का मुखपृष्ठ जो दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण जानकारी दे गया, वह विशेषांक की तमाम उत्कृष्ट रचनाओं से कम नहीं है. ज्ञानपीठ पुरस्कार में प्रदान किये जानेवाले 'प्रशस्ति-पत्र' की बुनियादी जानकारी विशेष उपयोगी है.

इस अंक की कथा-रचनाओं में 'पुरुष का भाग्य', 'ऊंट', 'बंद दरवाजे के सामने', 'बसेरा' व 'मेरी चंपा का वर' अपने उत्कृष्ट चिंतन, रोचक शैली एवं जीवन के सही विश्लेषण के प्रभावशाली ढंग के कारण बहुत अच्छी लगीं.

साक्षात्कार में भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी अशोक जैन के साथ लिया गया साक्षात्कार 'मैं समझता हूं, उनके मन में नोबेल पुरस्कार के चयनकर्ताओं के द्वारा भारतीय साहित्य की उपेक्षा देखकर काफी तकलीफ होती थी' कई जिज्ञासाओं एवं शंकाओं को दूर करने में सफल रहा.

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार के उपन्यास 'चिक्कवीर राजेंद्र' को पढ़ने की बहुत उत्कंठा थी. इसका संक्षिप्त रूपांतर पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई.

● सतीश उपाध्याय, मनेंद्रगढ़, सरगुजा

कहानियां और खून की रफ्तार

अंक : 373 मिला. एक बैठक में पूरा पढ़ना पड़ा. क्योंकि सारिका के लिए सभी सदस्य उत्सुक रहते हैं. लगभग सभी रचनाएं स्तरीय एवं बेजोड़ है. खास तौर से 'ऊंट', 'बंद दरवाजे के सामने', 'बसेरा', 'सहारा' और 'मेरी चंपा का वर' कहानियों ने खून की रफ्तार को तेज करते मन को झिंझोड़कर रख दिया. ऊंट का मुन्ने को अपने चीथड़े से बांधकर आत्महत्या करना, अपाहिज बूढ़े विश्वपति से परिवार का सुलूक, चणबकम-वैलेसामी का प्रणय एवं संभोग, याकव की सतीत्व रक्षा तथा लक्ष्मी की दारुण कथा ताजिंदगी भूलनेवाले प्रसंग नहीं हैं. बड़े आकार की सारिका अधिक सामग्री एवं सज्जा के कारण और लुभावनी हो गयी है.

आगामी अंक से बतंगड़ की शुरुआत सारिका प्रेमियों की संख्या में खासी बढ़ोतरी करेगा. आशा है 'बतंगड़' स्थायी रहेगा.

● श्री गोविंद शर्मा, कोरबा (म. प्र.)

सामाजिक ढांचा और नयी राह

'बसेरा', 'सहारा' और 'मेरी चंपा का वर' बहुत ही हृदयस्पर्शी और उपदेशात्मक कहानियां हैं. अच्छी रचनाएं एक तरफ जहां सामाजिक ढांचों को उभारती हैं—वहीं समाज को नयी राह भी दिखाती हैं, हतोत्साहित होने से रोकती हैं. वैसे तो ये कहना कि सारिका का हर अंक विशेषांक ही होता है—कोई नयी बात नहीं होगी, परंतु इतना जरूर है कि ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण भूली-बिसरी कृति अगर कहीं देखने को मिल पाती है तो वो मात्र 'सारिका' की ही उपलब्धि होती है.

● परवेज अहमद, भागलपुर (बिहार)

कुछ सुझाव

'सारिका' के बदलते हुए स्वरूप से प्रभावित हूं. सारिका अपने गौरवशाली अतीत को याद करते हुए, अब एक नये क्षितिज की ओर उन्मुख है.

सारिका का यह दूसरा 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार अंक' पहले अंक से भी ज्यादा अच्छा और महत्वपूर्ण बन पड़ा है. निःसंदेह यह विकास का दूसरा कदम है.

मैं चाहता हूं, सारिका विश्व-कथाजगत की एक महत्वपूर्ण पत्रिका के रूप में अपनी पहचान करे. इसके साथ ही, भारतीय भाषाओं के विभिन्न कथा क्षेत्रों को भी अपने आप में समेट ले. इस सब के लिए मेरे कुछ सुझाव हैं.

पहली बात तो यही कि हम 'सारिका' में विश्वप्रसिद्ध उपन्यासों के अंश या उनका हिंदी में धारावाहिक प्रकाशन चाहते हैं. कम-से कम हर अंक में किसी विश्व प्रसिद्ध उपन्यास पर हिंदी में इस प्रकार सामग्री यदि सारिका में मिलने लगे तो कितना अच्छा हो.

ठीक इसी तरह प्रत्येक अंक में विभिन्न भारतीय भाषाओं में से कम-से-कम एक कहानी हिंदी में प्रकाशित कर सारिका को समूचे भारतवर्ष की मानसिकता का प्रतिबिंब बना सकते हैं.

कभी सारिका में एक कॉलम आता था, 'आइने के सामने.' क्या इस तरह हर अंक में हम पुनः किसी प्रसिद्ध लेखक को सारिका के माध्यम से भीतर तक जान सकेंगे?

विश्वभर की प्रसिद्ध फिल्म कथाओं पर सारिका द्वारा कुछ नियमित जानकारी मिल सके वह भी उत्तम होगा.

और अंत में एक बात कहूं, सारिका फिर से 'बहुरंगी' हो जाये तो क्या कहने.

● अश्वनीकुमार दूबे, अकलतरा

मूल्य वृद्धि और हीरे की दीप्ति

'पुरस्कारों का कोई न कोई...' साक्षात्कार बहुत अच्छा लगा. अज्ञेयजी का यह कथन '...और आप साहित्यकार की सामर्थ्य कम करना चाहते हैं या उसे बढ़ाना चाहते हैं—यह तो आपको गंभीरता से सोचना ही होगा', अपने में बहुत बड़ा अर्थ समेटे है. उनका हिंदी और अंग्रेजी की पत्रकारिता से संबंधित कथन उचित है.

स्व. गोयलीय का लिखा संस्मरण 'वह इंसा जो मुसीबत...' तथा दिनकर की डायरी 'आदमी अपना जादूगर आप बन सकता है' अधिक प्रभावोत्पादक व प्रेरणादायी रहीं. 'एक सपने के धन का उपयोग' में डा. सरोजिनी प्रीतम और डा. चतुर्वेदी दोनों की परिचर्चा बड़ी ही रोचक रही.

'सारिका' के ये दोनों विशेषांक संग्रहणीय हैं: मूल्य वृद्धि तनिक भी नहीं अखरी, क्योंकि हीरे की दीप्ति कम नहीं हुई है.

● अखंडप्रताप सिंह, चंदौपुर (उ. प्र.)

प्रशंसा बनाम चापलूसी

आपने नव वर्ष 1985 में बेशकीमती उपहार देकर अद्वितीय कार्य किया है, शुरू से आखिर तक पत्रिका की प्रशंसा करूंगा तो चापलूसी होगी, लेकिन ये दोनों पाक्षिक अंक न होकर महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं. जिन्होंने न छूनेवालों को भी गले लगाने के लिए मजबूर कर दिया है.

'एक सपने के धन का उपयोग', (परिचर्चा) धन के उपयोग करने के ढंग को नहीं बल्कि साहित्यकारों के अंदर की कुंठा और मूलभूत जीविकोपार्जन की समस्या को चित्रित करती हैं.

● राजकिशोर चुन्नू, इलाहाबाद

पुरस्कार और राष्ट्रीय एकीकरण

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास 'चिक्कवीर राजेंद्र' के प्रकाशन के लिए बधाई स्वीकार करें. लक्ष्मीचंद जैन का साक्षात्कार यह स्पष्ट कर देता है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार का चयन कितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतर्कता एवं निष्पक्षता से होता है. नोबेल पुरस्कार में जिस प्रकार एशिया, विशेषकर भारत के लेखकों की उपेक्षा हुई है, उस कमी की पूर्ति करने में ज्ञानपीठ पुरस्कार ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है. विभिन्न भारतीय लेखकों की रचनाओं से पाठकों को परिचित कराकर ज्ञानपीठ ने राष्ट्रीय एकीकरण का मार्ग भी प्रशस्त किया है. इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि ज्ञानपीठ पुरस्कार आज साहित्य के क्षेत्र में भारत का सबसे अधिक सम्मानित पुरस्कार है.

● **सुजाता सक्सेना, रायबरेली**

रोजी-रोटी और बसेरा

24 जनवरी को ज्ञानपीठ विशेषांक : दो भी खरीद लाया. आज मैं सोचता हूं **सारिका** के इन पन्नों से मेरी जिंदगी के 25 वर्ष जुड़े हुए हैं. विशेषांक पढ़कर बेहद प्रसन्नता हुई. हर पखवारे में जरूरी मुलाकात का क्रम बहुत अनोखा है. 25 वर्ष से सारिका महत्वपूर्ण ज्ञान अपने पाठकों को भेंट कर रही है. **'चिक्कवीर राजेंद्र', 'पुरुष का भाग्य'** और **'ऊंट'** कहानियां अत्यंत रोचक और मर्मस्पर्शी लगीं.

मगर **'बसेरा'** कहानी के लेखक **अखिलन** ने मेरी जिंदगी की सच्चाई को रेखांकित किया है. कहानी का मुख्य पात्र जैसे रोजी-रोटी की तलाश में एक गांव से दूसरे गांव आता है, हम भी रोजी-रोटी की तलाश में परिवार सहित बिहार से जम्मू आये हैं.

● **रामदास गुप्ता, जम्मू**

गोदान, गणदेवता और माटी मटाल

ज्ञानपीठ ने भारतीय भाषाओं के दुर्लभ साहित्य को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया और **सारिका** ने ज्ञानपीठ से संबंधित विविध सामग्री को सामान्य पाठकों तक लाने का श्रेष्ठ कार्य किया. बधाई. टंडनजी का गोदान, गणदेवता और माटीमटाल का तुलनात्मक विवेचन सोचने के लिए एक महत्वपूर्ण दिशा देता है. एक ही समय में देश के भिन्न भागों में लिखे गये साहित्य के तुलनात्मक विवेचन से किसी भी कालखंड में भारत के अलग-अलग भागों की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के एकात्मक तादात्म को उभारा जा सके, ऐसी कोशिश की जानी चाहिए या यदि समकालीन इकाइयों में किसी प्रकार की मूलभूत विभिन्नता है या रही है तो उसे भी पहचानकर रेखांकित करना चाहिए, तभी उसे राष्ट्रीय धारा में जोड़े जाने के प्रयास किये जा सकेंगे.

● **राणाप्रताप सिंह, रोहतक**

हिंदी पर अंग्रेजी की चिंदी

'सारिका' मेरी प्रिय पत्रिका है. हिंदी पत्रिकाओं में मैं इसे सर्वोत्तम मानता हूं. इसमें कोई कमी दिखाई देने पर बेहद अफसोस होता है. जब मैं सारिका (वर्ष 25, अंक 373, जनवरी, 85 द्वितीय पक्ष) को पढ़ रहा था तो मैंने देखा कि हर लेखक के परिचय विवरण में सारे दिनांक अंग्रेजी में लिखे हुए हैं. एक बहुत ही अच्छी हिंदी भाषा की पत्रिका में क्या यह शोभा देता है?

● **सिद्धार्थ शंकर पांडेय, मालदह**

साहित्यकार : पार्टी और औजार

इस अंक में सम्मानित कवि **अज्ञेय** ने एक विचारणीय प्रश्न उठाया है कि "आप साहित्यकार की सामर्थ्य कम करना चाहते हैं या उसे बढ़ाना चाहते हैं?" इसे जरा चालू मुहावरे से हटकर गंभीरता से लेना ही होगा चाहे वो सृजनकार साहित्य में लगे रचनाकर्मी हों या साहित्य के विचारशील पाठक. यह प्रश्न चूंकि राजनीति को केंद्र में रखते हुए उठाया गया है, अतः यह प्रश्न उन राजनीतिक संगठनों को भी कठघरे में खड़ा करता है जो या तो साहित्यकार को मात्र अपनी छद्म प्रगतिशीलता के दिखावे के लिए अपनी तरफ खींचता है या अपनी दृष्टि वाले सामाजिक यथार्थ को गज-इंच से नाप-जोखकर साहित्य के रूप में प्रस्तुत करनेवाले पार्टी लाइन पर चलनेवाले औजार सदृश तथाकथित साहित्यकार के लिए.

राजनीति शायद ही कभी जनता को समकालीन सच की वस्तुस्थिति को ईमानदारी से समझा सके, क्योंकि उसके भी अपने निहित स्वार्थ होते हैं. फिर वह राजनीति मध्ययुगीन शासकों की निरंकुशता की रही हो या आधुनिक दृष्टिकोण रखने वाले स्टालिन, माओ या इंदिरा गांधी की ही प्रगतिशीलता की रही हो. सबने कमोबेश अंध व्यक्तिवाद की शरण में जाकर अपने लिए इतिहास के कुछ पन्ने सुनहरे किये तो कुछ काले भी कर लिये. सो, इस झूठ के अंधेरे में सच की जो थोड़ी बहुत झलक हमें मिलती है, वह साहित्य से ही. वैसे साहित्यकार का भी किसी दार्शनिक की तरह इतना आत्मसजग होना भी ठीक नहीं कि वह आसपास की स्थितियों को रेखांकित करने के जंजाल से ही मुक्त हो जाये. उसे तो बार-बार अपने को उस कीचड़ में उतारना ही होगा, जिसमें इसी धरती के अधिकांश लोग विभिन्न कारणों से डूबे हैं. उसे सिर्फ परिस्थितियों को विश्लेषित कर एकतरफा निर्णय नहीं देना है वरन् उसे आदमी के कमीनेपन को भी पकड़ना होगा, जो उन परिस्थितियों को बिगाड़ता है और साहित्यकार को इस बात से भी अनजान नहीं रहना होगा कि ऐसा कोई भी लक्ष्य नहीं है, जिस तक केवल एक ही रास्ता जाता हो.

● **श्रीप्रकाश, बलिया**

क्षेत्रवाद और राष्ट्रीय स्तर का हाथी

मैं नहीं समझता कि प्रदेशवाद से साहित्य का प्रयोजन नष्ट हो जाता है, जैसे कि **जैनेंद्रजी** समझते हैं. वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाना 'जू-ए-शीर' से कम नहीं है. जो बना पाते हैं उनकी पृष्ठभूमि में भी कोई न कोई राजनीति कार्य करती है. दल के दलदल को पार किये बिना पार पड़ा है किसी का. क्षेत्रवाद इसलिए बढ़ता है कि राष्ट्रीय स्तर के हाथी (क्षमा करें) पैरों में आये नन्हें-मुन्ने पौधों को रौंदने में अपनी शान समझते हैं और अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक. प्रादेशिक अकादमियां (अपनी तमामतर धांधलियों के बावजूद) पौधों को पनपने का अवसर देती हैं, तो बुरा क्या है? वैसे **साक्षात्कार** में जैनेंद्रजी के अन्य विचार संतुलित लगे.

सारिका ने आकार बदला, अच्छा लगा. भारतीय साहित्य के मनीषियों को विशेषांकों में संग्रहीत करने का आपका प्रयास स्तुत्य व पाठकों के मनोनुकूल है, संग्रहणीय तो है ही. गंभीर व अनूठे संयोजन का सिलसिला जारी रहे.

● **हसन जमाल, जोधपुर**

परिचर्चा : परीचर्चा

तो आज पता लगा **अमृताजी** की सुंदर रचनाओं का राज. उन्हें इतने सुंदर सपने जो आते हैं, और इतने आते हैं. अवश्य ही वे अपने अद्भुत सपनों को अपने पात्रों में ढाल देती हैं और अगर वे ऐसा करतीं तो एक अति सुंदर महाग्रंथ तो बन ही जायेगा उनके तिलस्मी सपनों का. मेरी उनको यह नाचीज-बिल-सी राय है कि कभी समय मिले तो हमारे लिए इन सपनों की एक किताब एडिट कर दें. उनके सपने ने फ्रायड और जुंग में अंतर कितनी आसानी से समझा दिया. उतनी आसानी से तो अच्छे-अच्छे मनोवैज्ञानिक नहीं समझा पाते. हां उनका एनालाइजेशन काफी गलत लगता है, 78 में उन्हें अपनी मौत पास लगी थी. आज पांच-छह साल बीत गये और अभी तो उन्हें ढेर सपने देखने हैं अपने पाठकों के लिए. 'एक सपने के धन का उपयोग' परिचर्चा से कहीं ज्यादा व्यंग्य रही, क्योंकि शामिल लेखकगण किसी भी हालत में ज्ञानपीठ पुरस्कार नहीं पा सकते, ऐसा लिखा ही नहीं है. उन्होंने फिर इतनी स्तरीय पठनीय सामग्री देने के साथ ऐसी परिचर्चा की आवश्यकता भी न थी.

● **पंकज शर्मा, अलीगढ़**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

सारिका अब तक देश-विदेश के बारह महान रचनाकारों पर विशेषांक निकाल चुकी है. ये व्यक्तित्व प्रधान विशेषांक पाठकों द्वारा काफी सराहे गये हैं. यह विशेषांक उसी क्रम की तेरहवीं कड़ी है. राजेंद्र सिंह बेदी का व्यक्तित्व बहुस्तरीय और बहुकोणीय रहा है. उनकी जिंदगी भी अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग स्तरों में बंटकर गुजरी. लाहौर के एक पोस्ट ऑफिस में वह काफी अरसे तक क्लर्क की हैसियत से काम करते रहे. देश विभाजन के समय वह कश्मीर आ गये और कश्मीर से दिल्ली होते हुए बंबई पहुंचे. लाहौर में उनके पड़ोसी डॉ. नजीर अहमद थे. उनका कहना है कि वह भारत सिर्फ बेदी की वजह से आते हैं. बंबई में बेदी साहब ने फिल्मों को अपनी आय का मुख्य स्रोत बनाया. उनके द्विअर्थी डायलाग लोगों की जबान पर चढ़कर बोलते थे.

उर्दू कथा साहित्य में बेदी की देन मात्रा में कम होते हुए भी बहुत महान है. एक जमाना था जब बेदी की 'एक चादर मैली सी' ने उर्दू कथा-जगत में तहलका मचा दिया था और कृश्नचंदर ने उन्हें बधाई देते हुए कहा था—'क्या चीज लिख दी है कमबख्त तूने.' बेदी ने पुरमजाक और जिंदादिल तबीयत पायी थी. अक्सर देखा गया है कि लोग दूसरों पर तो मजाक कर लेते हैं, लेकिन खुद पर नहीं कर पाते, जबकि बेदी ऐसे शख्स थे, जो सबसे ज्यादा खुद पर और अपनी कौम पर मजाक कर सकते थे और अपने आप पर जी भर कर हंस सकते थे. बेदी को अच्छी चीज हमेशा पसंद आयी—चाहे वह औरत हो, चाहे मजाक और चाहे अफसाना. इसी पसंद के कारण वह विवाद के विषय भी बने रहे.

बेदी बहुत कम लिख पाते थे और जो भी लिखते थे, वह लासानी होता था. उनके लिए महत्वपूर्ण रचनाओं की संख्या नहीं थी, उनकी गुणवत्ता और अर्थवत्ता थी. यही बात किसी भी सही रचनाकार पर लागू हो सकती है और होनी भी चाहिए. मुझे याद है कि जब भी बेदी की कोई कहानी प्रकाशित होती थी तो लोगों के जहन में सर्दी की गुनगुनी धूप की तरह बस जाती थी. साहित्य मर्मज्ञ और साहित्य प्रेमी दिनों, महीनों तक उस पर चर्चा किया करते थे. सारिका के जिस अंक में बेदी की कहानियां छपती थीं, उस अंक पर सबसे अधिक डाक आती थी और 99 प्रतिशत पत्र बेदी की कहानी को लेकर ही होते थे. व्यक्ति चित्र और संस्मरण लिखने में मंटो के बाद लोग बेदी और कृश्नचंदर को ही याद करते हैं. मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि हिंदी में बेदी की जितनी भी चर्चित कहानियां हैं, उनमें से अधिकांश सारिका ने प्रकाशित की हैं.

बेदी पर सोचना एक व्यक्ति पर सोचना नहीं है अपितु एक संस्था पर सोचना है, क्योंकि बेदी अपने आप में एक संस्था थे. अपने अंतिम दिनों में उनकी हालत ऐसी हो गयी थी जैसे उन्हें जिंदगी में कभी हंसना न आया हो. उन्हें एक तरह से गुम हो जाने की आदत पड़ गयी थी. उनकी पुत्रवधू ने मुझे बताया था कि एक बार वह किसी परिचित जगह जाने के लिए निकले और आधी बंबई का चक्कर लगाकर वापस लौट आये. उन्हें यही ध्यान नहीं आया कि आखिर जाना कहां था. उनकी इस स्थिति से उन लोगों को तकलीफ का अंदाज लगाया जा सकता है जो थोड़ा-सा भी बेदी को जानते हैं.

जब सारिका का मंटो विशेषांक निकला था, तभी बेदी अंक की ख्वाहिश पैदा हो गयी थी. आज मुझे इस बात की बेहद तकलीफ है कि यह अंक उसी समय क्यों नहीं निकला. यदि बेदी के सामने यह अंक निकला होता तो इसका स्वरूप ही कुछ और होता. फिर भी हम यह अंक बेदी के देश-विदेश में फैले तमाम पाठकों और प्रेमियों को समर्पित कर रहे हैं.

सवाल रचनाओं की संख्या का नहीं, उनकी गुणवत्ता और अर्थवत्ता का है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदी की कथा रचनाएं : एक

एक चादर मैली सी

आज की शाम डूबते सूरज का गोला कुछ अधिक ही लाल था, क्योंकि आसमान के कोटले में किसी निर्दोष की हत्या हो गयी थी और उसके खून के छींटे नीचे बकाइन के पेड़ पर पड़ते हुए तिलोके के आंगन में टपक रहे थे. टूटी-फूटी कच्ची दीवार के पास, जहां घर के लोग कूड़ा फेंकते थे, डब्बू मुंह उठा-उठाकर रो रहा था. बड़ी जेल के कारिंदे दोपहर के आसपास कुत्तों को गोली डालने आये तो डब्बू बच गया, क्योंकि तब वह तिलोके के आंगन में घनौंची के पास पड़ा सो रहा था. कुछ देर बाद वह उठकर अकड़ा, मुंह खोलकर जम्हाई ली और फिर बाहर चला गया. तब तक उसकी चहेती कुतिया बौंड़ी की आंखें कांच हो चुकी थीं. उसके पास पहुंचकर डब्बू ने एक-दो बार उसे सूंघा और फिर एक ओर को चल दिया, जैसे कोई बात ही न हुई हो. तिलोके की पत्नी रानो और उसकी पड़ोसन चन्नो एक दूसरे का मुंह ताकने लगीं.

चन्नो ने अपनी कीकेवाली नाक पर उंगली धरी, फिर लंबी सांस भरी और बोली, "हाय, मर्द की जात. . .सब एक सी-होती है."

रानो ने चन्नो की ओर देखा और मुस्कराकर बोली, "अरी, तेरा डब्बू ऐसा तो नहीं! " इसके उत्तर में चन्नो ने रानो को एक मर्दानी गाली दी और फिर अपने आप लजाकर घर की ओर भाग गयी. रानो भी अंदर पहुंचकर काम में जा लगी.

हिंदुस्तान को रीति-रिवाजों और प्रथाओं की खान कहा जाता है. पंजाब के गांवों में ऐसी ही एक प्रथा है-- विधवा स्त्री पर चादर डालना, लेकिन कभी-कभी कितनी भयानक हो उठती हैं ये प्रथाएं, इसी का मार्मिक अंकन करता साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता उपन्यास का कथासार--

---

चौधरी मेहरबानदास से रानो को पता नहीं किस बात का बैर था. शायद इसलिए कि रानो के घरवाले को बदमाशी की शिक्षा मेहरबान के हाथों ही मिली थी. फिर गांव की औरतों की बात भी अजीब है कि अपने मर्द का कुछ पता नहीं, दूसरों के मर्दों का खाया-पिया सब मालूम. रानो अपने घरवाले तिलोके के बारे में नवाब इक्केवाले या गुरुदास की पत्नी से सुनती तो जलभुनकर राख हो जाती. राख नहीं, कोयला, क्योंकि अंदर से रानो बहुत पक्की थी. तिलोका घर लौटता तो वह उससे लड़ती, उसे नोचती, काटती और फिर आप ही मार खाती हुई एक ओर जा बैठती और सोचती--एक तरह से अच्छा ही है, जो बाहर ही गुस्सा निकाला आता है अपना. . .मेरे जी का जंजाल तो नहीं.

लुंडे पीपल के नीचे एक साईंबाबा था--जती-सती, जिसके संबंध में यह बात प्रसिद्ध थी कि उसने लोहे का लंगोट पहन रखा है और नहीं जानता कि औरत क्या होती है, यद्यपि चौबीसों घंटे और आठों पहर उसके इर्द-गिर्द औरतों का जमघट लगा रहता. कोई बेटा मांगती, कोई अठराह की दवा, पर अधिकांश अपने पुरुष को वश में करने के लिए टोटके पूछने आतीं. रानो भी तिलोके की मार से बचने के लिए उससे एक टोना ले आयी और इस ताक में लग गयी कि कब तिलोका कच्चा दूध मांगे और वह उसे दूध में घोलकर पिला दे और फिर पास न आने दे, पर हफ्तों तक तिलोके ने कच्चा दूध न मांगा, न पिया.

तिलोका रोज नहीं तो दूसरे-तीसरे मिट्ठे मालटे की एक बोतल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौधरी मेहरबान दास के यहां से लेकर आता था. रानो दुनिया जहान के ऐबों को माफ कर सकती थी, पर शराब को नहीं. वह समझती थी कि शराब ऐसी सौत तो दुनिया में नहीं. मर्द चाहे अपना सब कुछ किसी दूसरे पर लुटा आये, तब भी उसका कुछ न कुछ अपने लिए बच ही रहता है, लेकिन शराब. . .मां री मां, उससे इतनी बास आती है कि आदमी मुंह भी पास नहीं कर सकता. तिलोका दिनभर नवाब, इस्माइल, गुरुदास आदि के साथ इक्का हांकता, लेकिन शाम के वक्त नसीबों वाले अड्डे पर पहुंचकर इस ताक में खड़ा हो जाता कि कोई भूली-भटकी सवारी मिल जाये तो वह उसे मेहरबान की धर्मशाला में छोड़ दे. यह काम वह मेहरबान दास के लिए करता, लेकिन फिर भी बदनामी उसकी होती थी. बदले में पाता था वह एकाध चांप और मिट्ठे माल्टे की बोतल.

कोटला जात्रा की जगह थी. चौधरी की हवेली के बाजू में देवी का मंदिर था, जो कभी काल भैरव के चंगुल से बचती-बचाती उस गांव में आ निकली थी और उस जगह, जहां आज एक मंदिर खड़ा था, उसने घड़ी दो घड़ी विश्राम किया था और फिर भागती हुई जाकर सामने सियालकोट, जम्मू की पहाड़ियों में गुम हो गयी थी. अब भी किसी धुली हुई सुबह को कोटले से उत्तर पश्चिम की तरफ देखा जाये तो दूर क्षितिज पर किसी ऊंट का कोहान-सा नजर आता है. वही वैष्णव देवी का पहाड़ है.

तिलोके ने आज जिस जात्रिन को मेहरबान दास की धर्मशाला में छोड़ा, वह मुश्किल से बारह-तेरह वर्ष की होगी. देवी के पास तो अपने आपको बचाने के लिए त्रिशूल था, जिससे उसने अंत में भैरव का सिर काटकर अलग कर दिया, लेकिन उस भोली जात्रिन के पास सिर्फ दो प्यारे-प्यारे हाथ थे, जिन्हें वह भैरव के सामने जोड़ सकती थी, उनसे आत्म रक्षा नहीं कर सकती थी. फिर शरीर जैसे तरबूज के गूदे से बना हुआ, जो मेहरबान चौधरी की छुरी से न बच सकता था. शायद इसीलिए आज की शाम डूबते सूरज का गोला कुछ अधिक ही लाल था.

घर पहुंचा तो तिलोके के जुड़वां बेटे अभी तक बकाइन के नीचे, कोयले से लकीरें खींच बारहगटाल खेल रहे थे. उधर बाप की आवाज आयी तो बड़े ने पढ़ना शुरू कर दिया—'वह देखो उल्लू बोला.' इन जुड़वां बच्चों—बंते और संते से बड़ी, पहलौठी की एक लड़की थी, जिसका नाम तिलोके और रानो ने बड़ी रख दिया था. वह दिनभर कामकाज में मां का हाथ बंटाती और जब कुछ न हो तो सबसे छोटे बच्चे को चुमकारती-खिलाती. आस-पास की चीजें, गन्नों, बीर, अभी, नाक की मछली, लुंडा पीपल, तुरइयां, जेठ, बस उसकी दुनिया इतने तक सीमित थी, लेकिन तिलोके का छोटा भाई मंगल तेजी से समझदार हो रहा था—बेकार और बदकार. दिन भर इसे छेड़, उसे छेड़. घर आकर यों खाना मांगता, जैसे सब उसी की कमाई का है. और भाभी रानो भीतर से खुश, बाहर से गुस्से में कहती, "देती हूं मुस्टंडे, तेरे लिए ही तो बना है."

रानो जब ससुराल आयी, मंगल पांच छह साल का था. रानो के मां-बाप बेहद गरीब थे. शायद इसीलिए उन्होंने चिथड़ों में लिपटी हुई अपनी बेटी का नाम रानी रख दिया था. तिलोके के हाथ में रानी का हाथ देकर वे परलोक सिधार गये. रानी जब कोटले में आयी तो सास के रूप में मां जिंदा मिल गयी और बाप के रूप में ससुर हजूर सिंह और देवर मंगल, जो इतना छोटा था कि बड़ी के पैदा होने पर उसके साथ दूध पीने के लिए मचल गया. कुछ हंसती, कुछ शरमाती हुई रानो ने अकेले में उसे पास बिठाकर कुर्ते में से छाती निकाली और उसकी ओर बढ़ायी तो वह भाग निकला.

मंगल को रानी ने ही पाला. दुनिया की नजरों में वह उसका देवर था, लेकिन रानी की निगाहों में उसका सबसे बड़ा बच्चा. वह भी रानी को भाभी मां समझता और अपनी सगी मां को ताई कहता. तब तो रानी उसके कान भी उमेठ लेती थी, धौल-धप्पा भी कर लेती थी, लेकिन अब पिछले कुछ वर्षों से उसकी दुनिया ही बदल गयी थी, जिसका असली कारण यह था कि आमदनी के रास्ते बंद हो गये थे.

इधर तिलोका हफ्ते में तीन दिन घर ही पड़ा रहता. उधर हजूर सिंह की आंखों में मोतियाबिंद उतर आया. वह हमेशा चारपाई पर बैठा कानों से देखने की कोशिश करता और उसकी आंखों के पपोटे सुबह पोखरे में नहाने वाले कबूतरों की तरफ फड़फड़ाते रहते कि एक दिन शराब को लेकर तिलोके ने रानी को धुनना शुरू कर दिया. कहां तो मंगल सब कुछ बड़े संयम से चुपचाप देख रहा था और कहां तो लपककर बड़े भाई का हाथ पकड़ लिया और गाली देते हुए बोला, "चला, अब चला हाथ कि सारी शहजोरी एक औरत पर ही खत्म हो गयी!"

तिलोके ने मंगल की मजबूत पकड़ से अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा की, कुछ बकने-झकने भी लगा, लेकिन मंगल की आंखों में खून देखकर खामोश हो गया. मंगल ने इसी पर बस नहीं की. आगे बढ़ उसने जोर से बोतल को ठोकर मारी तो वह टूट गयी. रानी अंदर बक्से में अपने कपड़े भरने लगी.

कपड़े थे ही कितने! पल भर में बक्सा तैयार करके रानी बाहर आती हुई बोली, "लो जी संभालो अपना घर. यहां एक मैं ही मेहमान थी, सो जा रही हूं. तुम ले आना किसी और को जो करे-भरे भी और तुम्हारी गालियां भी सुने. मार खाये और हड्डियां भी तुड़वाये. . . बच्चे. . .मैं समझूंगी पैदा ही नहीं हुए, समझूंगी मर गये."

और वह बाहर की अत्यधिक लंबी-चौड़ी दुनिया की ओर चल दी, लेकिन मंगल ने पीछे भागते हुए रानो का हाथ थाम लिया और बोला, "भाभी, कहां जायेगी."

"जा-जा न, देखता हूं कहां जाती है." तिलोके ने कहा.

"कहीं भी जाऊं, तुझे इससे क्या. . .गांव भर में मेरे लिए कोई जगह नहीं, धर्मशाला तो है."

"धर्मशाला?" तिलोका चौंक पड़ा. एकदम आगे बढ़ते हुए उसने रानी का बक्सा पकड़ा और बोला, 'चल मेरे पीछे, घर."

स्वाभिमानी रानो थोड़ा-सी लगड़ी-झगड़ी, लेकिन वह तो खुद भी यही चाहती थी. और अब जाने का लाभ भी क्या था. बोतल तो टूट ही चुकी थी.

तिलोके के दिमाग में अब तक झगड़े की बजाय वह जात्रिन घुसी हुई थी और रात भर घुसी रही. अंधेरे में वह स्वयं मेहरबान दास था और रानी जात्रिन. तिलोके ने उसकी तरफ हाथ बढ़ाया तो रानी ने झटक दिया. तिलोके चिरौरी पर उतर आया. रानो सुबह जब उठी तो उसका अंग-अंग दर्द कर रहा था. जब तिलोका उठा तो रानो घर का आधा काम कर चुकी थी.

तभी मंगल अपनी अलबेली चाल में पास से गुजरा. भाई के पास पहुंचा तो दोनों गैरों की तरह एक दूसरे को देखने-गुर्राने लगे. मंगल ने कोई जवाब न दिया.

कुछ देर बाद इक्का सवारियों समेत घर के सामने खड़ा था और रानो हमेशा की तरह मोटी-मोटी चार रोटियां एक मैले कपड़े में लपेटकर तिलोके को दे रही थी. रानो ने एक नजर इक्के को देखा, जहां बारह-तेरह बरस की एक लड़की कुछ होश और कुछ बेहोशी में बैठी थी. रानो ने पूछा, "क्या हुआ इसे?"

"मिर्गी." तिलोके ने जवाब दिया.

रानो ने नाक पर उंगली रखते हुए कहा, "मिर्गी."

"हां मिर्गी, जो हर औरत को पड़ती है. रात तुझे भी पड़ी थी, जिसका इलाज जूता है या वह सांटा, जो मैं आज लौटकर तुझ पर तोड़ूंगा." सुनकर रानो की टांगें कांपने लगीं. तिलोके के जाते ही उसने सांटा घर से गायब कर दिया.

रानो की खुशी का ठिकाना न रहा. जब उसने चौधरी मेहरबान दास और उसके भाई घनश्याम को हथकड़ियां लगे बाजार से गुजरते देखा. साथ ही अठारह उन्नीस वर्ष का एक लड़का भी था, जिसके कपड़े खून से तरबतर थे. मंदिर की ओर हाथ जोड़ते हुए रानो बोली.

"शुक्र है देवी मां, आज तूने सुन ली मेरी. आज का दिन तो धन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया मेरे लिए.

तभी तिलोके का इक्का दिखाई दिया, जिसे गुरुदास चला रहा था. इक्के के अंदर कोई लेटा हुआ था. रानो ने सोचा, शायद उसी मिर्गी वाली लड़की को कुछ हो गया. फिर सब सवारियां मिलकर उस लड़की को उतारने लगीं. उसे पास लाकर जब कपड़ा हटाया गया तब रानो एकदम चिल्लायी, "नहीं."

तिलोके का कत्ल हो गया था. खानकाह वाले कुएं के पास उस तरुणी जात्रिन के भाई ने उसे पकड़ लिया और उसके गले में दांत गाड़ दिये और तब छोड़ा, जब उसके बदन में खून की एक बूंद भी न रही.

आस-पास के पंद्रह बीस गांव फड़क उठे. कोटले भर में कोहराम मच गया.

हजूर सिंह की आंखों में परमात्मा ने अकस्मात रोशनी दे दी बेटे की लाश देखने के लिए. जिंदा गश खाकर बेहोश हो गयी. रानो बाहर दौड़ी, फिर अंदर चली गयी. फिर बाहर उठ दौड़ी. चन्नो ने उसे पकड़ लिया और उसके हाथ दीवार से मारकर चूड़ियां तोड़ने लगी. अब रानो के बांध टूटे. वह रो रही थी, बैन कर रही थी और सिर पर दोहत्थड़ मार रही थी.

चौधरी मेहरबान दास, उसके भाई घनश्याम और बाबा हरिदास सब को सात-सात साल सख्त कैद की सजा हो गयी थी, साथ ही जात्रिन के बड़े भाई को भी इतनी ही, लेकिन बाबा हरिदास को इतनी लंबी सजा क्यों? उसे इसलिए कि उसका लोहे का लंगोट जीर्ण-शीर्ण कपड़े का निकल आया.

रानो एक पल के लिए भी वहां न रहती, लेकिन पापी मन, जो एक जाले की तरह बच्चों के साथ लिपटा हुआ था, उसे कुछ भी न करने देता. जितना जिंदा उसे घर से निकालने की कोशिश करती, उतना ही रानो उसके पांव पकड़ती. जो चीजें उसके शरीर में कम हो रही थीं, वही बड़ी लड़की के शरीर में तेजी से बढ़ने लगीं. रानो जितना बड़ी को छिपाने की कोशिश करती, उतना ही उसका जोबन खुलकर सामने आ जाता.

और नसीबों वाले अड्डे पर इक्का हांकने वाला मंगल भूल ही जाता कि घर के प्रति भी उसका कोई कर्तव्य है, जहां सब लोग अब एक ही जून खाना खाने लगे हैं. वह तो सलामती के इश्क में मगरूर था. तभी चन्नो ने रानो को समझाया कि तू मंगल पर चादर डाल ले, लेकिन यह सोचकर ही रानो कांप गयी, क्योंकि वह उससे बहुत छोटा था और उसने उसे बच्चे की तरह पाला था.

चन्नो ने पूरनदेयी से बात की. पूरनदेयी ने अपने पति ज्ञानचंद से और ज्ञानचंद ने रानो के सास-ससुर से. ज्ञानचंद गांव का सरपंच था. उधर रानो की सास जिंदा उसकी बेटी बड़ी को पांच सौ में किसी बूढ़े को बेचने का प्रयास कर रही थी. रानो ने मंगल से शादी करने से इनकार किया और जब मंगल ने लोगों का यह इरादा जाना तो आगबबूला हो उठा और रानो की बेटी बड़ी ने भी कह दिया, कि मां ने यह सब किया तो मैं कुछ खा मरूंगी. उसका चेहरा शर्म, नफरत और क्षोभ से भर उठा.

मंगल डांटे में पहुंचा. सलामती अपनी जगह से उठकर उसके पास आयी और उसकी खामोशी के अर्थ तलाशने लगी. अंधेरे में मंगल ने उससे कहा, "उतार दे दुपट्टा, उतार दे कमीज." सलामती ने उतार दी कमीज.

शायद वह कुछ कहती, लेकिन मंगल ने अंधेरे में कहीं दूर से अपना आप छुड़ाकर आती हुई दिये की लौ में सलामती की तरफ देखा और कहा, "अब जा." सलामती ने अपने कपड़े उठाये और चली गयी.

पंचों की तै की हुई तारीख आ पहुंची. पूरो, चन्नो और विद्या ने मिलकर रानो के हाथों में मेंहदी लगा दी और मंगलसूत्र से उसकी मेंढ़ियां गूंथ डालीं. इसके बावजूद रानो कांप रही थी, रो रही थी. सब बच्चों को चन्नी मौसी के घर भेज दिया गया.

आंगन में पैंसी की मैली-सी चादर तनी थी, जिसके नीचे कुछ घड़े रखे थे. एक तरफ पुरानी-सी काई मारी ठिलिया पड़ी थी और उन सब पर सिंदूर मचल रहा था. रानो को लाकर जब चादर के नीचे बिठाया गया तो उसने एक हृदय विदारक चीख मारी, "मरनेवाले आ देख, क्या हो रहा है तेरी रानो के साथ."

पुरोहित ने जब लड़के को बुलाया तो वह गायब था. तब नंबरदार तारा सिंह ने कहा, "मैं लाता हूं उस मां के यार को पकड़ के."

"हम सब चलते हैं." जग्गू ने कहा और सब लोग उसे पकड़ने के लिए निकल पड़े. मंगल का खयाल था कि उसके घनिष्ठ मित्र नवाब, इस्माइल और गुरुदास वगैरह उसे इस संकट से बचायेंगे, लेकिन उसे क्या पता था कि वे बेशर्म भी कोटले के शेष लोगों के साथ मिल जायेंगे और बार-बार यही कहेंगे, "आखिर औरत की ही बात है न यार, कोई मौत की तो नहीं."

मंगल जहां छिपा था, वहां से दो हाथ दूर खानकाह वाला कुआं था, जहां आज से कुछ ही वर्ष पहले मंगल के बड़े भाई तिलोके की हत्या हुई थी.

मंगल कपास की बगल में एक तंग और अंधेरी कुढ़ में बैठा डर और शंका में डूबा फटी-फटी आंखों से बाहर देख रहा था, जब गांव के लोग वहां पहुंचे.

फिर घसीटे जाने के कष्ट से अपने आपको बचाने के लिए मंगल कुछ दूर तक अपनी इच्छा के साथ चल लेता और फिर पछियाता तो लोग आगे को धकियाते हुए आगे बढ़ रहे थे. कोटले से दूर वैष्णव देवी के पहाड़ का खाका अब भी धुंधला-सा नजर आता था.

अजीब-सा दुल्हा था. बाल बिखरे हुए और सिर पर से पगड़ी नदारद. हाथ में कुंद-सी कृपाण. सेहरे की जगह झाड़ियां और कांटे, केसर के छींटों की जगह कीचड़ के लोंदे, आंखों में मुहब्बत के नशे की जगह घृणा, ग्लानि और पराजय के आंसू और गंदलापन. बड़ी अजीब-सी

दुपट्टे को दो उठे हुए हाथों में थामे रानो पहलू की तरफ मुड़ी. नारी का तिहरा रूप मंगल के सामने था, जिससे गेहूं की रोटी खाने वाला कोई भी मर्द इनकार नहीं कर सकता. . . .और बीच में झीना-सा आवरण. . .फिर उस रूप पर एक अंगड़ाई टूटी. मंगल के चेहरे पर सुर्खियां और स्याहियां दौड़ गयीं. मंगल ने रानो को बाहों में कस लिया और अगले ही क्षण वे शरीर की तपती हुई केसर क्यारियों में विचर रहे थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरात, जैसे शिवजी पार्वती को लेने आये हों.

जब मंगल को रानो के साथ बिठाया गया तो वह लहूलुहान था और रानों पूरी तरह बेहोश, लेकिन सब औरतों को विश्वास था कि आखिर में सब ठीक हो जायेगा.

उस रात रानों एक बहन, पत्नी और मां की तरह मंगल के घावों पर सेंक करती रही. वह भूल चुकी थी कि उसके बच्चे कहां हैं, कैसे सोये हैं. उनमें से किसी ने कुछ पेट में डाला है या नहीं. सुबह के वक्त रानों जब बड़ी के पास पहुंची तो उसने बड़े-बड़े नाखूनों से उसका मुंह नोंच लिया और बोली, "जा, उसी के साथ अपना मुंह काला करवा." रानों पर पहले ही क्या कम गुजरी थी कि अब बेटी ने भी मुंह नोंच लिया. वह जब अंदर पहुंची तो मंगल वहां नहीं था, लेकिन दोपहर से पहले वह वापस आ गया. बदन पर पट्टियां बंधवा आया था. दिन भर खाट पर बैठा हुआ मंगल जमीन के तिनके गिनता रहा. सुबह, दोपहर और शाम धुलने लगी थी, जैसे वे कोई मैली दीवारें थीं और कोई आकाश के दर्द के दरिया से मटकों पानी लेकर किरणों की झाड़ से उन्हें धो रहा था.

उस दिन नसीबों वाले अड्डे पर मंगल ने नवाब के साथ पी ली, लेकिन डरते-डरते. रानों भी आम औरतों की तरह थी, जो शादी के पहले ही दिन से अपने पति के चेहरे देखना सीख जाती हैं, उस पर आनेवाली एक-एक शिकन को जानने-पहचानने लगती हैं. जब उनका मर्द कोई पाप करके आता है तो उन्हें अनायास ही पता चल जाता है. यह अलग बात है कि वे कहती कुछ नहीं हैं.

मंगल घर की तरफ कदम उठाने ही वाला था कि सलामती ने पुकारा. छेड़खानी और जोरजबर्दस्ती से बचते-बचाते सलामती ने ईख के खेत की तरफ इशारा करते हुए कहा, "वहां, जब उधर मंदिर में घंटियां बजें और मस्जिद में मुल्ला अजान दे." सलामती की तरफ देखते हुए मंगल बोला, "हां, [illegible]." सलामती ने निश्चय किया कि मंगल के हाथ लगाते ही वह शोर [illegible] देगी और उसे पकड़वाकर अपनी बेइज्जती का बदला ले लेगी. थोड़ी देर बाद उसने इनायती को मंगल से अपनी भेंट की बात बता दी और यह भी कि वह मिलने आयेगा.

थोड़ी ही देर बाद मुराद गांव के दो-चार बदमाशों को ले आया. अपनी गरीबी, विपन्नता के बावजूद वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि एक काफिर किसी मुसलमान लड़की की इज्जत पर हाथ डाले. सब ने मिलकर जल्दी-जल्दी लाठियां, बछियां और गंडासे जमाकर लिये और फिर बरसों पहले की जात्रिन और तिलोके के कत्ल की बातें करने लगे.

मंगल नहां-धोकर अपनी दाढ़ी में कच्ची घानी का तेल लगा रहा था. आज रानो उसे अच्छा लग रही थी. रानो ने समझा कि यह सब मेरे लिए है. आज का दिन मेरा था, रात भी मेरी होगी. उसने दिन में कई बार उबटन मलकर त्वचा को इतना नर्म और चिकना बना लिया कि उस पर वे निगाहें और भाव फिसल-फिसल जाते थे. रानो आज मंगल को कई खबरें देना चाहती थी. आज रानो ने उस पर्दे और शर्म को दूर कर देने की ठान रखी थी, जिसे एक तरफ हटाये बिना भगवान भी नहीं मिलते. उधर मंगल जैसे उसे आज कोई रिश्वत देना चाहता था. उसने कुर्ते की जेब से रानो के लिए बालों की कुछ सुइयां निकालीं, जो वह लौटते समय कस्बे से ले आया था. रानो के मुंह से आनंद की इंतिहा सूचक हा निकली, लेकिन मंगल कहीं दूर देख रहा था.

कितनी भूल हुई. मंगल को वह सब याद आ गया. वह उठकर खड़ा हो गया. उसने रानों से खाना मांगा, "दो जो कुछ भी पका हो, नहीं तो मैं जाता हूं. जरूरी काम है."

"कहां जा रहा है, देखता नहीं, बादल घिरे है."

"होंगे, तू कौन होती है रोकने वाली, मेरा कुर्त्ता दे."

कुर्ते की मांग ने रानो के संदेह को विश्वास में बदल दिया. वह तनकर खड़ी हो गयी. उसके भी नथुने फूलने लगे, जो मंगल को दुपट्टे में दिखाई न दिये. एक बीवी मुकाबले के लिए, अधिकारों की रक्षा के लिए एक टकाही के स्तर पर उतर आयी. अपनी दृष्टि के क्षितिज पर उसे सलामती का बदन लहराता हुआ नजर आया, जिसके बदन के कसे-कसाये और सुडौल अंगों में संगी के लिए स्वाभाविक जगह बनी थी, जिसके शरीर की ताजगी और तरावट को उबटन और बिंदी और अखरोट के छाल की जरूरत नहीं थी.

बक्से में मंगल को मिट्ठे माल्टे की बोतल दिख गयी, जो उसका भाई मरने से पहले लाया होगा. फिर क्या था, बोतल खुली और रानों ने मना किया, जैसे वह तिलोके को मना करती थी. पिट गयी तो सास ने पूछा, "क्या है बहू."

"कुछ नहीं माई, बिल्ली है." मंगल हैरान हो गया. इतना पीटा, फिर भी कहती है कि बिल्ली है. और वह लज्जित हो गया, कृतज्ञ भी. पगड़ी फाड़कर उसने रानो के घाव पोंछने शुरू कर दिये. रोते-रोते उसने रानो के पांव पकड़ लिये और 'मुझे माफ कर दे, मुझे माफ कर दे' रटने लगा.

तभी मंदिर के घंटे सुनाई दिये, फिर मस्जिद से अजान . . . और उसने उठने की कोशिश की. फिर रानो से बोला, "तुमने कपड़े क्यों पहने हैं!" रानों ने अपना फटा पुराना जाली का दुपट्टा उठाया और उसे अपने और मंगल के बीच तानते हुए बोली, "लो उतार दिये."

और दुपट्टे को दो उठे हुए हाथों में थामे रानो पहलू की तरफ मुड़ी. नारी का तिहरा रूप मंगल के सामने था, जिससे गेंहू की रोटी खाने वाला कोई भी मर्द इनकार नहीं कर सकता . . और बीच में झीना-सा आवरण . . . फिर उस रूप पर एक अंगड़ाई टूटी. मंगल के चेहरे पर सुर्खियां और स्याहियां दौड़ गयीं. मंगल ने रानों को बाहों में कस लिया. अगले ही क्षण [illegible] शरीर की तपती हुई केसर क्यारियों में विचर रहे थे.

घर के दरवाजे में खड़ी [illegible]मती आकाश से धारासार गिरते पानी को देखकर झल्ला रही [illegible] बहुत देर हो गयी तो मुराद तथा अन्य लोगों ने अपने [illegible] और गड़ासे पकड़े और घर चलने [illegible] यह कहते हुए, "बच गया [illegible]."

किसी को अनुमान नहीं था कि इस वर्ष कोटले पर इतना जात्री गिरेगा. किसी को मालूम न था कि कोटलावासियों के घर दौलत से भर जायेंगे और उस पर सोना बरसने लगेगा. रानो पेट से हो गयी और बड़ी के लिए वर भी मिल गया. मंगल ने रानी को बताया, "जात्रियों में एक लड़का आया है, पच्चीस छब्बीस बरस का गबरू जवान, इसके के मुसद्दी का बेटा, जमीन जायदाद. . ."

ये जात्री लोग थे, सिर झुकाये देवी की भेंट गाते हुए आ रहे थे. फिर एक दृश्य खुला और सबने देखा---चौधरी मेहरबान दास और उसका भाई घनश्याम सात-साल की कैद काट कर आ रहे थे . . . और उन सबके बीच एक युवक था---पच्चीस-छब्बीस बरस का गबरू जवान, सुंदर . . . तभी भीड़ को चीरता मंगल रानों के पास चला आया और बोला, "वह है . . .वही है लड़का."

रानों ने एकदम सांस ऊपर खींची, "मैं मर गयी." सांस बाहर आने से पहले रानों के चेहरे की सुर्खी उड़ती नजर आयी और वह रुई की तरह सफेद हो गयी. पहले हाथ कांपे, फिर पूरा शरीर ऐंठने लगा और देखते हुए बोली, "वही. . . यह तो वही है, जिसने मेरे तिलोके की जान. . ."

रानों ने मुड़कर देखा. बड़ी के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, जैसे वह कह रही हो, "मां, तू क्या कर रही है. तूने इंकार किया तो मैं बिन ब्याही धरती की तरह बांझ रह जाऊंगी."

एक डर था और एक आनंद भी, जिसमें सनसनाती हुई रानों ने अपने दोनों हाथ देवी मां के कलसों की ओर उठा दिये और रोती-धोती लरजती-कांपती हुई बोली, "मां, हे देवी मां!" □

प्रस्तुति : बलराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलम और कागज का रिश्ता

राजेंद्र सिंह बेदी

'गालिब एवार्ड-समारोह' के अवसर पर बेदी साहब ने कागज और कलम के रिश्ते को अपनी नजर से प्रस्तुत किया था. लेखन और रचनाधर्मिता को लेकर उनके यह विचार एक लेखक की ईमानदार तस्वीर भी पेश करते हैं—

दोस्तो!

मैं लगभग दो साल से बीमारी के विभिन्न पड़ाव तय कर रहा हूं. अब पिछली-सी शिद्दत मेरी बीमारी में बाकी नहीं है, फिर भी मेरे लिए कुछ लिखना खासी मुश्किल बात है...

क़ज़ा ने था मुझे चाहा खराब बादा-ए-उलफत,
'फकत' खराब लिखा, बस न चल सका कलम आगे!..,

मैं अपनी रचना के बारे में क्या लिखूं? यह कोशिशें-नातमाम, 'दाना व दाम' से शुरू होती हैं. 'गहन', 'कोखजली', 'अपने दुख मुझे दे दो', 'हाथ हमारे कलम हुए' अफसानों के संकलन हैं. एक छोटा-सा नॉवेल 'एक चादर मैली-सी' है. दूसरा कुछ लंबा नॉवेल 'नमक' है, जो मेरी बीमारी की वजह से पूरा नहीं हो सका है. दो ड्रामों के संकलन हैं—'सात खेल' और 'बेजान चीजें.' मैं असल में कोई 'जोवागो' लेखक नहीं हूं. मैं कलम उठाकर कागज को स्याह करना चाहूं भी तो कभी कलम रुक जाता है और कभी कागज की मासूमियत आड़े आ जाती है. यह आप का करम है कि आपने मुझे इनाम के काबिल समझा.

यह भी सच है कि जिंदगी का ज्यादातर हिस्सा लिखने में बीता है यानी लिखने के बारे में सोचने-समझने और फिर कभी-कभी लिखने में. लिखना मेरे लिए मुसीबत नहीं रहा है. शुरू-शुरू में ऐसा मालूम होता था कि हर तजुर्बे और खयाल को कागज पर उतार दूं, मगर आहिस्ता-आहिस्ता कलात्मक शऊर की गिरफ्त मजबूत होती गयी. कभी-कभी यह गिरफ्त इतनी सख्त हो गयी कि मैं महीनों कोई अफसाना नहीं लिख पाया. कभी-कभार ऐसा भी हुआ है कि कलम रोके नहीं रुकती थी. चेतन और अवचेतन में कोई इतनी सीधी लड़ाई नहीं होती है कि सफा-ए-कुरतास पर खून-खराबे की नौबत आये, मगर एक कशमकश तो चलती ही रहती है. वही हेमलिट का विश्लेषणात्मक सवाल यानी...'क्या लिखूं, क्या न लिखूं?'

और फिर अफसाना क्या है? यह सवाल मेरे अफसानों के साथ-साथ बदलता रहा है. यों कि कभी एक बच्चे को कहानी सुनाने का खयाल आया तो 'भोला' लिखी. कभी एक और बच्चे के जरिये आज के रोज की सीता की विपता लिखनी हुई तो 'बब्बल' लिखी. बच्चे और कहानी का बड़ा संबंध था, है और रहेगा. इसलिए कि कहानी सुनने की ख्वाहिश ही अफसाना-निगार को कहानी लिखने पर मजबूर करती है. तकनीक बदलती रहती है. हां, कभी-कभी ऐसा भी दिल चाहा है कि अपने चारों तरफ फैले हुए हंगामा-ए-जार पर भी नजर डाली जाये, तो मैंने ?'जनाजा कहां है?' लिखी. और जब दहशत व जुर्म की फिजा को मसल्लत होते हुए देखा, तो 'बोलो' लिखी. गर्ज कि कम लिखते हुए भी करीब अस्सी कहानियां पैंतालिस साल में लिखी हैं और अब भी लिखने की ख्वाहिश है. अपने हाथों में कलम उठाकर, कागज पर नजरें जमाकर देखता हूं और सोचता हूं कि किसी ने कहा था...

कभी पोले से कागज पर स्याह लफ्जों में कुछ लिखना,
कभी नजरों से लिखकर यूं ही कागज को जला देना!...

यानी कलम और कागज का रिश्ता कायम है और मैं जरूर लिखूंगा.

न जाने कब फ्लाबेयर ने मोपांसा से कहा, "देखो, वह सामने पेड़ है. उसके बारे में कहानी लिख लाओ." और जब मोपांसा कहानी लिख कर ले गया, तो फ्लाबेयर ने कहा, "तुम तो न जाने क्या लिख लाये? शाखें, पत्तियां, फल वगैरह भी हैं, पर कहानी पेड़ के बारे में कहती है. पेड़ के जिस्म की एनाटोमी के बारे में नहीं." और न जाने कितनी बार मोपांसा को पेड़ पर नजरें जमाकर उसके आर-पार देखना पड़ा और फिर वह पेड़ की कहानी लिख पाया. पता नहीं, मैं ऐसे तजुर्बों और खयालों से पेड़ की पूरी तर्जुमानी कर रहा हूं या नहीं, मगर मेरी कोशिश यही रही कि पूरे पेड़ की कहानी न सही, किसी एक शाख, किसी फल, हरे या जर्द पत्ते की कहानी लिखूं. कभी-कभी पेड़ के बारे में कम, उसकी जड़ों के बारे में ज्यादा लिख गया हूं कि असल पेड़ तो जमीन के अंदर ही है. पता नहीं, क्या लिखना चाहता था, क्या लिख गया हूं, मगर जो लिखा है, वह पूरी ईमानदारी और जतन से लिखा है.

शायद इसीलिए अब भी लिखने की ख्वाहिश बाकी है. □

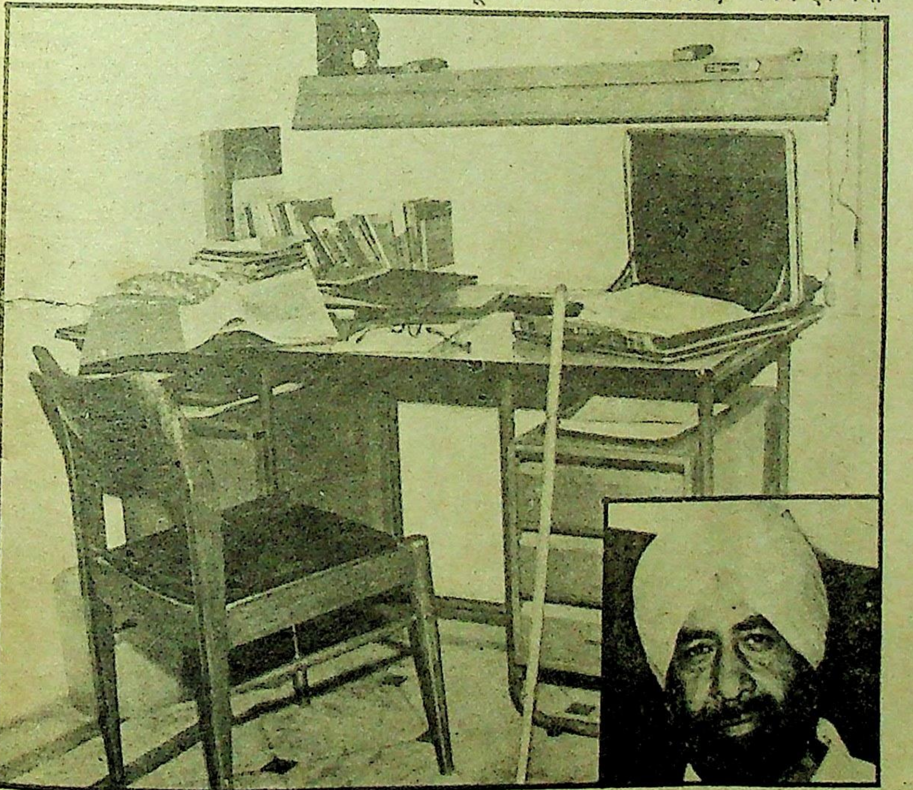

पता नहीं, क्या लिखना चाहता था क्या लिख गया हूं!

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या जिस्मफरोशी का धंधा करनेवाली औरत भी उतनी ही पाकदामन हो सकती है जितनी कि एक घरेलू औरत? . . .क्या उसमें वे तमाम गुण मौजूद हो सकते हैं जो किसी बाइज्जत औरत में. . .? क्या वह अपने ही घातक की रक्षक भी बन सकती है या हया उसका गहना हो सकता है? ...या कि वह भी मां, बहन, बीवी-सा सलूक कर सकती है...? कल्याणी एक ऐसी ही 'पेशेवर औरत' है, फिर भी उतनी ही नेकनीयत कैसे है जिसकी अपेक्षा उसकी पूरी जात से नहीं बल्कि केवल 'औरत' से की जाती है. . . . . .?

बेदी की कथा रचनाएं : दो

कल्याणी

अब उसे उन काली भूरी राहों पर चलने से कोई डर न आता था जहां बेशुमार गड्ढे थे, जिनमें काला पानी, बंबई के इस शहर की मैल, हमेशा जमा रहती थी और कभी तह पर न बैठती थी. बेशक्ल से पत्थर इधर से उधर जैसे शौकिया पड़े थे, बेकार आखिरी रोड़ा होने के लिए. और वे शुरू के दिन जब टांगें कांपती थीं और तिनके भी रोकने में कामयाब हो जाते थे. ऐसा मालूम देता था कि गली के मोड़ पर देसी साबुन बनाने के बड़े-बड़े चाक बनानेवाला और उनके पड़ोस में हज्जाम देख रहे हैं और बराबर हंस रहे हैं. कम से कम रो भी नहीं रहे हैं. फिर बाजू का कोयलेवाला जो आज तक शायद इस चकले में कभी न गया था, इस पर भी उसका मुंह काला था.

बगल में पहले माले क्लब थी, जहां चोरी की रम चलती थी और यारी की रम्मी. उसकी खिड़कियां किसी योगी की मन की आंखों की तरह से बाहर की बजाये मन के सहन में खुलती थीं और उनमें सिगरेटों के धुएं की सूरत में आहें निकलती थीं. लोग यों तो जुए में सैकड़ों के हाथ देते थे, मगर सिगरेट हमेशा घटिया पीते थे. बल्कि बीड़ी सिर्फ बीड़ी, जिसका जुए के साथ वही ताल्लुक होता है जो पैंसलिन का आतशक से. . .

ये खिड़कियां अंदर की तरफ क्यों खुलती थीं. ना मालूम क्यों? मगर कोई खास फर्क न पड़ता था, क्योंकि अंदर के सहन में आनेवाले मर्द की सिर्फ छाया ही नजर आती थी, जिससे मामला पटाती हुई लड़की उसे अंदर ले जाती, और एक बार जरूर बाहर आती. नल पर पानी की बाल्टी लेने जो सहन के एन बीचों-बीच लगा हुआ था और दोनों तरफ की खोलियों की तरह-तरह की जरूरतों के लिए काफी था. बाल्टी उठाने से लड़की हमेशा अपनी धोती या साड़ी को कमर में कसती और गाहक लग जाने की अकड़ में कोई न कोई बात अपनी हमपेशा बहन से जरूर कहती, "ए गिरिजा, जरा चावल देख लेना. मेरे को ग्राहक लगा है." फिर वह अंदर जाकर दरवाजा बंद कर लेती. तभी गिरिजा सुंदरी से कहती, "कल्याणी में क्या है री, आज उसे दूसरा कस्टमर लगा है." लेकिन सुंदरी की बजाये जाड़ी या खुर्शीद जवाब देती, "अपनी-अपनी किस्मत है न." तभी कल्याणीवाले कमरे से जंजीर लगने की आवाज आयी और बस. . .सुंदरी एक नजर बंद दरवाजे की तरफ देखती और अपने सने हुए बालों को छांटती, तौलिए से पौंछती और गुनगुनाने लगती—'रात जागी रे बालम रात जागी. . .' और फिर एक साथ ही गिरिजा को संबोधित कर उठती, "एअ गिरिजा, कल्याणी के चावल उबल रहे हैं. देखती नहीं कैसी गुड़-गुड़ की आवाज आ रही है उसके बर्तन से." और तीनों चारों लड़कियां मिलकर हंसतीं और एक-दूसरी के कूल्हे में थाप देने लगतीं. तभी गिरिजा बिलबिला उठती और कहती, "इतनी जोर से क्यों मारा रंडी. जानती है अभी तक दुख रहा है मेरा फूल. कान को हाथ लगाया, मैं तो क्या मेरी आस-औलाद भी कभी किसी पंजाबिए के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ न बैठेगी." फिर गिरिजा बगल की खोली में किसी को आवाज देती; "गगनी तेरा पोपट क्या बोलता?"

गगनी की शक्ल तो दिखाई न देती, सिर्फ आवाज आती, "मेरा पोपट बोलता, मज मन राम. . ."

मतलब गगनी को या तो सरमैल है और या फिर कोई इस पर नहीं लगा.

महीपत लाल अब के महीनों बाद इधर आया है. बीच में मुंह का जायका बदलने के लिए वह वहां से कुछ ही फर्लांग दूर एक नेपाली लड़की जूनीया के पास चला गया था और उसके बाद छियानवे नंबर की एक क्रिश्चियन छोकरी में फंस गया. जिसका असली नाम तो कुछ और था लेकिन वहां की दूसरी लड़कियां और दलाल उसे ओलगा के नाम से पुकारते थे. उधर कल्याणी को कुछ पता भी न था, क्योंकि इस धंधे में तो दो चार मकानों का फासला सैकड़ों मील का होता है. लड़कियां ज्यादा से ज्यादा पिक्चर देखने को निकलती हैं और फिर वापस. जिस मुंह से जायका बदलने के लिए महीपत दूसरी लड़कियों के पास गया था, उसी के लिए इस अड्डे पर लौट आया. लेकिन यह बात तय थी कि इतने महीनों के बाद कल्याणी को भूल चुका था. हालांकि मुलक जाने के लिए उसने कल्याणी को दो सौ रुपये भी दिए थे. तब शायद नशे का आलम था जैसे कि अब था. बीयर का पूरा पैग पी जाने के कारण, महीपत लाल के दिमाग में किसी और ही औरत की तस्वीर थी. और वह भी अधूरी. उसे पूरा तो महीपत को करना था. एक पेंटर की तरह जो कि मर्द होता है और तस्वीर जो कि औरत होती है. . .

अंदर आते ही महीपत ने सहन के पहले पायदान को फलांगा. तीन चार सीढ़ियां नीचे उतरा. लोग समझते हैं कि पाताल नर्क कहीं दूर धरती के अंदर है, लेकिन नहीं जानते कि वह सिर्फ दो-तीन सीढ़ियां नीचे है. वहां न कोई आग जल रही है और न उबलते खौलते हुए कुंड हैं. हो सकता है सीढ़ियां उतरने के बाद फिर उसे किसी ऊपर के थड़े से जाना पड़े, जहां सामने दोजख है, जहां ऐसी-ऐसी यातनाएं दी जाती हैं कि इंसान उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता.

सीढ़ियां उतरने के बाद सहन में पैर रखने की बजाए महीपत लाल खोलियों के सामने वाले थड़े पर चला गया. पक्का होने के बावजूद सहन में एक गड्ढा था, जिसमें हमेशा-हमेशा पानी रहता था. बरस डेढ़ बरस पहले भी यह गड्ढा ऐसे ही था, अब भी ऐसा ही था. लेकिन गड्ढे के बारे में इतना ही काफी है कि उसका पता हो. ऊपर सहन के खुले होने की वजह से दशमी का चांद गड्ढे के पानी में झिलमिला रहा था जैसे उसे मैल से मैला होने से कोई फर्क नहीं पड़ता. अलबत्ता नल से पानी का छींटा उसमें पड़ता तो चांद की छवि कांपने लगती, पूरी की पूरी.

कुछ ग्राहक गिरिजा, सुंदरी और जाड़ी की खोलियों में ठोक-बजाकर देख रहे थे जैसे वे कच्चे पक्के घड़े हों. उनमें से कुछ अपने जैसी टटोल रहे थे. मिस्त्री जाड़ी के साथ जाना चाहता था क्योंकि वह गिरिजा, सुंदरी और खुर्शीद से ज्यादा बदसूरत थी मगर थी आठ ईंट की दीवार. हैरानी तो यह थी कि लड़कियों में से किसी को हैरानी न हो रही थी. वे मर्द और उसके पागलपन को अच्छी तरह से जानती थीं. महीपत ने सुंदरी को देखा जो वैसे तो काफी काली थी, मगर कमर कोकणी औरतों की तरह, तीखे नैन नक्काशोंवाली और फिर उभार से चीजें उसका जिस्म 'बाप रे' हो जाता था. तभी महीपत के कुर्ते को खींच पड़ी. उसने मुड़कर देखा तो सामने कल्याणी खड़ी थी और हंसते हुए अपने दांतों के मोती दिखा रही थी. मगर वह दुबली हो गई थी. क्यों? न मालूम क्यों? चेहरा यों लग रहा था जैसे दो आंखों के लिए किसी ने जगह छोड़कर ढोलक पर चमड़ा मढ़ दिया. पूरी औरत और तस्वीर एक ही बात है, इसलिए महीपत कल्याणी साथ तीसरी खोली में चला गया.

क्लब घर की खिड़की से किसी ने झांका और अब हर बिसात उलट दी. कल्याणी ने बाहर अंदर नल पर बाल्टी भरी. धोती को कमर में कसा और आवाज दी, "ओह गिरिजा, थोड़ा हमारा गठरी संभालना." और फिर पानी लिए खोली में चली गयी.

पास की खोली से मैडम की आवाज आई, "एक टैम का या दो टैम का." अंदर कल्याणी ने महीपत को आंख मारी और मैडमवाली खोली की तरफ देखती हुई बोली, "एक टैम. . ." और फिर उसने महीपत के सामने हाथ फैला दिया. हाथ पकड़कर महीपत उसे अपनी तरफ खींचने लगा फिर उठाकर उसने पान से भरी लाल-लाल मुहर-सी कल्याणी के होठों पर लगा दी. जिसे धोती के पल्लू से पोंछती हुई वह हंसी. इतने बेसब्र. और फिर हाथ फैलाकर कहने लगी, "तुम हमको तीस रुपये देगा पर हम मैडम को एक ही टैम का बोलेगा—तुम भी उसको नहीं बोलने का हां ऽऽऽ."

महीपत ने ऐसे ही सिर हिला दिया. हां ऽऽऽ.

बदस्तूर हाथ फैलाते हुए कल्याणी बोली, "जल्दी निकालो पैसे."

कल्याणी ने अब के रसम नहीं अदा की. वह सचमुच हंस दी. नहीं वह शरमा गई. वह धंधा करती थी और शर्माती थी. कौन कहता है वहां औरत नहीं रहती. वहां भी हया उसका जेवर होता है जिससे वह मरती भी है और जीती भी. महीपत ने तीस रुपये निकालकर कल्याणी की हथेली पर रख दिए. कल्याणी ने ठीक से गिना भी नहीं. उसने तो बस पैसों को चूमा, सिर और आंखों से लगाया. भगवान की तस्वीर के सामने हाथ जोड़े और मैडम को एक टैम के पैसे देने और अपने हिस्से के पांच रुपये रखने अंदर के दरवाजे से और अंदर चली गयी. महीपत को जल्दी थी. वह बेसब्री से दुर्गा मैया की तस्वीर देख रहा था जो शेर पर बैठी थी और जिसके सामने राक्षस मरा पड़ा था. दुर्गा की दर्जनों बाहें थीं जिनमें से किसी में तलवार थी और किसी में बरछी और किसी में ढाल, एक हाथ में कटा हुआ सिर बालों से थामा हुआ और महीपत को लग रहा था जैसे वह उसका अपना सिर है.

दीवारें टूटी हुई थीं. यह कोई बात न थी. लेकिन उन पर लपकती हुई सील और उसमें गडमंड काई ने अजीब शक्ल बना दी थी, जिनसे तबीयत बैठ-बैठ जाती थी.

कल्याणी लौटी और लौटते ही उसने कपड़े उतारने शुरू कर दिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रसंग

बेदी : औरत के लिये . . .

. . . पता नहीं, ये मेरी पिछले जन्म की मां है (अपनी बहू वीना के लिये) मेरी इतनी सेवा करती है. मेरी बेटियां, मेरी बहन, मेरी बहू ये सब कितनी अच्छी हैं. ये औरत बड़ी अच्छी चीज है. ये भूल चुकी हैं कि मैंने जिंदगी में क्या-क्या गलतियां की हैं. पद्मा जो, अगर मैं बच गया तो औरत पर बड़ा कुछ लिख सकता हूं. औरत की दया, उसकी ममता, उसकी अच्छाई से मैं इतना भर गया हूं. मेरी बहन एक ही है. मुझसे काफी छोटी. उसके लिये जो कुछ मैंने किया था वो उसने मुझी पर कुरबान कर दिया. ये औरत सिर्फ देना चाहती है, लेती कुछ नहीं. □

संदर्भ : दीवानखाना

यह खेल मर्द औरत का. . .महीपत पहले तो कल्याणी को ऐसे ही नोचता काटता रहा फिर वह उछलकर पलंग से नीचे कूद गया. वह कल्याणी नहीं कायनात की औरत देखना चाहता था, क्योंकि कल्याणी तो औरत है, पत्नी नारी है. महीपत आते हैं और चले जाते हैं. लेकिन औरत वही रहती है और मर्द भी. मगर क्यों यह सब कुछ समझ में नहीं आता. हालांकि इसमें समझ की कोई बात ही नहीं.

एक बात है सतजुग, द्वापर और त्रेता जुगों में पूरा न्याय था. फिर भी औरतें मुहब्बत में क्यों चोरी करती थीं. तब गणिका वेश्या क्यों थी. आज तो अन्याय हैं, 'पग-पग' पर अन्याय. फिर उन्हें क्यों रोका जाता है. क्यों इन पर कानून लगाए जाते हैं. जो रुपया टकसाल से आता है, उसकी कीमत आठ आने रह जाती है. टकसाल में और बाहर पैसे के मेलजोल की जितनी जरूरत आज है, तारीख में कभी हुई है.

महीपत को उलझावे की जरूरत थी. उसने एक बीयर के लिए कहा लेकिन इससे पहले कि कल्याणी का काला वजूद उठकर लड़के को आवाज दे, वह खुद ही बोल उठा, "रहने दो" और उस नजारे को देखने लगा जो नशे से भी ज्यादा था. फिर जाने क्या हुआ. महीपत ने इतनी झपटकर कल्याणी की टांगें अलग कीं कि वह बिलबिला उठी. अपनी बर्बरता से घबराकर खुद ही महीपत ने अपनी गिरफ्त ढीली कर दी. अब कल्याणी पलंग पर पड़ी थी और महीपत घुटनों के बल फर्श पर बैठा था और अपने मुंह में जबान की नोक चला रहा था. कल्याणी लेटी हुई अभी छत को देख रही थी, जहां पंखा जाले में लिपटा हुआ एक धीमी रफ्तार से चल रहा था. फिर एकाएक ही कल्याणी को कुछ होने लगा. उसके पूरे बदन में महीपत और उसकी जबान के कारण एक झुरझुरी-सी दौड़ गयी और वह उस चींटे की तरह तिलमिलाने लगी, जिसके सामने बेरहम बच्चे जलती हुई माचिस रख देते हैं.

तभी अपने आप से घबराकर महीपत ऊपर चला आया. उसके बदन में बेहद तनाव था और बिजलियां थीं, जिन्हें वह कैसे भी झटक देना चाहता था. उसके हाथों की पकड़ इस कदर मजबूत थी कि जबर से जबर आदमी उससे न निकल सकता था. उसने हांफती हुई कल्याणी की तरफ देखा. उसे यकीन ही न आ रहा था कि एक पेशेवर औरत की छातियों का वजन भी एकाएक बढ़ सकता है और उन पर हलके और दाने फैलकर अपने मरकज, उभरे हुए मरकज को भी ऊंचा कर सकते हैं. अपनी वहशत में वह उस कायनात की औरत को भूल गया और मर्द को भी. उसे इस बात का अहसास ही न रहा कि वह खुद कहां है और कल्याणी कहां. वह कहां खत्म होता है और कल्याणी कहां से शुरू होती है. वह उस कातिल की तरह से था जो छत पर से किसी को ढकेल देता है. उसे यकीन होता है कि इतनी बुलंदी से गिरकर वह बयान देने के लिए भी जिंदा न

उसने अपना पूरा बदन कल्याणी पर फैंकना शुरू कर दिया.

एक दिलरोज-सी चीख निकली और बिलबिलाहट सुनाई दी. सील और काई से भरी दीवारों पर पंखों के पर अपनी बड़ी छाइयां डाल रहे थे. जाने किसने पंखे को तेज कर दिया था. महीपत पसीने से सराबोर भी था और शर्मिंदा भी, क्योंकि कल्याणी रो रही थी. कराह रही थी. या वह एक वेश्या की तरह से ग्राहक को लात मारना न जानती थी और या फिर वह इतने अच्छे गाहक को खो देने के लिए तैयार न थी.

सिरहाने में मुंह छिपाये हुए कल्याणी उलटी लेटी हुई थी और उसके कंधे फड़कते हुए दिखाई दे रहे थे. तभी महीपत एक लमहे के लिए ठिठक गया. फिर उसने आगे बढ़कर कल्याणी के चेहरे को हाथों में लेने की कोशिश की. मगर कल्याणी ने उसे झटक दिया. वह सचमुच रो रही थी. उसके चेहरे को थामने में महीपत के अपने हाथ गीले हो गए थे. आंसू तो अपने आप नहीं निकल आते. जब जबर और बेबस खून की होली खेलते हैं, तभी आंखें छान पटककर उस लहू को साफ करती हुई चेहरे पर ले आती हैं. अगर उसे अपने ही रंग में ले आएं तो दुनिया में न मर्द दिखाई दे न औरत.

कल्याणी ने फिर अपना चेहरा छुड़ा लिया. महीपत पहले सिर्फ शर्मिंदा, फिर सचमुच शर्मिंदा था. उसने कल्याणी से माफी मांगी और फिर मांगता चला गया. कल्याणी ने पलंग की चादर से आंखें पोंछते हुए बेबसी से महीपत की तरफ देखा. फिर वह उठकर दोनों बाजू फैलाते हुए उससे लिपट गई. उसकी चौड़ी नुकीली छाती पर अपने घुंघराले बालोंवाला कोकणी सिर रख दिया. फिर घिघ्घी बंध गई, जिसे निकालने से महीपत को भी तलजज का महसूस हुआ और कल्याणी को भी. उसने अपने घातक की ही पनाह ढूंढ़ ली. मर्द तो मर्द होगा ही, बाप भी तो है, भाई भी तो है. औरत औरत ही सही, मगर वह बेटी भी तो है, बहिन भी तो है. . .

और मां. . .

महीपत की आंखों से सचमुच के पछतावे को देखते ही तस्वीर उलट गई. अब उसका सिर कल्याणी की छाती पर था. और वह उसे प्यार कर रही थी. महीपत चाहता था कि वह इस अमल को अंजाम पर पहुंचाए बगैर ही वहां से चला जाये, लेकिन कल्याणी इस तोहीन को बर्दाश्त न कर सकती थी. बीच में वह दो एक बार दर्द से कराही भी और फिर बोली, "भगवान के लिए मेरे को सुई लगवाना पड़ता." फिर आहिस्ता-आहिस्ता उसने दुख और सुख सहते हुए कायनात के मर्द को खत्म कर दिया और उसे बच्चा बनाकर गोद में ले लिया. महीपत के हर उलटे सांस के साथ कल्याणी, बड़ी नरमी, बड़ी कोमलता और बड़ी ही ममता के साथ उसका मुंह चूम लेती थी, जिससे सिगरेट और शराब की बू निकल रही थी.

धोने धुलाने के बाद महीपत ने अपना हाथ कपड़ों की तरफ बढ़ाया. मगर कल्याणी ने थाम लिया और बोली, "मेरे को बीस रुपया ज्यादती दो."

"बीस रुपया."

"हां," कल्याणी ने कहा, "हम थारा गुण गायेगा. हम भूला नहीं वह दिन जब हम मुलक गया था तो तुमने हमको दो सौ रुपया रोकड़ दिया था. हम दो घंटे मंदिर में एक टांग पर खड़ा होकर तुम्हारे लिए प्रार्थना किया और बोला, मेरा मन का रक्शा करना, भगवान. उसको लंबा जिंदगी देना. पैसा देना."

और कल्याणी उम्मीद भरी नजरों से पहली और अब की प्रार्थना का असर देखने लगी.

महीपत के नथुने नफरत से फैलने लगे. पेशेवर औरत. . .पिछली बार दो सौ रुपये लेने से पहले भी इसी तरह से टेसुवे बहाए थे इसने. यों रोई चिल्लायी थी जैसे मैं इंसान नहीं कोई जानवर हूं. वहशी हूं. . . मगर और बीस रुपये. फिर रोने की क्या ज़रूरत थी, आंसू बहाने की. वैसे ही मांग लेती तो क्या मैं इंकार कर देता. जानती भी है मैं पैसे से इंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करता. दरअसल इंकार मुझे आता ही नहीं. इसीलिए तो भगवान का शुक्रिया अदा करता हूं कि मैं औरत पैदा नहीं हुआ वरना. . .मैं तो यहां मुंह मांगे देने का कायल हूं. जिससे फिर गुनाह का अहसास नहीं होता. ऐसे ही आदमी का तो इंतजार किया करती है यह और जब वह आता है तो उससे झूठ बोलने, उसके कपड़े उतारने से भी नहीं चूकती. कहती है मैंने सोचा था तुम मंगल को जरूर आओगे, मंगल को क्या है अगले मंगल को मैंने भगवान से प्रार्थना की थी. यह रोना. . .शायद सच्ची रोई हो. मैंने भी तो एक अंधे की तरह से कहीं भी चलने दिया अपने आप को. आव देखा न ताव. ताव कितना अच्छा था. इससे निकल पाने का एक ही तरीका है, दे दो रुपये. मगर क्यों. पहले ही तो मैंने इसे दो बार के पैसे दिए और एक ही टैम बैठा.

महीपत के हाव-भाव देखकर कल्याणी ने कहा, "क्या सोचने लगे हो. दे दो न, मेरा बच्चा. तुमको दुआएं देगा. . ."

"तेरा बच्चा?"

"हां, तुमने नहीं देखा?"

"नहीं, कहां किससे लिया?"

कल्याणी हंस दी. फिर वह लजा गई. "क्या मालूम किसका. मेरा को सकल थोड़ा ध्यान में रहता. क्या खबर तुम्हारा ही हो?"

महीपत ने घबराकर जेब से बीस रुपये निकालकर कल्याणी के हाथ पर रख दिए जो अभी तक वैसे ही खड़ी थी और जिसकी कमर पर पड़ा हुआ चांदनी का पटका लटक रहा था. एक हलका-सा हाथ कल्याणी के पीछे थपथपाते हुए महीपत ने कुछ और सोच लिया. कल्याणी ने साड़ी पकड़कर लपेटी थी कि वह बोला, "अगर एक टैम और बैठ जाओ तो (पैसे दे दिए हैं)."

"बैठो," कल्याणी ने बिना किसी झिझक के कहा और अपनी साड़ी उतारकर पलंग पर फेंक दी. पल-पल करता हुआ उसका यौवन सब बात भूल चुका था लेकिन महीपत ने सिर हिला दिया, "अब दम नहीं रहा."

"हूं" कल्याणी ने कहा, "बहुत जन आता मेरे इधर, पर तुम-सा कड़क हम नहीं देखी सच्ची. तुम जाता तो बहुत दिन यह नाभ ठिकाने नहीं आता."

चांद गड्ढे पर से सरक गया था. कोई बिलकुल ही लेट जाए तो उसे देख पाए. तभी कल्याणी महीपत का हाथ पकड़कर ऐसे कमरे में ले गयी जहां गिरिजा, सुंदरी, जाड़ी वगैरह थी. जाड़ी मिस्त्री के बाद एक बेहरे को भी भुगता चुकी थी. एक आदमी से झगड़ा कर चुकी थी. जब महीपत आया तो उसने खुर्शीद के कुहनी मारी और बोली, "आया कल्याणी का मर्द." इसलिए कि पहले जब महीपत इधर आया तो कल्याणी के पास.

कल्याणी के साथ खोली में आते हुए महीपत ने बाथरूम के पास पड़ी हुई गठरी को देखा जिसके पास बैठी हुई गिरिजा अपने पल्लू से उसे हवा कर रही थी. कल्याणी ने गठरी को उठा लिया और महीपत के पास लाते हुए बोली, "देखो, देखो मेरा बच्चा. . ."

महीपत ने उस लिजलिजे चार-पांच महीने के बच्चे को देखा, जिसे गोद में उठाये हुए कल्याणी कह रही थी, "इस हलकट को पैदा करने, दूध पिलाने से हम यह हो गया. खाने को कुछ मिलता नहीं न. इस पर तुम आता तो. . ."

फिर एकाएक ही महीपत के कान के पास मुंह लाते हुए कल्याणी बोली, "सुंदरी को देखता. तुम बोलेगा तो हम अगले टैम सुंदरी को ला देगा. . .नहीं-नहीं कल तो हम आपी अच्छा हो जाएगा. यह सब तो भर जाएगा." और कल्याणी ने अपने छाती और कूल्हों को छूते हुए कहा, "यह सब जिन्हें तुम अपने हाथ में भरता, अपने बाजू में भरता. ठीक है, कुछ हाथ में तो भी आना मांगता. सुंदरी को लेना हो तो मेरे को बोलना; हम सब ठीक कर देगा. पर तुमको आने का मेरे पास. गिरिजा के पास नहीं आने का." और फिर बच्चे को अपने बाजुओं में झुलाती हुए कल्याणी बोली, "हम इसका नाम अमची रखा."

"अमची, अमची क्यों?"

"यह तो हम को नहीं मालूम." कल्याणी ने जवाब दिया. और फिर थोड़ा हंसी. "कोई कस्टमर बोला, मेरा तेरे को रह गया तो नाम अमची रखना. यह तो हम नहीं जानता कि उसी का ठहरा कि किसका, पर नाम याद रह गया मेरे को और तुम भी कुछ नहीं बोला." और फिर हंसते हुए बोली, "अच्छा अगले टैम देखेगा."

महीपत ने एक नजर अमची की तरफ देखा और फिर इर्द-गिर्द के माहौल की तरफ—यहां पलेगा यह बच्चा. बच्चा—मैं तो समझता था कि इन लड़कियों के पास आता हूं तो मैं कोई पाप नहीं करता. यह दस की आशा रखती हैं तो मैं बीस देता हूं. यहां बच्चा?

यहां तो दम घुटता है. जाते समय तो घुटता ही है.

महीपत ने जेब से पांच का नोट निकाला और बच्चे पर रख दिया—यह इस दुनिया में आया है तो इसलिए इसको यह दक्षिणा.

"नहीं नहीं, यह इसे नहीं लेगा."

"लेना पड़ेगा, तुम मना नहीं कर सकतीं."

फिर वाकई कल्याणी इंकार नहीं कर सकी. "बच्चे की खातिर," महीपत ने कल्याणी के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "मुझे माफ कर दो कल्याणी. मैंने सचमुच आज तुम से जालिमोंवाला सलूक किया." लेकिन महीपत की बात से बिल्कुल यह पता न चलता था कि वह फिर ऐसा न करेगा. जरूर करेगा वह. इसी बात का तो नशा है उसे, बीयर तो फालतू की-सी बात थी.

कल्याणी ने जवाब दिया, "कोई बात नहीं. पर तुम आज खलास कर दिया. मार दिया मेरे को." और वह यह शिकायत कुछ ऐसे ढंग से कर रही थी जैसे मरना ही तो चाहती थी. क्या इसलिए कि पैसे मिलते हैं, पेट पलता है. नहीं, हां. जब भूख लगती है, जब भूख से पेट दुखता है तो मालूम होता है, दुनिया में सारे मर्द खत्म हो गए, औरतें मर गईं. . .

महीपत ने पूछा, "यह अमची लड़का है या लड़की?"

एक अजीब-सी किरण ने कल्याणी के मुरझाये चेहरे को रोशन कर दिया और वह चेहरे की पंखुरियां खोलते हुए बोली, "छोकरा."

फिर कल्याणी ने जल्दी अमची का लंगोट खोला और दोनों हाथों से उठाकर अमची को महीपत के सामने करते हुए बोली, "देखो, देखो."

महीपत के मुंह मोड़ते ही कल्याणी ने पूछा, "अब कबी आयेगा."

"जल्दी." महीपत ने घबराकर जवाब दिया और फिर वह बाहर कहीं रोशनियों में मुंह छिपाने के लिए निकल गया. □

अनुवाद : ब्रजेश्वर मदान

एक प्रसंग

बेदी : एक और सिसीफस

देवेंद्र सत्यार्थी

राजेंद्र सिंह बेदी के देहांत का शोक-समाचार पढ़ने पर मैंने पहला काम यह किया कि कामू की प्रसिद्ध रचना 'मिथ ऑफ सिसीफस' सातवीं बार फिर से पढ़ी.

यूनानी लोककथाओं का वह श्रापित पात्र आज भी वैसे ही चट्टान को धकेलता हुआ पहाड़ी के ऊपर ले जा रहा है, और चट्टान हर बार फिसलकर नीचे आ जाती है. हर बार हो सिसीफस के कठिन संघर्ष का वही परिणाम!

राजेंद्र सिंह बेदी की प्रत्येक रचना एक अन्य सिसीफस की याद ताजा करती रही, श्राप को आशीर्वाद में बदलने के लिए संघर्ष के प्रति सत्कार जगाती रही. बेदी कहानी-कला में मेरे गुरु थे. इस बात का मुझे हमेशा गर्व रहेगा. □

प्रस्तुति : सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाजवंती

हत्थ लायां कुम्लहान नी ए लाजवंती दे बूटे. . .(यह छुई-मुई के पौधे हैं री, हाथ लगाते ही कुम्लहा जाते हैं)

बंटवारा हुआ और बेशुमार जख्मी लोगों ने उठकर अपने बदन से खून पोंछ लिया. . .और फिर मिलकर उनकी तरफ देखने लगे जिनके बदन सही सलामत थे, लेकिन दिल जख्मी!

गली-गली मुहल्ले-मुहल्ले में 'फिर बसाओ' कमेटियां बन गयी थीं और शुरू-शुरू में बड़ी लगन के साथ कारोबार में बसाव, जमीन पर बसाव और घर में बसाव प्रोग्राम शुरू कर दिया गया था, लेकिन एक प्रोग्राम ऐसा था जिसकी तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया था. यह प्रोग्राम उन औरतों के सिलसिले में था जिसका स्लोगन था—'दिल में बसाओ.' और उस प्रोग्राम का नारायण बाबा के मंदिर और उसके आसपास बसनेवालों की तरफ बहुत विरोध हुआ था.

इस प्रोग्राम को हरकत में लाने के लिए मंदिर के पास मुहल्ले में एक कमेटी कायम हुई थी और ग्यारह वोटों के बहुमत से सुंदरलाल बाबू को उसका सेक्रेटरी चुन लिया गया था. लोगों का खयाल था कि सुंदरलाल से ज्यादा योग्यता से इस काम को कोई दूसरा नहीं कर सकेगा. शायद इसलिए कि सुंदरलाल की अपनी बीवी अगवा हो चुकी थी. . .और उसका नाम था—लाजो, लाजवंती.

चुनांचे प्रभात फेरी निकालते हुए जब सुंदरलाल बाबू का साथी रसालो और नेकीराम वगैरह मिलकर गाते—'हत्थ लायां कुम्लाहन नी लाजवंती दे बूटे. . .' तो सुंदरलाल की आवाज एकदम बंद हो जाती और वह खामोशी के साथ चलते-चलते लाजवंती के बारे में सोचता, जाने वह कहां रही होगी, वह कभी आयेगी भी या नहीं. और पथरीले फर्श पर चलते-चलते उसके पैर लड़खड़ाने लगते.

और अब तो यहां तक नौबत आ गयी थी कि उसने लाजवंती के बारे में सोचना ही छोड़ दिया था. उसका गम अब दुनिया का गम हो चुका था. उसने अपने गम से बचने के लिए लोकसेवा में अपने-आपको गर्क कर लिया था. इसके बावजूद दूसरे साथियों की आवाज में आवाज मिलाते हुए, उसे यह खयाल जरूर आता—इंसानी दिल कितना नाजुक होता है, जरा-सी बात पर उसे ठेस लग सकती है. वह लाजवंती के पौधे की तरह ही है, हाथ भी बढ़ाओ तो कुम्हला जाता है, जबकि उसने अपनी लाजवंती के साथ बदसलूकी करने में कोई कसर न उठा रखी थी. वह जगह-बेजगह उठते-बैठते खाने की तरफ नाध्यानी बरतने और ऐसी ही मामूली बातों पर लाजवंती को पीट दिया करता था.

लाजवंती शहतूत की डाली की तरह नाजुक देहाती लड़की थी. ज्यादा धूप देखने की वजह से उसका रंग सांवला हो चुका था. तबीयत में अजीब तरह की बेकरारी थी जो पारे की तरह बड़े से बड़े पत्ते पर इधर-उधर लुढ़कता रहता था. उसका दुबलापन उसकी सेहत खराब होने की दलील न थी. एक सेहतमंदी की निशानी थी, जिसे देखकर भारी भरकम सुंदरलाल पहले तो घबराया, लेकिन जब उसने देखा कि वह बड़े से बड़ा बोझ, हर किस्म का सदमा और मारपीट तक भी सह गुजरती है तो वह बदसलूकी को निरंतर बढ़ाता चला गया और उसने उन हदों का खयाल ही न किया जहां पहुंच जाने के बाद किसी भी इंसान का सब्र टूट सकता है. उन हदों को धुंधला देने में लाजवंती खुद भी तो मददगार साबित हुई थी क्योंकि वह देर तक उदास न बैठ सकती थी, इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब क्या होता है जब मां-बाप अपनी बेटी को, पति, पत्नी को और भाई, बहन को पहचानने तक से इंकार कर देता है? आजादी के झंडे तले हुए भारत विभाजन के मरकज को राजेंद्र सिंह बेदी ने खुद देखा और भोगा था. इस मसले पर बहुत-से लेखकों ने बहुत कुछ लिखा, लेकिन बेदी ने कम . . . मगर जो कुछ भी लिखा वह इतना संवेदनशील कि सच और झूठ की सीमाएं पार कर जाता है . . . जैसे कि यह कहानी जो उन दिनों पाकिस्तान में रह गयीं स्त्रियों की मानसिक पीड़ा को रेखांकित करती है . . .

बड़ी से बड़ी लड़ाई के बावजूद सुंदरलाल के एक बार मुस्कराकर देखने से ही अपनी हंसी न रोक पाती थी. लपककर उसके पास चली आती और गले में बांहें डालते हुए कहती, "फिर मारा तो मैं तुमसे नहीं बोलूंगी." साफ पता चलता था कि वह एकदम सारी मारपीट भूल चुकी है. गांव की दूसरी लड़कियों की तरह वह भी जानती थी कि मर्द ऐसा ही सलूक किया करते हैं, बल्कि औरतों में कोई भी सरकशी करती तो लड़कियां खुद ही नाक पर अंगुली रखकर कहतीं, "ले वो भी कोई मर्द है भला, औरत जिसके काबू में नहीं आती!" और यह मारपीट उन गीतों पर चल गयी थी जो खुद लाजो गाया करती थी—'मैं शहरी लड़के से शादी नहीं करूंगी, वह बूट पहनता है और मेरी कमर बहुत पतली है!'. . . . लेकिन पहली ही फुरसत में लाजो ने शहरी लड़के से लौ लगा ली और उसका नाम था सुंदरलाल जो बारात के साथ लाजवंती के गांव चला आया था, और जिसने दूल्हे के कान में सिर्फ इतना ही कहा था, "तेरी साली तो बड़ी नमकीन है भाई, बीवी भी चटपटी होगी." लाजवंती ने सुंदरलाल की इस बात को सुन लिया था. लेकिन वह यह भूल गयी कि सुंदरलाल कितने बड़े-बड़े और भद्दे बूट पहने हुए है और उसकी अपनी कमर कितनी पतली है.

और प्रभात-फेरी के समय ऐसी ही बातें सुंदरलाल को याद आतीं और वह सोचने लगता सिर्फ एक बार, एक बार लाजो मिल जाये तो मैं उसे सचमुच ही दिल में बसा लूं. लोगों को बता दूं कि उन बेचारी औरतों के अगवा होने में उनका कोई कसूर नहीं. फसादियों का शिकार हो जाने में उनकी कोई गलती नहीं. वह समाज जो उन बेकसूर औरतों को कबूल नहीं करता, उन्हें अपना नहीं लेता, एक गला-सड़ा समाज है और उसे खत्म कर देना चाहिए. वह उन औरतों को घरों में आबाद करने की वकालत किया करता और उन्हें ऐसा मरतबा देने के लिए कहा करता जो घर में किसी भी औरत, किसी भी मां, किसी भी बहन-बेटी या बीवी को दिया जाता है. फिर वह कहता कि उन्हें इशारे-किनारे से भी ऐसी बात याद नहीं दिलानी चाहिए जो उनके साथ हुई, क्योंकि उनके दिल जख्मी हैं. वे नाजुक हैं, छुई-मुई की तरह. . .हाथ भी लगाओ तो कुम्लहा जायेंगी.

लिहाजा 'दिल में बसाओ' प्रोग्राम को अमली जामा पहनाने के लिए मुहल्ला महाकालेश्वर की इस कमेटी ने कई प्रभात-फेरियां निकालीं. सुबह चार बजे का वक्त उनके लिए सबसे उचित समय होता था. न लोगों का शोर, न ट्रैफिक की उलझन. रात भर चौकीदारी करनेवाले कुत्ते तक बुझे हुए तंदूरों में सिर देकर सो रहे होते. अपने-अपने बिस्तरों में दुबके हुए लोग प्रभात-फेरीवालों की आवाज सुनकर सिर्फ इतना कहते—'वही मंडली है.' और फिर कभी सब्र और कभी तुनकमिजाजी से सुंदरलाल का लेक्चर सुना करते. वे औरतें जो बड़ी महफूज थीं, इस पार पहुंच गयी थीं, गोभी के फूल की तरह फैली पड़ी रहतीं और उनके खाविंद पहलू में डंठलों की तरह अकड़े पड़े-पड़े प्रभात-फेरी के शोर पर मुंह में कुछ भुनभुनाते चले जाते या कहीं कोई बच्चा थोड़ी देर के लिए आंखें खोलता और 'दिल में बसाओ' के फरियादी प्रोग्राम को कोई गाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझकर पंगूड़े में सो जाता.

लेकिन सुबह के समय कान में पड़ा हुआ शब्द बेकार नहीं जाता. वह सारा दिन एक तकरार के साथ दिमाग में चक्कर लगाता रहता है. और कई बार तो आदमी उसके अर्थ को भी नहीं समझता और गुनगुनाता चलता है. उसी आवाज के घर कर जाने की बदौलत ही था कि उन्हीं दिनों जबकि मिस मृदुला साराभाई द्वारा हिंद और पाकिस्तान में दंगों के दरम्यान अपहरण की गयी औरतों के तबादलों में महाकालेश्वर के कुछ आदमी उन्हें फिर से बसाने के लिए तैयार हो गये. अपहृत औरतें, उनके हमदर्द कुछ देर तक एक-दूसरे को देखते रहे और फिर अपने-अपने बरबाद घरों को फिर से आबाद करने के लिए अपने-अपने काम पर चले गये. रसालो, नेकीराम और सुंदरलाल बाबू, महेंद्रसिंह—जिंदाबाद. . और कभी सोहनलाल–जिंदाबाद के नारे लगाते रहे.

मगर अपहृत औरतों में कुछ ऐसी थीं जिनके मां-बाप शौहरों और भाइयों ने उन्हें पहचानने से इंकार कर दिया था कि वह मर क्यों न गयी? अपनी इज्जत को बचाने के लिए उन्होंने जहर क्यों न खा लिया. कुएं में छलांग क्यों न लगा दी. वे बुजदिल थीं जो इस तरह जिंदगी से चिमटी हुई थीं. सैकड़ों-हजारों औरतों ने अपनी अस्मत लुट जाने से पहले अपनी जान दे दी. लेकिन उन्हें क्या पता कि वे जिंदा रहकर कितनी बहादुरी से काम ले रही हैं. कैसे पथराई हुई आंखों से मौत को घूर रही हैं. ऐसी दुविधा में जिसमें से कोई जी ही जी में अपना नाम दोहराती–सुहागवंती, सुहागवाली. . . और अपने भाई को असमंजस में देखकर आखिरी बार कहती, "तू भी मुझे नहीं पहचानता बिहारी? मैंने तुझे गोद में खिलाया है रे!" और बिहारी जता देना चाहता लेकिन फिर मां-बाप की तरफ देखता और मां-बाप अपने जिगर पर हाथ रखकर नारायण बाबा की ओर देखते और निहायत बेबसी के आलम में नारायण बाबा आसमान की तरफ देखता जो दरअसल, कोई हकीकत नहीं रखता और जो सिर्फ हमारी नजर का धोखा है. जो सिर्फ एक हद है, जिसके पार हमारी निगाहें काम नहीं करतीं.

लेकिन फौजी ट्रक में मिस साराभाई तबादले में जो औरतें लायीं, उनमें लाजवंती न थी, सुंदरलाल ने उम्मीद व उत्सुकता से आखिरी लड़की तक को ट्रक से उतरते देखा और फिर उसने बड़े धैर्य से अपनी कमेटी की सरगर्मियों को ही याद कर लिया. अब वह सिर्फ सुबह को ही प्रभात-फेरी के लिए न निकलते थे बल्कि शाम को भी जुलूस निकालने लगे थे, जिसमें कमेटी का बूढ़ा सदर वकील कालका प्रसाद सूफी खंगारों से मिलीजुली एक तकरीर कर देता और सेवादार एक पीकदान लिये ड्यूटी पर खड़ा रहता. लाऊडस्पीकर से अजीब किस्म की आवाजें आतीं फिर कहीं नेकीराम मरहूम कुछ कहने के लिए उठते लेकिन वह जितनी भी बातें कहते और जितने भी शास्त्रों का हवाला देते उतना ही अपने मकसद के खिलाफ बातें करते. और यूं मैदान हाथ से जाते देखकर सुंदरलाल बाबू उठता लेकिन वह दो शब्दों के अलावा कुछ भी न कह पाता. उसका गला रुंध जाता, उसकी आंखों से आंसू बहने लगते और वह तकरीर न कर पाता. आखिर बैठ जाता, लेकिन भीड़ पर एक अजीब तरह की खामोशी छा जाती और सुंदरलाल बाबू की उन बातों का असर जो कि उसकी दिल की गहराइयों से निकलकर आयी थीं, कालका प्रसाद सूफी की सारी तकरीर पर भारी होता. लेकिन लोग वहीं रो देते. अपनी भावनाओं का दुख निकालकर खाली मन घर चले जाते.

एक रोज कमेटीवाले सांझ के समय भी प्रचार करने चले आये और होते-होते पुरातन पंथियों के गढ़ में पहुंच गये. मंदिर के बाहर एक पेड़ के इर्द-गिर्द सिमटकर थड़े पर कई श्रद्धालु बैठे हुए थे और रामायण कथा हो रही थी. नारायण बाबा रामायण का वह हिस्सा सुना रहे थे, जहां एक धोबी ने अपनी धोबिन को घर से निकाल दिया था और उससे कह दिया—मैं राजा रामचंद्र नहीं हूं जो इतने साल रावण के साथ रह आनेवाली सीता को भी घर में बसा लूं और रामचंद्रजी ने महासतवंती सीता को घर से निकाल दिया, ऐसी हालत में जबकि वह गर्भवती थी. क्या इससे बढ़कर रामराज्य का कोई सबूत मिल सकता है. नारायण बाबा ने कहा कि यह होता है रामराज, जिसमें एक धोबी की बात को भी इतनी कद्र की निगाह से देखा जाता है.

कमेटी का जुलूस मंदिर के पास रुक चुका था और लोग रामायण की कथा और श्लोक का वर्णन सुनने के लिए ठहर चुके थे. सुंदरलाल आखिरी फिकरे को सुनते हुए कह उठा, "हमें ऐसा रामराज नहीं चाहिए बाबा."

"चुप रहो जी! तुम कौन होते हो?" खामोश मजमे से आवाजें आने लगीं और सुंदरलाल ने आगे बढ़कर कहा, "मुझे बोलने से कोई नहीं रोक सकता."

फिर मिलीजुली आवाजें आयीं, "खामोश, हम नहीं बोलने देंगे." और एक कोने से यह आवाज भी आयी, "मार देंगे!"

नारायण बाबा ने बड़ी मीठी आवाज में कहा, "तुम शास्त्रों की मान-मर्यादा को नहीं जानते सुंदरलाल."

सुंदरलाल ने कहा, "मैं एक बात समझता हूं बाबा, रामराज में धोबी की आवाज सुनी जाती है लेकिन सुंदरलाल की नहीं." जो भीड़ उसे मारने पर तुली थी वह फिर से बैठते हुए बोली, "सुनो सुनो." सुंदरलाल बोला, "श्रीराम नेता थे हमारे. पर यह क्या बात है बाबाजी, उन्होंने एक धोबी की बात को सत्य समझ लिया लेकिन इतनी बड़ी महारानी के सत्य पर विश्वास नहीं किया."

नारायण बाबा ने अपनी दाढ़ी की खिचड़ी पकाते हुए कहा, "इसलिए कि सीता उनकी पत्नी थी. सुंदरलाल तुम इस बात की महानता को नहीं जानते."

"हां बाबा!" सुंदरलाल बाबू ने कहा, "इस संसार में बहुत सारी बातें हैं जो मेरी समझ में नहीं आतीं. पर मैं सच्चा रामराज उसे समझता हूं जिसमें इंसान अपने-आप पर जुल्म नहीं कर सकता. अपने-आप पर बेइंसाफी करना भी उतना ही बड़ा पाप है, जितना कि दूसरे से बेइंसाफी करना. आज भी भगवान राम ने सीता को घर से निकाल दिया है, इसलिए कि वह रावण के पास रह कर आयी है. इसमें क्या कसूर था सीता का? क्या बेचारी बहुत सारी मां-बहिनों की तरह छल-कपट का शिकार नहीं हुई. रावण के वहशीपन की शिकार जिसके दस सिर इंसान के थे लेकिन सबसे बड़ा सिर गधे का. आज हमारी निर्दोष सीताएं घर से निकाल दी गयी हैं. सीता लाजवंती. . . ." और सुंदरलाल बाबू ने रोना शुरू कर दिया. रसालो और नेकीराम ने वे तमाम सुर्ख कंडे उठा लिए जिन पर आज ही स्कूल के छोकरों ने नारे काटकर चिपका दिए थे. और फिर वह सब 'सुंदरलाल, जिंदाबाद!' के नारे लगाते हुए चल दिये.

"महासती सीता, जिंदाबाद!" एक तरफ से आवाज आयी. दूसरी तरफ से आवाज आयी, "रामचंद्र, जिंदाबाद!"

नारायण बाबा की महीनों की कथा अकारथ चली गयी. बहुत-से लोग जुलूस में शामिल हो गये जिसके आगे-आगे वकील कालका प्रसाद और हुक्मसिंह चल रहे थे. अपनी बूढ़ी हड्डियों को जमीन पर मारते और एक फाहताना-सी आवाज पैदा करते हुए. . . और उनके दरम्यान कहीं सुंदरलाल जा रहा था. उसकी आंखों से अभी तक आंसू झर रहे थे. आज उसके दिल को बड़ी ठेस लगी थी और लोग बड़े जोश के साथ एक-दूसरे के साथ मिलकर गा रहे थे.

अभी गीत की आवाज लोगों के कानों में गूंज रही थी. अभी सुबह भी नहीं हो पायी थी. . . कि लालचंद जिसे अपना असर-रसूख इस्तेमाल करके सुंदरलाल और खलीफा कालका प्रसाद ने राशन डिपो ले दिया था, दौड़ा-दौड़ा आया और अपनी गाढ़े की चादर से हाथ फैलाते हुए बोला, "बधाई हो सुंदरलाल!"

सुंदरलाल ने मीठा गुड़ चिलम में रखते हुए कहा, "किस बात की बधाई लालचंद?"

"मैंने लाजवंती भाभी को देखा है."

सुंदरलाल के हाथ से चिलम गिर गयी, "कहां देखा है?" उसने लाल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद को कंधों से पकड़ते हुए पूछा.

"वागा की सरहद पर."

सुंदरलाल ने लालचंद को छोड़ दिया और बोला, "कोई और होगी. तुम उसे पहचानते भी हो? भला क्या पहचान है उसकी?"

"एक तिल ठोढ़ी पर है और दूसरा गाल पर."

"हां-हां-हां!" और सुंदरलाल ने खुद ही कह दिया, "तीसरा माथे पर." वह नहीं चाहता था कि कोई शक रह जाये और एकदम उसे लाजवंती के जिस्म के जाने-पहचाने सारे तंदोले याद आ गये जो उसने बचपन में अपने जिस्म पर बनवा लिये थे और जो उन हल्के-हल्के दानों की तरह थे जो छुई-मुई के पौधे के बदन पर होते हैं और जिसकी तरफ इशारा करते ही वह कुम्हलाने लगता है. बिल्कुल इन तंदोलों की तरफ इशारा करते ही लाजवंती शरमा जाती थी. अपने-आप में सिमट जाती थी. गोया उसके सब रहस्य किसी को मालूम हो गये हों और किसी न मालूम खजाने के लुट जाने से वह उदास हो गयी हो.

सुंदरलाल का सारा बदन एक अनजान खौफ और मुहब्बत और उसकी पवित्र आग में जलने लगा. उसने फिर लालचंद को पकड़ लिया और पूछा, "लाजवंती वागा कैसे पहुंच गयी?"

लालचंद ने कहा, "हिंद और पाकिस्तान में औरतों का तबादला हो रहा था न."

"फिर क्या हुआ?" सुंदर लाल ने पूछा.

रसालो भी अपनी चारपाई पर उठ बैठा और तंबाकू की नवाजिश की खांसी खांसते हुए कहा, "सचमुच आ गयी भाभी!"

लालचंद ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "वागा पर सोलह औरतें पाकिस्तान ने दे दीं और उसके बदले में सोलह औरतें ले ली, लेकिन एक झगड़ा खड़ा हो गया. हमारे वालंटियर एतराज कर रहे थे कि तुमने जो औरतें दी हैं इनमें बूढ़ी-अधेड़ और बेकार औरतें ज्यादा हैं. इस तनातनी पर लोग जमा हो गये. उस वक्त उधर के लोगों ने लाजो भाभी को दिखाते हुए कहा, "देखो, तुमने जितनी औरतें दी हैं उनमें एक भी बराबरी करती है उनकी?"... और वहां लाजो भाभी सबकी नजरों से तंदोलों को छुपा रही थीं.

फिर झगड़ा बढ़ गया, दोनों ने अपना-अपना माल वापस लेने की ठान ली. मैंने शोर मचाया, "लाजो, लाजवंती, लाजो भाभी!" मगर हमारी फौज के सिपाहियों ने हमें मार-मारकर भगा दिया और लालचंद अपनी कोहनी दिखाने लगा जहां उसे लाठी पड़ी थी. रसालो और नेकीराम चुपचाप बैठे रहे. सुंदरलाल कहीं दूर देखने लगा. शायद सोचने लगा, लाजो आयी भी पर न आयी और लालचंद की शक्ल से साफ लग रहा था कि जैसे वह बेकार नील की सहरा छान आया था दरख्त की छांव में जबान निकाले हुए हांप रहा है! मुंह से इतना भी नहीं निकलता कि पानी दे दो. उसे यों महसूस हुआ कि बटवारे के पहले और बटवारे के बाद का शैतान अभी तक फरमा है सिर्फ उसकी शक्ल बदल गयी है. अब लोगों में पहले-सा संबंध भी नहीं रहा.

अब नौजवान औरत के रूप में, उसके निखार, उसके गुप्त और प्रिय रहस्यों, उसके तंदोलों की सार्वजनिक नुमाइश पर व्यापार करने लगे हैं. यह सब व्यापारियों की रग-रग में बस चुका है. पहले मंडी में माल बिकता था और भाव-ताव करनेवाले हाथ हिलाकर उस पर रूमाल डाल देते थे और यों गुप्ती कर लेते थे गोया रूमाल के नीचे अंगुलियों के इशारे से सौदा हो जाता था. अब गुप्ती का रूमाल भी हट चुका था और सामान-सौदे हो रहे थे. यहां तक कि लोग व्यापार के सिद्धांत भी भूल गये थे. यह सारा कारोबार पुराने जमाने की दास्तान मालूम हो रहा था जिसमें औरतों की आजादानी खरीद-फरोख्त किस्सा बयान किया जाता है. उजमेव अनगिनत नग्न औरतों के सामने खड़ा उन्हें टोह-टोह के देख रहा है और जब वह किसी औरत के जिस्म को अंगुली लगाता तो उसमें एक गुलाबी-सा गड्ढा पड़ जाता और उसके इर्द-गिर्द एक जर्द-सा हल्का और फिर जर्दियां और सुर्खियां एक-दूसरे की जगह लेने लगतीं.

बेदी की लघु रचनाएं :

पंजाबियत

राजेंद्रसिंह बेदी के साथ फैज अहमद 'फैज' संबंधी बातें हो रही थीं कि फैज की पंजाबियत का जिक्र करते हुए उन्होंने एक घटना सुनायी.

जिन दिनों वे रूस गये हुए थे, फैज भी वहीं थे. एक दिन उन दोनों को लेखकों के एक सम्मेलन में आमंत्रित किया गया.

"यहां इस बात का जिक्र कर दूं," बेदी ने कहा, "कि रूसी लोग...चाहे नेता हो, चाहे लेखक...बहुत लंबे भाषण देते हैं. जो भी आदमी बोलने के लिए उठता है, बैठने का नाम ही नहीं लेता."

सो, उस सम्मेलन में भी जब कई लेखकों के बाद आखिरी लेखक ने अपना भाषण शुरू किया, तो वह खत्म होने में नहीं आ रहा था. फैज, जो पहले ही उकताये हुए बैठे थे, बड़ी बेचैनी महसूस करने लगे. उनसे कुछ दूर बैठे बेदी चिंतित हुए. फिर तो देखते देखते फैज के चेहरे का रंग उड़ने लगा. उनकी घबराहट बढ़ती जा रही थी. लेकिन दूर बैठे होने की वजह से उनसे कुछ पूछना मुमकिन नहीं था.

आखिर जब उस लेखक का भाषण खत्म हुआ और लोग हाल में से बाहर निकले, तो बेदी जल्दी से फैज के पास गये. इससे पहले कि वे उनका हाल पूछते, फैज ने छत की ओर मुंह उठाकर ऊंची आवाज में, ठेठ पंजाबी में एक जोरदार गाली दी.

अगले ही क्षण, बेदी ने देखा, फैज के चेहरे पर की बेचैनी गायब थी. □

प्रस्तुति : सुखबीर

सुंदरलाल सरहद पार जाने की तैयारी कर ही रहा था कि उसे लाजो के आने की खबर मिली. एकदम ऐसी खबर मिल जाने से सुंदर लाल घबरा गया. उसका एक कदम फौरन दरवाजे की तरफ बढ़ा लेकिन लौट आया. उसका जी चाहता था कि वह रूठ जाये और कमेटी के तमाम प्लेकार्डों और झंडियों को फैलाकर बैठ जाये और फिर रोये, लेकिन वहां जज्बात का यों मुजाहरा मुमकिन न था. उसने मर्दानावार इस कशमकश का मुकाबला किया और अपने कदमों को मोड़ते हुए चौकी कलां की तरफ चल दिया, क्योंकि वही जगह थी जहां अपहृत औरतों की डिलीवरी दी जाती थी.

अब लाजो सामने खड़ी थी और एक खौफ के जज्बे से कांप रही थी. वही सुंदरलाल को जानती थी और उसके अलावा कोई और नहीं जानता था. वह पहले ही उसके साथ सलूक करता था और अब जबकि एक गैरमर्द के साथ जिंदगी के दिन बिताकर आयी थी, न जाने क्या करेगा? सुंदरलाल ने लाजवंती की तरफ देखा. वह खास इस्लामी तर्ज का लाल दुपट्टा ओढ़े थी और बुक्कल मारे हुए थी. वह सुंदरलाल से इतना डरी हुई थी कि उसे कपड़े बदलने या दुपट्टा ठीक करने का भी खयाल न रहा. वह हिंदू और मुसलमान तहजीब के बुनियादी फर्क दायें बुक्कल और बायें बुक्कल में फैसला करने का प्रयत्न कर रही थी. अब वह सुंदरलाल के सामने खड़ी थी, एक उम्मीद और एक डर के जज्बे के साथ.

सुंदरलाल को धक्का-सा लगा. उसने देखा, लाजवंती का रंग कुछ निखर गया है और पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा तंदुरुस्त लग रही है. सुंदरलाल ने जो कुछ लाजो के बारे में सोच रखा था सब गलत था. वह समझता था, गम में घुल जाने के बाद लाजो बिल्कुल मरियल हो चुकी होगी. इस खयाल से कि वह पाकिस्तान में बड़ी खुश रही है, उसे सदमा हुआ, लेकिन वह चुप रहा क्योंकि उसने चुप रहने की कसम खा रखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी. मगर वह यह न जान पाया कि वह इतनी खुश थी तो फिर आयी क्यों है? अपनी मर्जी के खिलाफ यहां आना पड़ा. हां, लाजवंती का चेहरा जर्दी लिये हुआ था और गम महज गम से उसके बदन के गोश्त ने हड्डियों को छोड़ दिया था. वह गम की कसरत से मोटी हो गयी थी और सेहतमंद नजर आती थी. लेकिन यह ऐसी सेहतमंदी थी, जिसमें दो कदम चलने से आदमी का सांस फूल जाता है.

अपहृता के चेहरे पर पहली निगाह डालने का प्रभाव कुछ अजीब-सा हुआ. लेकिन उसने सब खयालों का एक अनोखी मर्दानगी से सामना किया. वहां और भी बहुत लोग मौजूद थे. किसी ने कहा, "हम नहीं लेते मुसलमानों की छोड़ी हुई औरतें."

और यह आवाज रसालो और नेकीराम के नारों में गुम होकर रह गयी. उन सब आवाजों से अलग कालका प्रसाद की कटती और चिल्लाती आवाज सुनायी पड़ रही थी. वह सांस भी लेता और बोलता भी जाता. वह इस नयी हकीकत का शिद्दत से कायल हो चुका था. यों लगता था जैसे आज उसने कोई नया वेद या पुराण पढ़ लिया हो और अपने इस ज्ञान में वह दूसरों को भी हिस्सेदार बनाना चाहता था. उन सब लोगों और उनकी आवाजों में घिरे हुए लाजो और सुंदरलाल अपने डेरे को जा रहे थे और ऐसा मालूम होता था जैसे हजारों साल पहले के रामचंद्र और सीता किसी बहुत लंबे नैतिक वनवास के बाद अयोध्या लौट रहे हों. एक तरफ तो लोग दीपमाला कर रहे हैं और दूसरी तरफ उन्हें इतनी लंबी सजा देने पर दुख भी.

लाजवंती के चले आने पर भी सुंदरलाल ने उसी शिद्दत के साथ 'दिल में बसाओ' प्रोग्राम जारी रखा. उसने प्राण और प्रतिज्ञा दोनों के अनुसार उसे निभा दिया था और लोग जिन्हें सुंदरलाल की बातों में कोरी भावुकता नजर आती थी, कायल होना शुरू हो गये थे. अक्सर लोगों के दिल में खुशी थी और कई लोगों के दिल में अफसोस. मकान नंबर पांच को छोड़कर बहुत-सी औरतें सुंदरलाल सोशल वर्कर के घर आने से घबराती थीं.

लेकिन सुंदरलाल को किसी की परवाह नहीं थी. उसके दिल की रानी आ चुकी थी. और उसके दिल का खालीपन भर चुका था. सुंदरलाल ने लाजवंती की स्वर्ण मूर्ति को अपने दिल में स्थापित कर लिया था और खुद दरवाजे पर बैठा उसकी हिफाजत करने लगा था. लाजवंती पहले खौफ से सहमी रहती थी मगर फिर सुंदरलाल का नर्म रवैया देखकर धीरे-धीरे खुलने लगी.

सुंदरलाल लाजवंती को अब 'लाजो' के नाम से नहीं पुकारता था, उसे कहता था–'देवी.' और लाजो एक अनजानी खुशी से पागल होती जा रही थी. वह कितना चाहती थी कि सुंदरलाल को अपनी बीती कोई वारदात कह सुनाये और सुनाते-सुनाते रो दे. . .इस कदर रो दे कि उसके सारे गुनाह आंसुओं में धुल जायें! लेकिन सुंदरलाल लाजो की वे बातें सुनने से गुरेज करता था और लाजो अपने खुल जाने में ही एक तरह से सिमटी रहती थी. अलबत्ता जब सुंदरलाल सो जाता तो उसे देखा करती और अपनी इस चोरी में पकड़ी जाती. जब सुंदरलाल इसकी वजह पूछता तो वह 'नहीं, यों ही' के सिवा कुछ न कहती और सारे दिन का थका-हारा सुंदरलाल फिर ऊंघ जाता.

शुरू-शुरू में सुंदरलाल ने लाजवंती से यह जरूर पूछा था, "कौन था वह? अच्छा सलूक करता था?"

"हां."

"मारता तो नहीं था?"

लाजवंती ने अपना सिर सुंदरलाल की छाती पर सरकाते हुए कहा था, "नहीं." और फिर बोली, "वह मारता नहीं था लेकिन मुझे इससे ज्यादा डर आता था. तुम मुझे मारते भी थे पर तुमसे डरती नहीं थी. अब तो न मारोगे. . .!"

सुंदरलाल की आंखों में आंसू उमड़ आये, "नहीं देवी, अब नहीं मारूंगा."

"देवी!" लाजवंती ने सोचा और वह भी आंसू बहाने लगी.

बेदी की लघु रचनाएं :

शरणार्थी कैंप

कोलवाड़ी शरणार्थियों का एक कैंप है. यहां मनुष्य अपने आदिकाल से संघर्ष कर रहा है. स्त्रियों ने खपरैल डालकर घर बना लिये हैं. मजदूरों ने टीन की दूकानें खड़ी कर ली हैं. कभी-कभी कारपोरेशन के कर्मचारी उन्हें बेदखली की धमकी देने चले आते हैं.

अस्सी वर्षीय रंगीराम . . . अभी-अभी बेदखली से बचने के लिए उसने कर्मचारी के हाथ में पांच रुपये पकड़ा दिये हैं. फिर, वह वहीं बैठ जाता है और हांफने लगता है. आखिर वह घुटनों पर हाथ रखकर उठने की कोशिश करता है, तो उसके मुंह से निकलता है : "हे मेरे रामजी!" तब वह खंभे से लगी रस्सी पकड़कर उठ खड़ा होता है, "कोई बात नहीं," वह कहता है, "एक दिन तो बाकायदा दूकान होगी ही. उसमें साढ़े तीन सौ की रसद डाल दूंगा. छह महीने में पांच सौ की और."

एक विधवा अपने 'मनहूस' बच्चे को घर में छोड़कर रंगीराम की दूकान पर सौदा लेने आती है. उसकी कमीज में छातियों-वाले स्थान पर घिस-घिसकर दो छेद हो गये हैं. वह मुस्करा रही है, और नहीं भी. और वह कहती है, "जैसे-तैसे, लालाजी, आज का दिन तो बीत ही गया है."

दो बच्चे खेलते हुए दूकान के सामने से गुजर जाते हैं. उनमें से एक दूसरे को कह रहा है, "जब हम लाहौर में थे न, दीपू, तो इससे भी बड़े-बड़े मकान थे हमारे."

यह हमारी सभ्यता है, जिसमें बच्चे भूतकाल, नौजवान वर्तमान और बूढ़े भविष्य की बातें किया करते हैं. □

प्रस्तुति :सुखबीर

और इसके बाद लाजवंती सब कुछ कह देना चाहती थी, लेकिन सुंदरलाल ने कहा, "जाने दो बीती बातें. इसमें तुम्हारा क्या कसूर है. कसूर हमारे समाज का जो तुम जैसी देवियों को अपने यहां इज्जत की जगह नहीं देता. वह तुम्हारी हानि नहीं करता अपनी करता है.''

और लाजवंती की मन की मन में ही रही जिसका जिस्म बंटवारे के बाद अब देवी का बदन हो चुका था. वह सारी बात कह न सकी और चिपकी-दुबकी पड़ी रही. अपने बदन की तरफ देखती रही. लाजवंती खुश भी बहुत थी, बहुत खुश. लेकिन एक ऐसी खुशी में सरशा, जिसमें एक शक था. वह लेटी-लेटी अचानक बैठ जाती. जैसे इंतहां खुशी के लम्हों में कोई आहट पाकर एकाएक उसकी तरफ देखने लगे.

जब बहुत-से दिन बीत गये तो खुशी की जगह पूरे शक ने ले ली. इसलिए नहीं कि सुंदरलाल बाबू ने फिर वही पुरानी बदसलूकी शुरू कर दी थी, बल्कि इसलिए कि वह लाजो से बहुत अच्छा सलूक करने लगा था. ऐसा सलूक जिसकी लाजो को उम्मीद नहीं थी. वह सुंदरलाल की वही लाजो होना चाहती थी जो गाजर से लड़ पड़ती और मूली से मान जाती. लेकिन अब लड़ाई का सवाल ही न था. सुंदरलाल ने उसे यह महसूस करवा दिया कि वह मानो कोई कांच की चीज हो जो छूते ही टूट जायेगी! . . .और लाजो आईने में अपने सरापा की तरफ देखती और अंत में इस नतीजे पर पहुंचती कि वह और तो सब कुछ हो सकती है, लेकिन लाजवंती नहीं हो सकती. वह बस गयी पर उजड़ गयी. सुंदरलाल के पास न उसके आंसू देखने के लिए आंखें थीं, न आहें सुनने के लिए कान! प्रभात-फेरियां निकलती रहीं और मुहल्ला महाकालेश्वर का सुधारक रसालो और नेकीराम के साथ मिलकर उसी आवाज में गाता रहा— □

हाथ लायां कुम्लहान नी लाजवंती दे बूटे. . .!

रूपांतर : ब्रजेश्वर मदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दस्तक' का फिल्मांकन

राजेंद्र सिंह बेदी : तीन प्रसंग

मैं किताबों से फिल्मों तक

"मैंने चाहा था कि अपनी रचनाओं द्वारा समाज के जख्मों को दिखाऊं. . . फिर मैं किताबी जिंदगी से निकलकर फिल्मी जिंदगी में आया . . . तब सबसे पहला सवाल आया पैसे का . . ." लेखन और जीवन को अपनी ही शर्तों पर जीनेवाले बेदी साहब के जीवन के तीन महत्वपूर्ण प्रसंग—

कभी मैंने इसलिए लिखना शुरू किया था कि मुझे कुछ कहना था—समाज के बारे में, जमाने के बारे में, हालात के बारे में, खुद अपने बारे में. मैंने सोचा था कि अपनी रचनाओं द्वारा समाज के जख्मों को दिखाऊं, ताकि जो लोग उन पर मरहम लगा सकते हैं, वे लगायें, या उन छोटी-छोटी बातों का बयान करूं, जो जिंदगी की बड़ी-बड़ी मुसीबतें बन जाती हैं.

फिर, मैं किताबी जिंदगी से निकलकर फिल्मी जिंदगी में आया. और मैंने महसूस किया कि हर फिल्म निर्माता मेरी तरफ ऐसे देखता था, जैसे शीशमहल में कोई कुत्ता घुस आया हो. हर कोई मुझे समझाने की कोशिश करता कि फिल्मी कहानी असल में क्या होती है और कैसे लिखी जाती है. सफल निर्माताओं के भाषण सुनना तो मैं गवारा कर भी लेता, लेकिन उनके चेले-चांटे, जिन्हें फिल्मी जबान में 'चमचे' कहा जाता है, खुद भी मुझे समझाते कि फिल्मी कहानी असल में ऐसी होनी चाहिए, उसमें फलां-फलां बातों का ख्याल रखना चाहिए, और कहने का अंदाज ऐसा होना चाहिए. . . इन बातों में मैं इस तरह जकड़ा गया कि कभी सोचने लगता कि साहित्यिक कहानी और फिल्मी कहानी असल में दो अलग-अलग चीजें हैं. और फिर, जब मैंने फिल्मी कहानियां लिखीं, तो उन पर भी नुक्ताचीनी हुई, जो साहित्यिक कहानियों पर होती थी. उनमें भी वही झोल नजर आये, जो साहित्यिक कहानियों में दिखाई देते थे. नौबत यहां तक पहुंची कि फिल्म निर्माता मुझे भाषा और लिखने का अंदाज और वाक्य रचना तक सिखाने लगे. मैं उनकी गलत बातों पर झुंझलाता, आखिर एक बार मैं उस जमाने के एक बहुत बड़े फिल्म-निर्माता से यह पूछने से न रहा, "आपने कौन-सी किताब लिखी है?" और उसके बताने पर कि उसने कोई किताब नहीं लिखी है, मैंने कहा, "मेरी तीन किताबें छप चुकी हैं! और उनमें मैंने किसी हिंदुस्तानी या विदेशी फिल्म से कुछ नहीं चुराया है."

फिर, जो दृश्य वह मुझसे सात बार लिखवा चुका था, उसे आठवीं बार लिखने के बजाय मैं कागजों के पुरजे-पुरजे करके उसकी मेज पर फेंककर चला आया. □

हमारे स्टूडियो बहुत बड़े तबेले हैं. उनमें कैमरे और साउंड-रिकार्डिंग का सामान पिछली सदी का है, पर महंगाई के कारण उनका किराया दुगुना है. फिर, अंगड़ाई लेकर जागे मजदूर और उनकी यूनियन है. सुबह की 'शिफ्ट' में काम करनेवालों को भी प्रोड्यूसर को लंच देना पड़ता है, और शाम की शिफ्ट में काम करनेवालों को भी. लंच तो लंच हुआ ही, पर डिनर भी लंच, और ब्रेकफास्ट भी लंच. और फिर नाम में क्या रखा है. गुलाब के फूल को आक कह दीजिए, तो क्या वह गुलाब नहीं रहता? खासकर जब लंच का मतलब दाल-रोटी न होकर सिर्फ पैसा हो, और पैसा भी छह या आठ गुना.

फिल्म की पूरी दुनिया एक उल्टा उस्तरा है, जिससे प्रोड्यूसर के सिर की हजामत की जाती है. लाखों रुपये लेने के बावजूद आपका हीरो कार के पैट्रोल के पैसे न मांगे तो वह बहुत अच्छा और लोकप्रिय हीरो माना जाता है. पर ड्राइवर के दस रुपये के भत्ते के लिए वह भी बिगड़ जाता है. फिर, उसकी शर्त- कि मेक-अप-मैन उसका अपना होगा, पर उसकी तनख्वाह प्रोड्यूसर को देनी पड़ेगी. इसी तरह हीरोइन को भी अनार, अंगूर, मुसंबी के रस, और भुने हुए मुर्ग मसल्लम के अलावा बढ़िया शराब भी चाहिए. अगर कोई शर्त नहीं है तो प्रोड्यूसर की नहीं है.

जला-भुना मैं एक दिन बैठा हुआ था कि एक और प्रोड्यूसर आ गया. वह जैसे भूल ही गया कि मैं अब लेखक नहीं रहा. और कहने लगा, "बेदी साहब, मैं 'छीना-झपटी' नाम की एक फिल्म बना रहा हूं. आप मेरे लिए डायलॉग लिख देंगे?"

"जरूर लिख दूंगा, पर मेरी एक शर्त है."

"बताइए."

"हेयर-ड्रेसर मेरा अपना होगा." □

मैं एक नयी कशमकश में गिरफ्तार हो गया था. कई मौकों पर मैंने देखा कि निर्देशक और निर्माता की अलग-अलग पसंद होती और वे एक दूसरे के उलट अपनी राय देते. सो, दोनों की तसल्ली करने का जो एक तरीका मुझे सूझा, वह था कि एक ही दृश्य को दो अलग-अलग ढंग से लिखूं और फिर फैसला उन दोनों पर छोड़ दूं कि उन्हें कौन-सा दृश्य पसंद आया है. यह सिलसिला चल ही रहा था कि एक शिकायत अंदर ही अंदर मुझे परेशान करने लगी. ऐसा कभी नहीं हुआ था कि मैंने कभी किसी प्रकाशक के कहने पर उसकी मर्जी के मुताबिक लिखा हो और कभी किसी दूसरे प्रकाशक के कहने पर उसकी मर्जी के मुताबिक लिखा हो. बल्कि मैंने जो कुछ अपनी मर्जी से लिखा, वही प्रकाशकों ने कबूल किया. लेकिन अब मैं मजबूर था कि या तो फिल्म-निर्माता की मर्जी के मुताबिक लिखूं या फिल्म निर्देशक की पसंद को ध्यान में रखूं. मुझे एक अजीब-सी घुटन महसूस होने लगी. और निर्माता और निर्देशक दोनों की ही शिकायतें सुननी पड़तीं. उन शिकायतों से बचने का एक ही तरीका था कि मैं खुद निर्देशक बन जाऊं. लेकिन ऐसा कोई निर्माता न मिला, जो एक संवाद-लेखक को निर्देशक के रूप में फिल्म देने के लिए तैयार हो जाये. सो, अंत में मुझे मजबूर होकर खुद ही निर्माता और निर्देशक बनना पड़ा.

तब सबसे पहला सवाल आया पैसे का. फिल्म के लिए पैसा कहां से आयेगा? आखिर कौन पैसा देगा मुझे? जब कोई भी पैसा देने वाला न मिला, तो 'फिल्म फाइनेंस कार्पोरेशन' की तरफ नजर गयी, जिससे नपी-तुली रकम ही मिल सकती थी. उस रकम को ध्यान में रखकर मैंने अपनी कहानियों और साथ ही उन नाटकों पर नजर डाली, जो मैंने कभी आल इंडिया रेडियो के लिए लिखे थे. और 'सात खेल' नाम से प्रकाशित हो चुके थे. उन नाटकों में से मैंने 'नकले मकानी' नामक नाटक का चुनाव किया, क्योंकि उसके लिए एक ही सैट काफी हो सकता था. तब मैंने उस नाटक को फिल्म के दृष्टिकोण से लिखा और उस पर 'दस्तक' नामक फिल्म बनायी. इस फिल्म ने उस साल की सर्वश्रेष्ठ फिल्म होने के नाते राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया, और 'बाक्स आफिस' पर भी वह कामयाब रही. इस प्रकार उसने यह साबित कर दिखाया कि एक साहित्यिक कहानी फिल्मी कहानी हो सकती है और एक साहित्यिक लेखक फिल्म-निर्देशक भी बन सकता है. □

प्रस्तुति : सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहमान के जूते

दिन भर काम करने के बाद जब बूढ़ा रहमान घर पहुंचा तो भूख उसे बहुत सता रही थी.

"जैना की मां! जैना की मां!" उसने चिल्लाते हुए कहा, "खाना निकाल दे, बस झटपट."

बुढ़िया उस वक्त अपने हाथ कपड़े-लत्तों में गीले किए बैठी थी. इससे पहले कि वह हाथ पोंछ ले, रहमान ने एकदम अपने जूते खाट के नीचे उतार दिये और खद्दर के मुलतानी तहमद को रानों में दबाये चौकड़ी जमाते हुए बोला, "बिस्मिल्लाह! बुढ़ापे और जवानी की इस दौड़ में रकाबी से बहुत दूर निकल गयी थी और अभी तक बुढ़िया ने सब्जी और नील में भिगोए हुए हाथ दुपट्टे से नहीं पोंछे थे. जैना की मां बराबर चालीस साल दुपट्टे से हाथ पोंछती आयी थी और रहमान इतने ही अरसे से खफा होता आया था, लेकिन आज वह स्वयं भी एक लम्हा इस बचपनेवाली आदत को सराहने लगा था. रहमान बोला, "जैना की मां जल्दी जरा..."और बुढ़िया अपनी चवालीस साला दकियानूसी आदत से बोली, "आए हाय, जरा दम तो ले बाबा तू!"

इत्तफाक से रहमान की नजर अपने जूतों पर जा जमी, जो उसने जल्दी से खाट के नीचे उतारे थे. रहमान का एक जूता दूसरे जूते के ऊपर चढ़ गया था. रहमान ने हंसते हुए कहा, "आज फिर मेरा जूता जूते पर चढ़ रहा है, जैना की मां, अल्लाह जाने मैंने कौन-से सफर पर जाना है."

"हां-हां." बूढ़े रहमान ने सिर हिलाते हुए कहा, "कल मैंने अपनी इकलौती बच्ची को मिलने अंबाला जाना है. तभी तो जूता जूते से न्यारा नहीं होता."

पारसाल भी जब जूता जूते पर चढ़ा था तो रहमान को पर्ची डालने के लिए जिला कचहरी जाना पड़ा था. उसके जहन में उस साल का सफर और जूतों की करतूत अच्छी तरह से सुरक्षित थी. जिला कचहरी से वापसी पर उसे पैदल ही जाना पड़ा था. होनेवाले सदस्य ने तो वापसी पर उसका किराया भी नहीं दिया था. उसके सदस्य का कसूर नहीं था, बल्कि जब रहमान पर्ची पर नीली चर्खी का निशान डालने लगा तो उसके हाथ कांप रहे थे और उसने घबराकर पर्ची दूसरे सदस्य के हक में दे दी थी. जैना को मिले दो साल होने को आये थे. जैना अंबाला में ब्याही हुई थी. मुहम्मदअली जैना का खाविंद था. सिपाही से तरक्की करते-करते वह नायक बन गया था.

मुहम्मदअली बड़े जोशो-खरोश से हाकी खेला करता था. एन. डब्ल्यू. आर. पुलिस में ब्रिगेडवाले, युनिवर्सिटीवाले उसने सब हरा दिए थे. अब तो वह अपनी टीम के साथ बसरा जानेवाला था, क्योंकि ईराक में रशीदअली बहुत ताकत पकड़ चुका था. इस हाकी की बदौलत ही अलीमुहम्मद कंपनी के कमांडर की नजरों में बहुत ऊंचा उठ गया था. नायक बनने से पहले वह जैना से बहुत अच्छा सलूक करता था. लेकिन उसके बाद वह अपनी ही नजरों में इतना ऊंचा-ऊंचा हो गया था कि जैना उसे पांव तले नजर आती थी.

रहमान को यों महसूस हुआ जैसे उसे अपने दामाद से नहीं बल्कि किसी बहुत बड़े अफसर से मिलने जाना है. उसने खाट पर से झुककर जूते से जूता उतार दिया जैसे वह अंबाला जाने से घबराता हो. इतने समय में जैना की मां खाना ले आयी थी. आज उसने नियम के खिलाफ गोश्त पका रखा था. छह महीने पहले रहमान को तिल्ली की सख्त शिकायत थी. इसीलिए वह गुड़, तेल, बैंगन, मसूर की दाल, गोश्त और चिकनी चीजों से परहेज करता था. गोश्त देखकर रहमान खफा हो गया. बोला, "चार-पांच रोज हुए तैने बैंगन पकाए थे. तब मैं चुप रहा तो परसों मसूर की दाल पका ली. तब भी चुप रहा. तो तू यही चाहती है कि मैं बोलूं ही नहीं. मरी मिट्टी का हो रहा हूं. सच कहता हूं, तू मुझे मारने पर तुली हुई है जैना की मां!"

बुढ़िया, पहले रोज से ही जब उसने बैंगन पकाए थे, रहमान की तरफ से इस खिजलाहट की उम्मीद कर रही थी. लेकिन रहमान की खामोशी से बुढ़िया ने उल्टा ही मतलब निकाला. दरअसल, बुढ़िया ने करीब-करीब एक निखट्टू के लिए अपना जायका भी कुरबान कर डाला था. बुढ़िया का सोचने का ढब भी न्यारा था. जबसे वह पेट बढ़े हुए इस ढांचे के साथ जुड़ी थी, उसने सुख ही क्या पाया था. एक तरबूज पर से फिसलकर घुटना तोड़ बैठने से उसने पेंशन पा ली थी और घर में बैठ रहा था. बुढ़िया ने कपड़े छांटते हुए कहा, "तू न खा बाबा, तेरी खातिर मैं तो न मरूं. मुझे तो रोज दाल में कुछ मजा नहीं दिखे."

रहमान का जी चाहता था कि वह खाट के नीचे से जूता उठा ले और इस बुढ़िया की चंदिया पर से रहे-सहे बालों का भी सफाया कर दे. लेकिन चंद ही लुकमे मुंह में डालने के बाद उसे खयाल आया, तिल्ली होती है तो होती रहे. कितना जायकेदार गोश्त पकाया है मेरी जैना की मां ने. मैं तो नाशुकरा हूं. . और रहमान चटखारे ले-लेकर तरकारी खाने लगा. सालन का तर किया हुआ लुकता उसके मुंह में जाता तो उसे खयाल आता. आखिर उसने जैना की मां को कौन-सा सुख दिया है. वह चाहता था कि अब तहसील में चपरासी हो जाए और पुराने दिन वापस आ जायें.

खाने के बाद रहमान ने अपनी उंगलियां पगड़ी के गले से साफ कीं और उठ खड़ा हुआ. किसी अर्धचेतन अहसास से उसने अपने जूते उठाए और उन्हें दालान में एक-दूसरे से अच्छी तरह अलहदा करके डाल दिया. लेकिन इस सफर से छुटकारा नहीं था.

सुबह दालान में झाड़ू देते हुए बुढ़िया ने रहमान के जूते बेध्यानी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे-से-छोटे आदमी की जिंदगी को भी जब बेदी साहब जैसा बड़ा कलाकार नजदीक से देखने की कोशिश करता है . . तो वह एक यादगार बन जाती है हमेशा के लिए. यहां प्रस्तुत है-ऐसी ही एक यादगार कहानी . . जिसने छपने के साथ ही हजारों पाठकों को अपना प्रशंसक बना लिया था.

खिसका दिए और जूते की एड़ी दूसरी एड़ी पर चढ़ गयी. शाम के करीब इरादे पस्त हो चुके थे .सोने से पहले अंबाला जाने का खयाल रहमान के दिल में कच्चा-पक्का था. उसका खयाल था कि तराई में नलाई कर चुकने के बाद ही कहीं जायेगा. और कल के गोश्त के खाने से फिर उसके पेट में कोई नुक्स हो गया था. लेकिन सुबह जब उसने फिर जूतों की हालत देखी तो उसने सोचा कि जब अंबाला जाये बिना छुटकारा नहीं है, मेरा दानापानी, मेरे जूते मुझे सफर पर जाने के लिए मजबूर कर रहे हैं. रहमान ने फिर अपना जूता सीधा किया और अपने कपड़ों की देखभाल करने लगा.

नील में घुले हुए कपड़े रात-रात में सूखकर कैसे उजले हो गए थे. निलाहट ने सफेदी को कितना उभार दिया था. जैना की मां ओखली में लगातार दो-तीन दिन से जौ कूटकर तंदल बना रही थी. बुढ़िया का

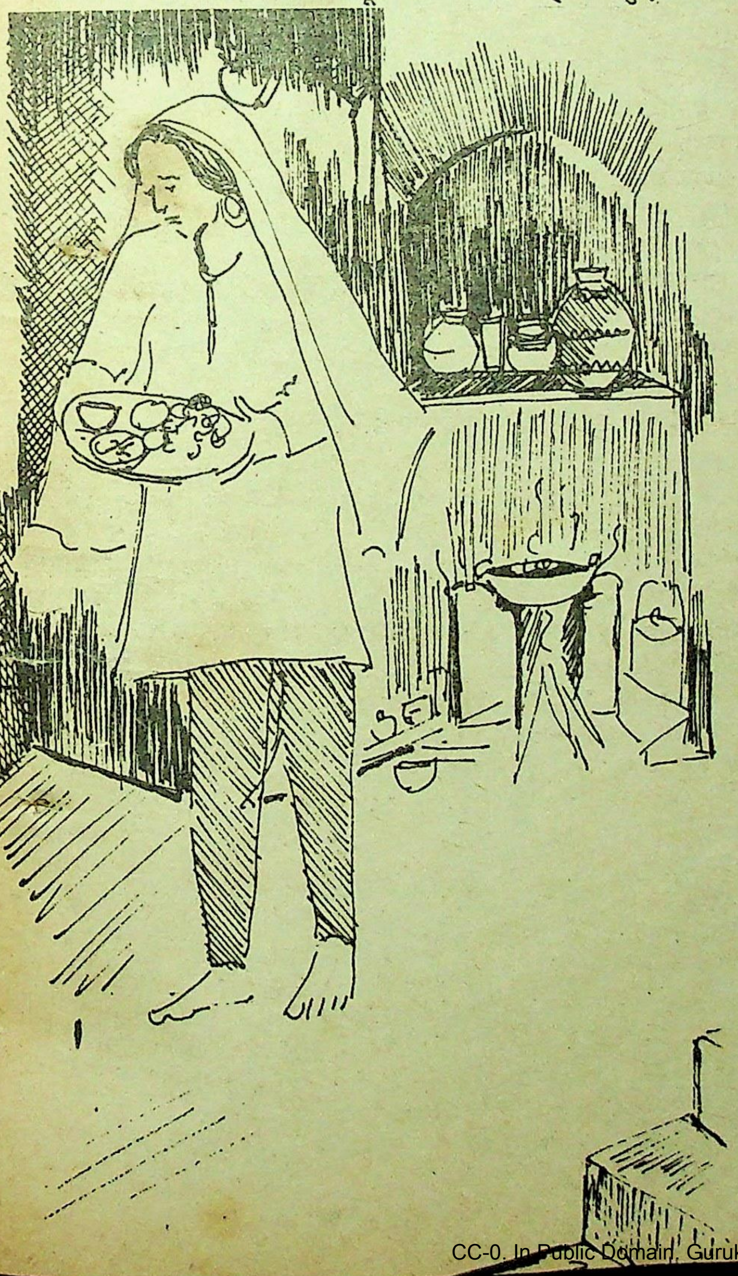

खयाल था कि तंदलों से रहमान का रास्ते में खाने का सहारा भी हो जायेगा और बेटी के लिए सौगात भी.

रहमान को खयाल आया. बोला, "जैना की मां, भला क्या नाम रखा है उन्होंने अपने नन्हें का." बुढ़िया हंसते हुए बोली, "साहक (असहाक) रखा है नाम. क्या नाम रखा है अपने नन्हें का. वाह सचमुच कितनी कमजोर है तेरी याददाश्त."

असहाक नाम भला रहमान कैसे याद रख सकता था. जब वह खुद भी नन्हा था तो उसका दादा भी उसका नाम भूल गया था. दादा खाता-पीता आदमी था. उसने चांदी की एक तख्ती पर अरबी लफ्जों में 'रहमान' लिखवाकर उसे अपने पोते के गले में डाल दिया था. लेकिन पढ़ना किसे आता था. बस, वह तख्ती को देखकर हंस दिया करता था. उन दिनों तो नाम गामों, सीरां, फतो, पीरा, वगैरह होते थे. 'असहाक' जैसे नाम तो अब कस्बाई लोगों ने रखने शुरू कर दिए थे. रहमान सोचने लगा. . . असहाक अब डेढ़ बरस का तो हो गया होगा. अब उसका सिर भी नहीं झूलता होगा. वह गर्दन उठाकर मेरी तरफ टक-टक देखता जायेगा. दिल में सोचेगा अल्लाह जाने यह बाबा घुटे बालोंवाला यहां कहां से आ गया है मेरे घर में. वह नहीं जानेगा कि उसका अपना बाबा है. छिपा लेगा. मेरा जी चाहेगा कि जैना को भी अपनी गोद में उठा लूं. लेकिन जवान बेटियों को कौन गोद में उठाता है. नाहक इतनी बड़ी हुई: बचपन में जब वह खेल-कूदकर बाहर से आती थी तो उसे अपने सीने से लगा लेने से कितनी ठंडक पड़ जाती थी.

रहमान को इस बात का तो यकीन था कि वह उन सबको देख कर बेअख्तियार रो देगा. वह आंसू थामने की लाख कोशिश करेगा, लेकिन वह आप ही आप चले आयेंगे.

और क्या नन्हें का लहू जोश मारने से रह जायेगा. वह हुमककर चला आयेगा मेरे पास. और मैं कहूंगा, 'साहक बेटा, देख मैं तेरे लिए क्या लाया हूं. . . तंदल और गुड़ और खिलौने और बहुत कुछ लाया हूं.' गांव के लोगों का यही गरीबी दावा होता है. नन्हा मुश्किल से दांतों में पपोल सकेगा किसी हरे मुट्टे को और जब तलंगे से मेरी तू-तू मैं-मैं होगी तो मैं उसे खूब सुनाऊंगा. बड़ा समझता है अपने-आपको. कल की गिलहरी. . . और. . . और वह नाराज हो जाएगा. घर रखो अपनी बेटी को. फिर मैं उसके बेटे को उठाए फिरूंगा. . . गली-गली, बाजार-बाजार और मन जायेगा, हिलेगा.

रहमान ने निलाई का बंदोबस्त किया. खड़ी खेती पर कुछ रुपये उधार लिए, सौगात भी बांधी और राह का सहारा भी. बुढ़िया ने उसे अल्लाह के हवाले करते हुए कहा, "बसरा चला जायेगा अलिया चंद रोज में. . . मेरी जैना को साथ लेते आना और मेरे साहबे को. कौन जाने कब दम निकल जाए!"

मलिका रानी से पहुंचते-पहुंचते रहमान ने असहाक के लिए बहुत-सी चीजें खरीद लीं. एक छोटा-सा शीशा था. एक सलोलाइट का जापानी झुनझुना था. जिसमें एक दर्जन के करीब घुंघरू एकदम बज उठते थे. नानक पुर से रहमान ने एक छोटा-सा गडीरा भी खरीद लिया था कि असहाक उसे पकड़कर चलना सीख जाए. कभी रहमान सोचता, अल्ला करे कि असहाक के दांत इस काबिल हो जायें कि वह मुट्टे खा सके. फिर एकदम उसकी ख्वाहिश होती, वह इतना छोटा हो कि चलना न सीखा हो और जैना की पड़ोसनें जैना से कहें, नन्हें ने तो अपने नाना के गडीरे पर चलना सीखा है. रहमान नहीं जानता था कि वह नन्हें को बड़ा देखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदी : कुछ खुशगवार बातें

बेदी साहब ने अपने माथे पर हाथ रक्खा. फिर बोले, "मेरी बीबी को मुझ पर बड़ा शक रहता था. इस बात से बड़ी कोफ्त होती थी. उन दिनों एक अंग्रेज औरत मेरी जिंदगी में आयी. इस बात को तीस बरस से ऊपर हो गये हैं. वो घर भी आती जाती थी. पता नहीं क्यों, उस पर मेरी बीबी को शक न होता था. दोनों खूब प्यार से बैठा करती थीं. वो मेरे साथ कई बार माथेरान भी गयी पर बीबी को शक न हुआ. उसने समझा, काम से कहीं गया होगा. जब किसी ने लगाई-बुझाई की तो कहने लगी—उस मेम को इस सरदार में क्या दिखाई देगा! काला-सा फक्कड़ आदमी है. तुम मुझे पागल समझते हो क्या?. . . कहनेवाला दोबारा नहीं आया. बड़ी सादा औरत थी मेरी बीबी. उस मेम से मेरी एक बेटी भी है. जब मैं लंदन गया था तब मिलने आयी थी. मैंने उसे बाजारों में घुमाया, कई तोहफे ले दिये. उस औरत के काफी देर तक खत आते रहे. फिर मैंने ही मना कर दिया. कोई ताल्लुक तो रहा न था. उन्हीं दिनों मैंने एक अलग कमरा लिया हुआ था. वहां मुझे औरतें अक्सर मिलने आया करती थीं. एक बार मैं अकेला कुछ लिख रहा था तो धड़ से दरवाजा खुला. सामने सजधजकर मेरी पत्नी खड़ी थी. मैं हक्का-बक्का रह गया. इत्तिफाक की बात थी कि मैं अकेला था. बीबी ने बड़े आराम से कहा—मैं इस तरफ शापिंग करने आयी थी. सोचा आपसे मिलती चलूं. होश में आने के बाद मैंने कहा—देख लो, पढ़ने का काम कर रहा हूं. तुम्हें पता नहीं कोई क्या क्या कह देता है."

संदर्भ : 'दीवानखाना'

चाहता है कि बड़े को नन्हा. सिर्फ उसकी ख्वाहिश थी कि उसके तंदल, उसके भुट्टे, उसका शीशा, उसका जापानी झुनझुना और बाकी खरीदी हुई चीजें सार्थक हों. कभी वह सोचता, क्या जैना गांव के गंवार लोगों के इन तोहफों को पसंद करेगी. क्या मुमकिन वह उसका दिल रखने के लिए उन चीजों को पाकर बाग-बाग हो जाए. लेकिन क्या वह मेरा जी रखने को ही ऐसा करेगी. फिर तो मुझे बहुत दुख होगा. क्या मेरे तंदल सचमुच उसे पसंद नहीं आ सकते. वह तो कुछ भी पसंद नहीं करने का. वह तो नायक है. अल्लाह जाने साहब लोगों के साथ क्या-क्या खाता होगा. वह क्यों पसंद करने लगा गांव के तंदल. . .और नानक पुर से रवाना होते हुए रहमान कांपने लगा.

गाड़ी की खिड़की की तरफ से पश्चिमी हवा फर्राटे भरती हुई अंदर दाखिल हो रही थी. दरख्तों के नजर के सामने घूमने, कभी आंखें बंद करने और खोलने से रहमान को गाड़ी बिल्कुल एक पूंगड़े की तरह आगे-पीछे जाती हुई मालूम होती थी. दो-तीन स्टेशन एक ऊंघ में निकल गये. जब करनाल दो-एक ही स्टेशन दूर था तो उसकी आंख खुली. उसकी सीट के नीचे से गठरी उठा ली गयी थी, सिर्फ उसके अपने गुजारे के लिए तंदल और चादर के पल्लू से बंधे मक्की के भुट्टे थे या उसके फैले हुए पैरों में गंडीरा खड़ा था.

रहमान शोर मचाने लगा. इस डिब्बे में एक-दो अच्छे सभ्य लगने-वाले आदमी अखबार पढ़ रहे थे. बूढ़े को इस तरह चीखते देखकर वे चिल्लाए, "मत शोर मचाओ, ऐ बुड्ढे मत गल करो." लेकिन रहमान बोलता चला गया. उसके सामने एक बटी हुई मूंछोंवाला कांस्टेबल बैठा था. रहमान ने उसे पकड़ लिया और बोला, कि तूने ही मेरी गठरी उठा ली है बेटा. कांस्टेबुल ने एक झटके से रहमान को परे फेंक दिया. इस खींचा-तानी में रहमान का दम फूल गया था. बाबा तू संभालकर रखता अपनी गठरी को. तेरी अकल चरने गयी थी?

रहमान उस वक्त सारी दुनिया के साथ लड़ने को तैयार बैठा था. उसने कांस्टेबल की वर्दी फाड़ डाली. कांस्टेबल ने गंडीरे का लट्ठा खींचकर रहमान को मारा. इसी शोर में टिकट-चेकर दाखिल हुआ. उसने भी खुशपोश लोगों की तरफ का पलड़ा देखकर रहमान को गालियां देनी शुरू कर दीं और रहमान को हुक्म दिया कि करनाल पहुंचकर गाड़ी से उतर जाये. उसे रेलवे पुलिस के हवाले किया जायेगा. चैकर के साथ लड़ाई में एक लात रहमान के पेट में लगी और वह फर्श पर लेट गया.

करनाल आ चुका था. रहमान, उसकी चादर और गंडीरा प्लेट-फार्म पर उतार दिए गए. गंडीरे का लट्ठ जिस्म से अलग खून से भीगा हुआ एक तरफ पड़ा था. फिर मक्की के भुट्टे खुली हुई चादर से निकलकर फर्श पर लुढ़क रहे थे. रहमान के पेट में बहुत चोट लगी थी. उसे स्ट्रेचर पर डालकर करनाल के रेलवे अस्पताल में पहुंचाया गया.

जैना, सहाका, अली मुहम्मद, जैना की मां. . .एक-एक कर के रहमान की नजरों के सामने से गुजरने लगे. जिंदगी की फिल्म कितनी छोटी है; उसमें मुश्किल से तीन-चार आदमी और दो एक औरतें ही आ सकती हैं. बाकी मर्द औरतें भी आती हैं लेकिन उनमें से तो कुछ याद नहीं रहता. या कभी-कभार उन्हीं चंद लोगों के लिए कशमकश की घटनायें जहन में ताजा हो जाती हैं. मसलन गंडीरा, प्लेटफार्म पर पड़ा हुआ. भुट्टे, जिन्हें खलासियों, वाचमैनों और सिगनलवालों के आवारा छोकरे उठा-उठाकर भाग रहे हों. और उनके काले-काले चेहरों में सफेद दांत बिल्कुल उसी तरह दिखायी दें जैसे अंधेरी पृष्ठभूमि में. उनकी हंसी, उनके कहकहे. . . या दूर कोई पुलिसमैन अपनी डायरी में कुछ जरूरी और कुछ गैर जरूरी विवरण लिख रहा हो. फिर लात मारी—'ए!' यह नहीं हो सकता. अच्छा फिर लात मारी और फिर . .

फिर अस्पताल के सफेद बिस्तरे, कफन की तरह मुंह खोले हुए चादरें, कब्रों की तरह चारपाइयां नजर आती हैं और डाक्टर. . .

रहमान ने देखा उसकी तंदलवाली चादर अस्पताल में उसके सिरहाने पड़ी थी.

"इसे भी वहीं छोड़ आए होते!" रहमान ने कहा. "इसकी मुझे क्या जरूरत है." इसके अतिरिक्त रहमान के पास कुछ भी न था. डाक्टर और नर्स उसके सिरहाने खड़े लट्ठे की सफेद चादर को मुंह की तरफ सरका देते थे. रहमान को मितली आती हुई महसूस हुई. नर्स ने तुरंत एक चिलमची बिस्तर के नीचे सरका दी. रहमान 'कै' करने के लिए झुका तो उसके अपने जूते बदस्तूर चारपाई के नीचे रखे थे . . और जूते पर जूता चढ़ रहा था. रहमान एक मैली-सी सिकुड़ी हुई हंसी हंसा और बोला, "डाकदरजी, मुझे सफर पर जाना है. आप देखते हैं मेरा जूता जूते पर चढ़ रहा है."

डाक्टर जवाब में मुस्करा दिया और बोला, "हां बाबा तूने बहुत लंबे सफर पर जाना है. . ." फिर रहमान के सिरहाने की चादर टटोलते हुए बोला, "लेकिन तेरा आजादराह कितना थोड़ा है. सिर्फ यह तंदल और इतना लंबा सफर."

बस जैना की मां, साहका, अली मुहम्मद या वह अफसोसनाक घटना. . . रहमान ने आजादराह पर अपना हाथ रख दिया और लंबे सफर पर चल दिया. □

प्रस्तुतिः ब्रजेश्वर मदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन यह फिल्म अभी तक डिब्बों में बंद है

हरबंस सिंह बेदी

कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला कहने लगे कि बाकी सब लोग जा सकते हैं, मगर एक आदमी को मैंने हिरासत में ले लिया है. और वह आदमी थे राजेंद्र सिंह बेदी. आखिर कौन-सा गुनाह किया था बेदी साहब ने कि हिरासत में ले लिये गये और उस गुनाह की उन्हें क्या सजा मिली? पढ़िए बेदी साहब के भाई की कलम से सच्चा और अनूठा संस्मरण—

बेदी साहब को दुखी दिल, इंसानी कद्रों की पहचान, हास्य और कल्पना-शक्ति बहुत हद तक विरासत में मिली. पिताजी पोस्ट-ऑफिस में नौकर थे. घर में किताबें और पत्रिकाएं अकसर आतीं. चाचा संपूर्ण सिंह लाहौर में एक प्रेस मैनेजर थे, जिसमें हर किस्म के उपन्यास और किस्से छपते थे. घर में किताबों का अंबार लगा रहता. या तो मशहूर अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवादों का पढ़ना जारी रहता या फिर 'खूनी ख्वाब', 'एक रात में बीस खून' और 'चंद्रकांता' का पाठ होता. मां की 'रुचि' भी साहित्यिक थी. गुरु साहबान की जिंदगी और उनसे संबंधित साखियों के अलावा रामायण, महाभारत, अलफ-लैला, वली बुजुर्गों के किस्से सब याद थे. सर्दियों में रात गये चूल्हे के इर्द-गिर्द बैठे पिताजी किसी न किसी किताब या पत्रिका से कुछ न कुछ पढ़कर सुनाते और सब घुटनों में सिर दिये रहते. कहानी के पात्रों के दुख और खुशी को बुरी तरह महसूस करते. रोते और हंसते. घर का रहन-सहन हिंदुआना था, क्योंकि मां हिंदू घर से थीं और सिक्खी भी. गीता और जपुजी साहब दोनों का पाठ होता. इसके अलावा इस्लामी कल्चर से भी दूर नहीं रहे. पिताजी सूफियाना शायरी के शौकीन थे. अगर गुरुपर्व और जन्माष्टमी के त्यौहार मनाये जाते तो पिताजी ईद के मेलों में भी हमें उंगली पकड़कर ले जाते. किसी मजहब या आस्था से नफरत नहीं थी. यही समझते कि सब मजहब समान हैं और उनका एक-सा और सही मकसद परमात्मा के मिलन से ज्यादा नहीं. बच्चों में राजेंद्र सब से बड़े और होनहार थे. अपने माहौल का असर उन्होंने ज्यादा कबूल किया. हर दुख-दर्द को शिद्दत से महसूस करना, अपने पात्रों में अपने आप को समो देना और हास्य विरासत में मां-बाप से हासिल की.

अभी कालेज में पढ़ते थे कि आपने जोर-शोर से लिखना शुरू कर दिया. छात्रकाल में महसन लाहौरी के नाम से अफसाने, लेख और नज्में लिखीं. करना खुदा का यह हुआ कि एक पत्र 'सारंग' लाहौर से निकलता था, जो पंजाबी भाषा को उर्दू अक्षरों में छापता था. पत्रिका की आर्थिक हालत डावांडोल होने की वजह से संपादक छुट्टी कर गये, और यह काम बेदी साहब ने अवैतनिक संभाला. संभाला क्या, सारी पत्रिका खुद ही लिखनी शुरू कर दी. हर किस्म के लेख, फारसी गजलों और रुबाइयों के पंजाबी अनुवाद, कहानियां खुद ही लिख-लिखकर विभिन्न नामों से छापते रहे.

बेदी साहब ने इंटरमीडिएट का इम्तिहान डी. ए. वी. कालेज, लाहौर से संभवतः 1933-34 में पास किया. उन दिनों बेरोजगारी बहुत थी. आये दिन ग्रेजुएटों के रेलगाड़ी के सामने कूदकर खुदकुशी करने की खबरें छपतीं. कुछ क्लर्कों की जगहें पोस्ट-ऑफिस में निकलीं तो पिताजी के कहने पर इम्तिहान में बैठ गये और कामयाब हो गये. वे और तालीम हासिल करना चाहते थे, मगर पिताजी के आग्रह पर क्लर्की कर ली. उन्हीं दिनों माताजी, जो तपेदिक के मर्ज से ग्रस्त थीं, इस नश्वर संसार से कूच कर गयीं और 1938 में पिताजी भी चल बसे. सारे घर का बोझ, दो भाइयों और एक बहन की देखभाल की जिम्मेदारी आप पर ही आ पड़ी. इस काम में आपकी बीवी सोमावती (दूसरा नाम सतवंत) ने आपका पूरा साथ दिया.

मां की बीमारी के दौरान उन्होंने बहुत सेवा की. जब मां गांव डलेकी (तहसील डस्का, जिला सियालकोट) में जलवायु परिवर्तन के लिए जातीं तो उनकी टट्टी-पेशाब तक साफ करते. मां-बाप से बहुत मोहब्बत थी. उनकी हार्दिक दुआएं हासिल कीं. पिताजी जान गये थे कि राजेंद्र असाधारण गुण रखता है और एक दिन बड़ा आदमी बनेगा. आखिरी उम्र में पिताजी टोबा टेकसिंह में नियुक्त थे. उन्हें पता चल गया था कि अब वह दुनिया से जाने वाले हैं. छुट्टी लेकर लाहौर आ गये और अपनी जान अपने होनहार सपूत की बाहों में दी.

लिखने में बहुत मेहनत करते. क्लर्की के जमाने में देर गये रात तक पढ़ते और लाइब्रेरी की किताबें लाते और दिनभर के थके होने के बावजूद रात के दो-दो बजे तक पढ़ने और लिखने में मग्न रहते. अगर सारे सफे में एक शब्द भी पसंद न आता तो बजाय सुधारने के सारा सफा ही दुबारा लिखते.

पहले अखबार 'पारस' लाहौर के साप्ताहिक संस्करण में आपकी कहानियां छपीं, जो रोमानी अंदाज में लिखी जाती थीं. अब वह सब नष्ट हो गयी हैं और आपने यह तरज भी छोड़ दिया. बाद में 'अदबी दुनिया' लाहौर में अफसाने छपने लगे. बहुत ख्वाहिश थी कि पत्रिका 'हुमायूं' लाहौर में कोई अफसाना छपे, मगर संपादक को बेदी साहब से शायद कोई चिढ़ थी. जब 'गर्म कोट' लिखा तो हुमायूं को ही भेजा, मगर लौटा दिया गया. वजह पूछी तो जवाब मिला कि इमला और जबान की खामियां हैं. मामूली किस्म की गलतियां थीं, जिनका सुधार हो सकता था, मगर संपादक महोदय कहानी की कला और घटना-

भाइयों और बहन के साथ राजेंद्र सिंह बेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुतीकरण से जरूर अनभिज्ञ थे. बेदी साहब को बहुत दुख हुआ. उनका हौसला तब बुलंद हुआ, जब सआदत हस मंटो ने बहुत ज्यादा तारीफ की.

हर वक्त शक रहता कि वह अच्छे अफसाना-नवीस नहीं. यही सोचते कि मेरा अफसाना फलां के मुकाबले में कमजोर है. जो लिखते, बार-बार सुनाते और सलाह मशवरा लेते. उन दिनों के खास दोस्त जनाब उपेंद्रनाथ अश्क की राय और 'हलका-ए-अरबाबे-जौक', लाहौर की सभाओं की आलोचना आपको बहुत प्रभावित करती. सब दोस्त बहुत कद्र करते थे, मगर बेदी साहब तो मामूली समझ और कम तालीम रखनेवालों की राय को भी बहुत अहमियत देते थे. जब 'दाना व दाम' छपी तो उसकी बहुत तारीफ हुई.

एक दिन तंग आकर नौकरी से इस्तीफा दे दिया. लगे भूखों मरने. आमदनी की सूरत रेडियो-कहानी या ड्रामा ही था, जिसका मुआवजा पच्चीस रुपये होता था. पत्रिका में छपी हुई कहानी का मुआवजा कोई दस रुपये भी न देता. साल 1943 था. महायुद्ध जारी था. मैंने बी. ए. का इम्तिहान दिया था और एक क्लर्की की नौकरी के लिए मिलिटरी एकाउंट्स के दफ्तर में प्रार्थना पत्र दे रखा था और इधर बेदी साहब ने रेडियो-आर्टिस्ट की नौकरी के लिए. गर्मी बहुत थी. घर में बिजली का पंखा भी न था. हम दोनों भाई अधनंगे ठंडे फर्श पर लेटे अपने-अपने प्रार्थना-पत्रों के जवाब के इंतजार में पड़े रहते. बेदी साहब इंटरव्यू के लिए दिल्ली बुलाये गये. जनाब अहमदशाह बुखारी पितरस उन दिनों आल इंडिया रेडियो के डायरेक्टर जनरल थे. बेदी साहब से मुलाकात तो नहीं थी, मगर उनकी रचनाओं से वाकिफ थे. नौकरी के लिए कम से कम ग्रेजुएट होना जरूरी था, मगर बेदी साहब सिर्फ इंटरमीडिएट ही पास किये हुए थे. डरते थे कि नौकरी नहीं मिलेगी. दिल्ली से वापसी पर बताया कि इंटरव्यू के वक्त पितरस साहब उठकर उनसे गले मिले. यह घटना सुनायी तो आंखों में आंसू उमड़ पड़े. फिर कहने लगे कि नौकरी तो मिल जायेगी, मगर शायद तालीम कम होने की वजह से पितरस साहब निश्चित तनख्वाह से जो 350-500 रुपये होगी, कम दें. उनको एक खत लिखना चाहिए कि तनख्वाह कम न हो. कई खत तजवीज किये और फाड़े कि इसमें खुदी की बू आती है. इसमें इंसान ज्यादा आजिज मालूम देता है. यह शायद उन्हें पसंद न आये और जाने क्या अंदाजा लगायें. हारकर बैठ गये. मैंने कुछ सोचकर चंद सतरें अंग्रेजी में लिखकर पेश कीं तो सुख की सांस ली. कहने लगे, "यही भेज देते हैं."

भारत-विभाजन के बाद लाहौर से शिमला चले आये. मैं उन दिनों गवर्नमेंट कालेज रोपड़ में लेक्चरार था. फसादों की वजह से कालेज बंद हो गया और मैं भी भाई साहब के साथ ही चला आया. उन दिनों मेरी शादी की बातचीत हो रही थी और लड़केवाले भी शिमला आये हुए थे. यही तय पाया कि शादी अभी कर दी जाये. बाद में पता नहीं कि कौन कहां कहां चला जाये, मगर रुपया-पैसा घर में था नहीं. बेदी साहब ने एक फिल्म सीनेरियो लिखकर पैसा बनाने की ठानी. इसलिए सुबह उठते ही कलम और कागज लेकर काफी-हाउस माल रोड पर आ जाते और एक काफी आर्डर करके लिखना शुरू कर देते. वक्फे-वक्फे के बाद बैरे उनको घूरना शुरू करते कि अब उठता क्यों नहीं तो एक कॉफी और आर्डर कर देते. फिर कुछ दोस्त भी वहीं आकर मिलने शुरू हुए. आखिर पूरा सीनेरियो कॉफी-हाउस में ही तैयार कर लिया और उसे बेचने के लिए दिल्ली चले गये, मगर न बिका.

फसादों के दौरान बेदी साहब ने शिमला में रहने वाले मुसलमानों की मदद की और उनकी जानें बचायीं. यद्यपि हमारे गांव में हमारे तायाजी और कई एक रिश्तेदार कत्ल हो चुके थे. वह और ईश्वर सिंह बेदी, जो एक चित्रकार और पंजाबी के लेखक थे, कृपाण लेकर घूमते, जो सिर्फ रक्षा के काम आती. कई लोगों को बचा-बचाकर पाकिस्तान जाते हुए ट्रकों में पहुंचाया. एक घटना मुझे खास तौर पर याद है कि कुछ आदमी एक व्यक्ति को घेरे हुए थे, जो बहुत घबराया हुआ था. चिल्ला रहे थे कि यह मुसलमान है, हमें पता लग चुका है. मार डालने की फिक्र में थे कि बेदी साहब और ईश्वर सिंह ने बढ़कर कहा कि इसे हमारे हवाले कर दो. हम इसे ठिकाने लगा देंगे. हाथ में लंबी कृपाण देखकर उसे भाई साहब के सिपुर्द कर दिया गया. उसे घर लाये. खिलाया-पिलाया और सुरक्षापूर्वक पाकिस्तान भेज दिया. इन घटनाओं का पता जनाब हफीज जालंधरी साहब को भी था, जो उन दिनों शिमला में रह रहे थे और बाद में उसका जिक्र उन्होंने रेडियो, लाहौर से भी किया.

शिमला में खुल्लमखुल्ला दुकानें लूटी जा रही थीं. कोई गलीचे लिये जा रहा था, कोई जूते, रेडियो, कोई टाइप-राइटर, कोई पेंट के डिब्बे. एक किताबों और स्टेशनरी की दूकान भी लुटी. कीमती चीजें तो लोग ले गये, मगर कागज वगैरह माल रोड पर बिखरे हुए थे और लोग उनको ठोकरें मारते चल रहे थे. मैंने चलते-चलते एक कागज बढ़कर उठा लिया, जो देखने में खूबसूरत था. बेदी साहब फौरन बोले, "इसको अभी फेंक दो." मैंने कहा, "मैंने तो वैसे ही देखने के लिए उठाया था." कहने लगे, "इसको हाथ भी मत लगाओ." यह उन दिनों की घटना है, जब लाहौर में हमारा सामान लूटा जा चुका था. जब यकीन हो गया कि अब लाहौर कभी वापस न जा सकेंगे तो शिमला से दिल्ली का रुख किया. कालका से रेलगाड़ी ली. अंदर दाखिल होने की जगह न थी. किसी तरह से बीवी-बच्चों को अंदर दाखिल किया और आप छत पर बैठे. सब घरवालों की हालत खराब थी. इधर कुछ लोगों ने, जिनमें एक पुलिस-इंस्पेक्टर भी था, भावज साहिबा, जो खूबसूरत थीं, से मजाक शुरू कर दिया. जब गाड़ी अंबाला पहुंची तो बच्चों ने किसी तरह चीख-पुकारकर बेदी साहब को नीचे बुला लिया.

विभाजन के बाद उर्दू लेखकों का एक प्रतिनिधिमंडल गवर्नमेंट के निमंत्रण पर कश्मीर गया. बेदी साहब के पास उन दिनों कोई काम-काज नहीं था. जब वापस आने लगे तो शेख अब्दुल्ला साहब, जो उन दिनों मुख्यमंत्री थे, कहने लगे, कि बाकी सब लोग जा सकते हैं, मगर एक आदमी को मैंने हिरासत में लिया है. सब हैरान, एक दूसरे का मुंह तकने लगे. इशारा बेदी साहब की तरफ था, जिन्हें उन्होंने डायरेक्टर, जम्मू रेडियो के ओहदे पर नियुक्त कर दिया. बाद में बख्शी गुलाम मोहम्मद साहब से मतभेद होने की वजह से नौकरी छोड़कर चले आये.

1978 में जब फालिज का दौरा पड़ा तो दायां हाथ और बाजू मफलूज हो गये और बाद में दायीं आंख भी जाती रही. सब शारीरिक क्रियाएं भी सुस्त पड़ गयीं. अजब बेबसी की हालत में रहते थे. यद्यपि उनकी शारीरिक देखरेख उनकी बहू वीणा और बेटा नरेंद्र बखूबी करते थे, तथापि लिख न सकने की वजह से हर वक्त दुख में डूबे होते थे. अपने हाथ को देखकर आंसू बहाते थे कि यह क्या हो गया. अफसोस, इतने बड़े लेखक के हाथ का जाते रहना कुदरत की अजीब दुश्मनी है. एक और दुख, जो उन्हें खाये जा रहा था. वह था फिल्म-फाइनेंस कारपोरेशन के कर्जे का भुगतान, जिससे उधार लेकर उन्होंने फिल्म 'आंखन देखी' बनायी. फिल्म पूरी हो गयी थी और उच्चकोटि की थी, मगर उसे खरीदनेवाला अभी तक कोई नहीं मिला था. एक डिस्ट्रीब्यूटर ने वायदा किया था कि अगर इस पर टैक्स माफ हो जाये तो वह खरीद लेगा. इस संबंध में बेदी साहब तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री वसंत साठे से भी मिले थे. उन्होंने फिल्म देखी, बहुत तारीफ की और सराहा और सब प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों को अर्ध-सरकारी पत्र भी लिखे कि इस फिल्म पर टैक्स न लगाया जाये, पर अभी तक कोई संतोषजनक नतीजा नहीं निकला. बेदी साहब के निधन के बाद अब पता चला है कि फिल्म-वित्त निगम ने उनका कर्जा माफ कर दिया है, लेकिन यह फिल्म अभी तक डिब्बों में बंद है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध

कैसी है फिल्मी जिंदगी की नंगी सच्चाई जहां इंसान जमाने भर की नेमत भी ठुकरा कर रख देता है . . . और कैसी होती है वह मजबूरी, जो एक बेहतरीन कलाकर को भी भूखा मरने पर विवश कर देती है? फिल्मी दुनिया की मार्मिक दास्तान . . . जहां बेदी साहब भी लंबे अर्से तक सक्रिय रहे.

यकीन मानिए, इसमें नंदलाल का जरा भी कुसूर न था. वह क्या करता! उसकी फिल्म 'अंबिका' हिट हो गयी थी.

मैं भी खूब हूं जो हिंदी फिल्म के सिलसिले में तर्कातर्क की बात करने जा रहा हूं. इस पर मैं कहूंगा कि जिस तर्क से हिंदी फिल्म फेल होती है, उसी से हिट भी हो जाती है जैसे उसे कोई जिद हो जाती है, चलने या न चलने की. ऐसी ही जिद में नंदलाल की पहली दो फिल्में पिट गयी थीं. हालांकि उनमें से एक में हीरोइन स्टूडियो की बरसात में भीगी भी थी, कपड़े उसके बदन के साथ चिपके भी थे. मालूम होता था जैसे कपड़े एकाएक कहीं नीचे चले गये हैं और बदन छटपटा के ऊपर आ गया है. दूसरी फिल्म में हीरो ने खाली हाथों गुलदानों, सोफे की टांगों, लैंप-शेड और जाने किन-किन हथियारों से 'काऊ बॉय' विलेन और उसके दर्जन भर साथियों को फर्श पर बिछा दिया था. तभी विरोधी दल में से किसी ने आनन-फानन उठकर पांगे से हीरो का सिर काट दिया—जी, बिल्कुल ही काट दिया यानी सिर अलग और धड़ अलग. लोग हताश हो गये. अब क्या होगा? यह तो बिल्कुल ही मर गया! वह जानते थे कि फिल्म का हीरो मर ही नहीं सकता और फिर हताश भी होना चाहते थे. हीरोइन को शादी किये बिना ही विधवा कर गया तो इस संसार का क्या होगा? मगर मानिए तो. . . कहां मरा वह? तभी देखने में कंकरीट की दीवार से देवी प्रकट हो गयी और नृत्य के सब नियमों का पालन करते हुए हीरो के पास चली आयी. उसके कटे सिर को विशेष मुद्रा में उठाया ऐसे धीरज से कि उसे दर्द न हो और फिर उसे धड़ के साथ लगा दिया. सिर के लगते ही हीरो ने पहले एक छींक मारी, फिर उठा और 'हरि बोल' कहता हुआ एक तरफ यों चल दिया, जैसे कोई बात ही नहीं—कोई दुआ न सलाम, शुक्रिया न दंडवत्! लेकिन हॉल में क्या तालियां पिटी थीं. अगर फिल्म के आखिर में लोगों ने नंदलाल को पीट डाला तो उसकी वजह स्क्रीन-प्ले की गलती थी . . . बात यों हुई कि देवी के हाथों से तो वह बच गया, लेकिन कुछ देर बाद बाहर आकर समुद्र में डूब गया!

गोफा से गद्दियों तक आप हिंदुस्तानी नस्लों को जमा करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी संख्या से कुल योग को भाग करें तो जो औसत निकलता है वह नंदलाल की शक्ल थी. नहीं, ऐसे में शायद आपको समझा नहीं पाऊंगा. आप यहां से ईरानी होटल 'कूलार' की तरफ चलें तो रास्ते में दो नुक्कड़ पड़ते हैं. उन पर मुड़ने वाले हर तीसरे अललटप्प आदमी की शक्ल नंदलाल की-सी होगी. अब समझे न आप?

नंदलाल को अपने नाम के सामान्य-सा होने से बहुत चिढ़ थी. मगर वह क्या करता? नाम भी तो वजूद की तरह आदमी के साथ यों चिपक जाता है कि एक ही बार उतरता है. वह चिढ़ दरअसल पैदा की गयी थी. ऐसी हरकतें प्रायः औरतें करती हैं. फिल्मी लड़कियां उसे कहतीं—क्या महाभारत के जमाने का नाम रख दिया तुम्हारे मां-बाप ने. अब अश्विनी कुमार को देखो. हम उसे प्यार से उश्शु-अश्शु तो पुकार सकते हैं. नंदू क्या अच्छा लगता है? मालूम होता है जैसे ठेंगा है. चुनांचे नंदलाल ने बाकायदा और कानूनी तौर पर अपना नाम देवेंद्र कुमार रख लिया—इस उम्मीद में कि रेहाना और जयश्री उसे 'देबू-देबू' कहकर पुकारेंगी. इस सिलसिले में उसने एक पार्टी भी की जिसमें स्कॉच चली. तीसरे दिन उसे कोई मिल जाता और कहता—अरे नंदलाल, सुना है तूने अपना नाम बदल लिया है? एक दिन रेणु आयी जो पार्टी के दिन आउट-डोर कर रही थीं, बोली—इतनी बड़ी पार्टी कर दी नंदलाल जी ने और हमें पूछा ही नहीं? बीवी कहती—मैंने तो इसी से शादी की थी, मैं कोई दूसरा नहीं जानती, कोई मेम थोड़े हूं मैं, जो आज एक के साथ हो और कल दूसरे के साथ. मेरा तो वही है... और फिर पास बैठी हुई औरत नाम ले देती—नंदलाल! रोल मांगने के लिए एक्टर लोग दफ्तर में आते ही थे. चुनांचे उस दिन भी देवेंद्र कुमार इस्सर का नाम पढ़कर एक चला आया. बाहर स्टूल पर बैठे हुए चपरासी ने कहा—हां, साहब अंदर हैं. एक्टर अंदर जाते ही उन्हीं पांवों पर वापस चला आया—वहां तो वही नंदलाल बैठा है!

नंदलाल का मकान मामूली था और बीवी भी मामूली, मगर कुछ नवधनाढ्यों की बातें चली आयी थीं उसमें, 'अंबिकाये' जाने के बाद उसने नयी कार खरीदी लेकिन उसे बीवी की अर्दली में दे दिया और खुद उसी खटारे में घिचघिच करता रहा क्योंकि वह 'लकी' था. स्पेयर जूतों की तरह से रहने पर भी नंदलाल बड़ा मकान लेने से डरता था.

नंदलाल के आसपास सब चीजें सामान्य बल्कि बाजारू होने के बावजूद एक चीज बड़ी अच्छी थी जो जन्म के किसी फल में चली आयी थी, और वह थी मॉर्निंग ग्लोरी की ...ल जो कैसी बेखुदी से उसके घर की दीवारों पर लपकी थी. उसमें स्कारलेट ओहरा के फूल हर आते-जाते के अंदर लाल बुखार पैदा करते थे. लोग आम तौर पर यही समझते थे कि उस घर के वासी कितने ताजा, कितने खुश-मजाक हैं. फिर उनके जलवे में रियाज करती हुई किसी लड़की की आवाज मिल जाती—

पनघट पे नंदलाल मुझे छेड़ गयो रे!

और सुधा, नंदलाल की बीवी, उठकर सब खिड़कियों के पट बंद कर देती.

फिल्मी साम्यवाद में कोई अकेला नहीं खाता—खा भी नहीं सकता. किसी के 'अंबिकाये' जाते ही सबके कान हो जाते हैं और वह गंगटोक की जोकों की तरह से कुछ यों चिमटते हैं कि आदमी को पता ही नहीं चलता. इधर आदमी गिरता है उधर जोकें गिर जाती हैं. नंदलाल का-सा आदमी यही कहता हुआ पाया जाता है—अच्छा! तुम मेरे ताऊ के बेटे हो, अच्छा? हां, हां, सुना था तुम्हारे बारे में. क्या करूं यार, जब से 'अंबिका' चली है, मेरा फ्यूज ही उड़ गया है. बस, देवी मां की वह कृपा है, क्या पियोगे? और ममेरा भाई पीने की बजाय खाने बैठ जाता है और हमेशा खाता रहता है.

रात को बीवी जब मियां के साथ भिचकर लेटती है तो कहती है—हाय जी! तुम्हारे पिता का तो बड़ा भाई था ही नहीं कोई...

ऐं?—नंदलाल कहता है—उनका कोई दोस्त होगा. सो जाओ, सिर मत खाओ मेरा.

यह जो आदमी नंदलाल के पास आया था उसका नाम हीरा था. उसका संबंध पांचवें वर्ण से था, जो आदिकाल से चला आया है. हैरानी की बात है कि वह मनु महाराज की गिनती में क्यों नहीं आया. पेड़ अलग, पत्ते अलग तो दीमक और अन्य कीड़े भी अलग होते हैं.

और आज जो इस पांचवें वर्ण के बिना बहुत अधिक पैसे और अंबिका का कोई हल ही नहीं...

जितना आप इस कास्टलेस नस्ल को खत्म करने की कोशिश करेंगे, उतनी ही उसमें लचक, उतना ही चोंचलापन और सुरक्षात्मक वृत्ति पैदा हो जायेगी. आप अगर पहलू बदलते हैं तो यह वर्ण भी नया पैंतरा पेश करना जानता है. आज का यह पैंतरेबाज कभी भी सीधे-सीधे मर्द को अक्लमंद और औरत को खूबसूरत नहीं कहता. वह हमेशा कहता है—नाक कैसी भी है मगर तुम्हारे चेहरे पर फबती है. भाभी; खूबसूरती का यही मतलब नहीं कि रंग गोरा हो—आजकल तो...

रंड साला—सारा दिन अपनी जबान और सामनेवाले के कान की मालिश करता रहता है. नासिर, जोशी, पांडे, रामनिवास के तरीके अलग थे और हीरालाल के अलग. वह फिल्मों में प्ले-बैक सिंगर होने आया था. हीरा आज के जमाने का आदमी था. उसकी शक्ल मॉड थी और अक्ल भी मॉड. उसके बाल ज्यादती की तरह लंबे थे और घने, घिनौने इंसान के होने की बजाय वह किसी घोड़े के मालूम होते थे मगर ब्रिलक्रीम के चमत्कार से आज्ञाकारी होकर वह कुंडल और कड़ियां बनकर कांधे और गले में लटक रहे थे. हीरालाल, जिसका मुकद्दर पांचवां वर्ण था, यों पहले वर्ण का आदमी था—ब्राह्मण. उसका रंग खुलता हुआ था और सुर्ख भी, जैसे पल्ले से पी हो. गोल चेहरे को लंबी कलमों ने फ्लेंक कर रखा था. यों मालूम होता था जैसे वह राजभवन है जिसके फाटक पर गारद हाथों में बंदूकें लिये खड़ी है. बुश्शर्ट उन्नाबी, पलेयर्ज रुपहले—ऐसा कंट्रास्ट नादारी की वजह से होता है और या फिर उस वक्त जब आदमी कपड़े की हद से गुजर जाता है और कला के शिखर को छू लेता है. उसके सप्तम का 'सा' कहीं गले में बैठ गया था. जब वह गाता तो औरतों में कोई बेनाम से जज्बे पैदा हो जाते.

हीरालाल की भी एंट्री फिल्म जगत में पुश्तैनी जायदाद को बेचकर आने से हुई. उसने भी फिल्म बनायी और, खुदा आपका भला करे, मार खायी. उसके चारों तरफ भी पांचवें वर्ण के बीसियों आदमी जमा हो गये और उसे 'जीनियस' साबित करके चलते बने. कितने सांप लोटे होंगे हीरालाल के सीने पर जब अपनी ही फिल्म में उसे पापुलर प्ले-बैक सिंगर को लेना पड़ा क्योंकि म्यूजिक डायरेक्टर नामी था और उसने जिद पकड़ ली थी.

हीरा को गलतफहमी थी कि उसकी फिल्म उस बड़े प्ले-बैक सिंगर की वजह से पिटी.

रह-रहकर हीरा को मुक्तिबोध की याद आती थी. वह होते तो उसकी यह दुर्गति न होती. मुक्तिबोध अपने जमाने के टॉप के म्यूजिक डायरेक्टर थे. कभी पूरे देश में उनकी धुनें गूंजी थीं. लेकिन जब से चोरी-चारी का रिवाज हुआ, वह पिछड़ गये. भोगविलास की इस परंपरा में वह एक एक पत्नी-व्रत धारी आदमी —उम्रभर एक ही प्रियतमा को निहारते रहे जो अब उनका मुंह चिढ़ाती, उन्हें गाली देती थी और जिसका नाम था—संगीता भारती.

इस पर भी मुक्तिबोध उसी जोश-खरोश से नैतिकता की बातें करते थे. लोग उन्हें मुंह पर तो कुछ न कहते लेकिन कुछ दूर जाकर हंस देते. उनकी गजल तक 'बेस' अब भी पहाड़ी, तिलक कामोद या गौड़ी पूरबी होती, हालांकि आज का तकाजा था कि सिर शोपां का हो, धड़ हैरीसन का और पांव—किसी के भी.

हीरालाल का बाल-बाल कर्ज में बिंध गया था और अब वह उस मंजिल पर पहुंच गया था, जिसमें आदमी आखिर बेहयाई धारण कर लेता है, कपड़े झाड़कर उठता और अकड़-फूं के अंदाज में पूरे बाजू फैलाकर कहता है—कुछ नहीं है मेरे पास देने को, बिगाड़ लो जो बिगाड़ना है मेरा. सेठ लोग सोचते, अब इसका और बिगड़ ही क्या सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हौसलेवाले उसके लिए दुआ करते पच्चीस-पचास और भी देकर जाते.

कभी एक साथी को हीरा ने फ्लैट लेकर दिया था. कंगाली में हीरा उसी में उठ गया, लेकिन वहां भी फोन पर फोन आने लगे. यह यंत्र जो करोड़ों का कारोबार करता है और या फिर आशिकों की चू-चू-चू-चू का संप्रेषण, हीरा के लिए फनियर सांप हो गया. आखिर एक सुहानी सुबह को हीरा के उस ले-पालित ने उसका सामान उठाकर सड़क पर रख दिया, जो सामान भी न था!

वहां राशन की दूकान के नुक्कड़ से जो अब हीरा का रैनबसेरा हो गया था, एक ही खूबसूरत चीज दिखायी देती थी—नंदलाल के मकान पर लपकी हुई बेल!

मगर जब 'अंबिका' शुरू भी नहीं हुई थी तो हीरा ने नंद को आते-जाते देखा था. यह कदाचित के अंदाज में उसे नमस्ते करता था और वह 'शायद' के अंदाज में जवाब देता. फिर पब्लिक लैट्रिन के नल से धोये-बनाये हुए कपड़ों में हीरालाल श्री रोकड़ा के पास गया जो बहुत ही नामी प्रोड्यूसर था. लेकिन उसने अपने इस कृपाकांक्षी को देखने तक की परवाह न की. हीरा कुछ समझ गया—जब तक आदमी खुद को किसी के लिए अपरिहार्य न बना ले, काम चलते हैं भला? उसने रघु दयाल से फिर दोस्ती दोहरा ली और 'नाज' सिनेमा के पास कॉफी हाउस जाने लगा, जहां कसैली कॉफी की एक प्याली और भुने-सड़े हुए केशोनट के चंद दानों पर फिल्मवालों की किस्मत बन या बिगड़ जाती है. रघु ने हीरा की मदद करने का वायदा किया. हीरा आखिर दम तक यही समझता रहा, रघु वह-सब मेरे लिए कर रहा है... मगर वह तो रोकड़ा के अंगूठे का निशान चाहता था.

रोकड़ा को फोन हो चुका था. जब हीरा और रघु बल्कि रघु और हीरा उसके पास पहुंचे तो उन्होंने खुद आकर दरवाजे पर इस जोड़ी को रिसीव किया. अपने फिल्मी सैट के-से आफिस में चेक टी-सैट में उन्होंने खुद अपने हाथों से चाय बनायी और पिलायी. बातों में जब रोकड़ा साहब ने कहा—हां-हां, मैं हीरालालजी को बड़ी अच्छी तरह से जानता हूं, तो दोनों हीरालाल और रघु ने एक-दूसरे की तरफ देखा. हीरा ने गर्व से, रघु ने विनय से. फिर अंगूठे का निशान यानी दस्तख्त वगैरा हुए. रकम इस जेब से उस जेब में गयी और दोनों खुश-खुश लौटे. कुछ ही दिनों में हीरालाल को पता चल गया...

हीरालाल ने देखा उसकी असली जगह वही है जहां रोकड़ा साहब का चपरासी बैठता है. बाहर वही दरवाजे पर की सुर्ख बत्ती साहब के व्यस्त होने का पता दे रही थी. हीरा बाहर बैठा हुआ सोच रहा था कि साहब व्यस्त भी रहेगा तो कितना—दो घंटे, चार... पांच ... उसे खबर न थी घंटे दिन में बदल जाते हैं और दिन महीनों में.

बीच में रघु ने हीरा को इस अवस्था में देखा भी और कहा— तू तो कहता था रोकड़ा तेरा बड़ा यार है यार?

वह तो मैं अब भी यही कहता हूं—हीरालाल ने घबराकर जवाब दिया—आखिर इंसान है, इससे कभी व्यवस्ता हो ही जाती है...

हे भगवान! मुझे आखिर चाहिए क्या था—यही ना, एक प्ले-बैक रोकड़ा के पास!

रोकड़ा दूसरे करोड़ की फिक्र में था, मैं अभी पहले करोड़ की—और हंसी, जो रोना भी न थी.

पैसा उसके पास आता है, जिसके पास पैसा हो इसलिए हीरा भीख मांगकर भी कुछ पैसे जेब में डाल लेता था—सौगंध लेकर कि वह इस भिक्षा वृत्ति को पेशे के तौर पर कभी अख्तियार नहीं करेगा.

काम उसके पास आता है, जिसके पास पहले ही काम हो. इसलिए हीरा साफ झूठ बोलता था—पांच पिक्चरों में प्ले-बैक दे रहा हूं मैं, कोई शुरू नहीं हुई, कोई हो रही है.

बीच में हीरा की मुक्तिबोध से भी मुलाकातें हुईं—यह कि उनकी हालत और भी खस्ता हो गयी है, हीरालाल को उनकी बातों से पता चला—जिसे मेरे पास आना है आये, नहीं आना है न आये, मैं ना गया किसी के पास. गजब खुदा का, यह घमसान का म्यूजिक देने के बाद भी अगर लोग मुझे भूल गये हैं, तो भूल जायें—और फिर, यह क्या हो रहा है दुनिया में; झूठ का मोल है, सच अनमोल होकर रह गया है.

मुक्तिबोध को चाहिए था घर से बाहर निकलते ताकि उन्हें देखकर किसी को तो भूले-बिसरे याद आ जायें और कुछ नहीं तो खुली हवा से फेफड़े ही साफ हो जायें.

एक बार वह निकले भी—और तो और उसी संगीता भारती ने कूड़े की टोकरी उनके सिर पर खाली कर दी.

पैसे को औरत चाहिए तो औरत को भी तो पैसा चाहिए.

उसके बाद मुक्तिबोध अंदर ही अंदर, और अंदर अपने आप में सिमट गये, जहां उन्हें अपने ही लहू का संगीत सुनायी देने लगा.

हीरालाल उनके पास बैठा था, जब मुक्तिबोध ने अपने मस्तक की तरफ इशारा करते हुए कहा—जो यहां लिखा है हीरा, वह मिलकर रहेगा.

हीरालाल ने मुक्तिबोध के माथे की तरफ देखा, जहां चंद आड़ी-तिरछी लकीरों के सिवा कुछ भी न था. बायीं तरफ एक घुंडी-सी बनी थी. शायद उसी ने किस्मत के बहाव को रोक दिया था. जन्म कुंडली देखने

बेदी की लघु रचनाएं : एक

हादसे

वह उदास था और यों ही इधर-उधर भटक रहा था.

वह अकेली थी और पार्क के पास सूखी-सी जमीन पर बैठी हुई थी.

और सामने कई बच्चे खेल रहे थे.

वह चाहती थी कि कोई आता-जाता व्यक्ति उसे बुलाये और उससे बातें करे. उसमें खुद किसी को बुलाने का अभी साहस नहीं था, क्योंकि वह लड़की थी.

लोग आ रहे थे, जा रहे थे. और फिर, जैसे कि हमेशा होता है—

'यह लड़की यहां अकेली क्यों बैठी है?'

मानो पुरुष के अकेले होने की कल्पना की जा सकती है, स्त्री के बारे में नहीं. शायद यह ठीक ही है, क्योंकि स्त्री खुद को अकेला महसूस करते ही दो हो जाने की कोशिश करती है.

उदास लड़का भटकता हुआ वहां आ निकला. और फिर वही—

'यह लड़की यहां अकेली क्यों बैठी है?'

अपने विचारों में वह एकदम आगे बढ़ गया. फिर उसने मुड़कर देखा.

लड़की ने अपनी आंखें झुका लीं और अपनी ही भौंहों और पलकों की छाया में बैठी मुस्कराती रही.

'होगी कोई,' लड़के ने सोचा और चला गया.

यह प्यासी धरती, वह बादल का टुकड़ा.

और यह हादसों की हवा.

दूर जाकर लड़के ने सोचा, 'लेकिन वह अकेली क्यों बैठी थी?' और वह लौट आया.

लड़की के माथे पर तेवर थे.

लड़के ने उसे अहंकारी लड़की समझा और चला गया.

बात सिर्फ इतनी थी—

'तुमने पहले क्यों न मुझे बुलाया?'

यह आदि काल से अकेली, वह अनंत काल तक उदास.

और सामने कई बच्चे खेलते रहे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले पंडित मुक्तिबोध के पास से उठकर चले गये. जैसे उनका भी सहारा चले जाने पर उन्होंने झल्लाकर हाथ हारमोनियम पर मारा और थोड़ी आ-आ-आ के बाद एक गजल शुरू कर दी जो पीलू में बांधी गयी थी—

क्या जानिये क्या हो गया है अरबाबे-जुनूं को
मरने की अदा याद न जीने की अदा याद!

. . . विवश विनयशीलता के-से आंसू मुक्तिबोध की आंखों से बह रहे थे जिसने हीरा के भी बंध खोल दिये थे. वह दिन थे जब नंदलाल की 'अंबिका' हिट हो गयी थी. हीरा ने जल्दी से अपने आंसू पोंछे.

—आइडिया!

नंदलाल बुरी तरह से पांचवें वर्ण में घिरा हुआ था, जबकि हीरा-लाल बड़ी खामोशी से आकर नम्रतापूर्वक एक तरफ बैठ गया. साहब-सलामत तो हो ही चुकी थी, मगर नंदलाल उसे आगे बढ़ने देना न चाहता था. वह पहले ही गज्जू दांडेकर, फिरोज और उनकी तरह के लोगों से घब-राया हुआ था. जैसे हर अमीर आदमी की बीमारी में मुलाकाती डाक्टर, हकीम और वैद्य बन जाते हैं ऐसे ही सब लोग उसे आइंदा के लिए मशवरे दे रहे थे. अगर नाकामी में नंदलाल कुछ सोच भी सकता था तो अब कामयाबी में वह बिल्कुल ही कनफ्यूज हो गया.

नंदलाल जब दूसरों से बातें कर रहा था तो हीरालाल अपने यहां से नजरें उस पर फोकस करने लगा जैसे वह किसी मैस्मरिज्म, तांत्रिक विद्या के गुर जानने लगा हो.

उचटकर नंदलाल की नजरें जो हीरा पर पड़ीं तो वह अपनी निगाहें हटा ही न सका जैसे उस नवागंतुक में कोई खास बात हो.

क्या हाल है?—नंदलाल ने तकल्लुफ से पूछ ही लिया.

अपनी जगह पर कसमसाते हुए हीरा ने वहीं से डोरी पकड़ ली—बस कृपा है अंबाजी की!

नंदलाल चौंक गया. उसे लगा जैसे अंबा मां ने खास तौर पर उसे उसके यहां भेजा है—अंबा मां, जिसने छह लाख के खर्च पर करोड़ लौटाये. फिर वह डर गया—कहीं यह भी तो वह नहीं है?

महीना भर हीरा ने अपना मंतव्य नंदलाल से छिपाये रखा, जिससे नंदलाल में एक अजीब मनोवैज्ञानिक उलझन पैदा हो गयी. वह अब तक लोगों की फरमाइश और अपने इनकार का आदी हो चुका था. हीरा ने काम भी पकड़ा तो नंदलाल के नये दफ्तर का. वह पाई-पाई पर इंटीरियर डेकोरेटर से लड़ता. पच्चीस हजार के खर्च पर नंदलाल उसे पांच हजार एडवांस देना चाहता था, लेकिन हीरालाल ने उसके हाथ रोक लिये और उसे पांच सौ में निपटा लिया. कुछ दिन के बाद फिर उसे एक हजार दे दिया—आखिर सामान तो हमें ही देना है, उसे तो सब अपने दिमाग ही से निकालना है ना; वही दलील जिसकी वजह से कोई कलाकार अपने पेशे से रोटियां नहीं निकाल सका.

दिन अभी शाम में ढल न पाया था कि नंदलाल ही के घर में हीरा ने इशा की नमाज की तैयारी शुरू कर दी. उस वक्त वह वजू कर रहा था, जबकि नंदलाल चौंका—तुम मुसलमान हो?

नहीं तो.

मैं एक मुस्लिम सब्जेक्ट बना रहा हूं नंदलाल जी—हीरा ने कुछ रुकते हुए कहा—दरअसल में इसका टाइटिल इंपा में रजिस्टर करवा आया हूं. और उसने जेब में से रसीद निकाली. वाकई टाइटिल हीरालाल पंडित के नाम रजिस्टर्ड था, और वह था—सिज्दा!

अरे!—हीरा ने एकदम कहा, जैसे कोई भूली हुई बात एकदम उसे याद आ गयी. और जो पहले ही कौंधे की तरह से लपककर नंदलाल के दिमाग में आ चुकी थी—यह फिल्म आपको बनानी चाहिए. आप जो किसी बात का फैसला नहीं कर पा रहे हैं, आज हो गया—फैसला! बात यह है, अंबिका बनाने के बाद आपने पूरी हिंदू कौम को 'राम' कर लिया है, 'सिज्दा' से पूरी मुसलमान कौम को 'रहीम' कर सकते हैं!

उसी वक्त हीरालाल को पता चल गया कि वह निशाने से थोड़ा आगे निकल गया है. चुनांचे उसने उसे बातों में उलझाये रखने की सोची. यों भी दिनभर इधर-उधर झख मारने से नंदलाल की आत्मरक्षा की सब शक्तियां खत्म हो चुकी थीं. फिर उस वक्त वहां कोई दूसरा था भी नहीं. सुधा मामीजी के साथ साजिश करके उसने आने-जाने वालों के तांते को बिखेर दिया था. इस समय वह नंदलाल और उसके खुदा या देवी के बीच 'अकेले' थे. हीरा कहे जा रहा था—मुसलमानों के उठने-बैठने, उनके कल्चर में वह बात है कि जो हिंदुओं को भी बहुत पसंद आती है. देखो ना, बेटी कैसे बाप को आदाब कहती है और साथ में 'अब्बा हुजूर' भी. सामने भी कितना खूबसूरत पर्दा है जो आज के नंगेपन में कहां है?

मैं समझ गया.

नहीं, आप नहीं समझे—मुसलमान जो भाषा इस्तेमाल करते हैं वह बड़ी सुंदर है. शकीला बानो भोपाली जब कव्वाली करती हैं तो गुजराती हिंदू भी पागलों की तरह से दाद देते हैं, चाहे एक लफ्ज भी उनकी समझ में नहीं आता . . .

इस पर नंदलाल और हीरालाल दोनों मिलकर हंसे. उन्होंने देखा कि सुधा भी कबर्ड के पीछे खड़ी हंस रही है.

तो अंबिका के बाद सिज्दा—बीच में नाच, कव्वाली, मुशायरा, कोठा, गजलें, चूड़ीदार, गोटे लगे लहराते हुए दुपट्टे और आखिर—पैसा!

बात हो चुकी थी मगर नंदलाल का कुदरती हर्बा आड़े आ रहा था, यानी की सिर के झटके. कभी लगता था फिल्म बनेगी तो कभी नहीं बनेगी, बनेगी, नहीं बनेगी. . .

म्यूजिक डायरेक्टर के तौर पर मुक्तिबोधजी का नाम तजवीज हुआ था, इसलिए कि वही एक ऐसे आदमी थे जो हीरालाल के प्ले-बैक सिंगर बनने के ख्वाब पूरे कर सकते थे. हीरालाल ने नंदलाल के सामने अपनी बात ही न की, क्योंकि अंदर से वह जानता था कि मुक्तिबोध आ जायेंगे तो वह खुद आ जायेगा. उसका चांस सेंट-परसेंट है. नंदलाल का ऐतराज था कि इसमें कोई शक नहीं कि मुक्तिबोध जैसा संगीतकार इंडिया ने अभी तक पैदा नहीं किया, लेकिन आजकल वह बिकते नहीं. दूसरे हिंदू होने के नाते वह नात कैसे बनायेंगे? प्ले-बैक सिंगर भी चोटी का होना चाहिए. क्योंकि उर्दू भाषा में 'क' दो तरह के होते हैं जिनमें से एक गले से निकलता है और दूसरा—दूसरा न मालूम कहां से. . . और हीरा कांप गया.

लेकिन वह जैसे-तैसे भी इतने बड़े आदमी को, जिसकी 'अंबिका' हिट हो गयी थी, मुक्तिबोध के घर ले ही आया.

जाने मुक्तिबोधजी ने कैसे कह दिया—कोई बात नहीं बेटा! बुध कौन-सा दूर है? हालांकि उनके दिमाग में दलाल, सेठिये, बैलिफ—क्या कुछ घूमने लगा था और उनसे ज्यादा अपनी बुढ़िया, जो घूम ही नहीं रही थी.

बाकी जिम्मेदारी हीरा की थी कि वह बुढ़ऊ को समझा दे कि पैसा कोई आसानी से नहीं देता. 'अंबिका' में करोड़ का बिजनेस ठीक है, लेकिन वसूली भी तो कोई चीज है?

खैर, हीरा कैसा भी था मगर था तो मुक्तिबोधजी ही का शुभ-चिंतक, साथ नंदलाल का भी. हालांकि यह सब झूठ है—असल में वह अपना ही हितचिंतक था.

लातूर भवन के टेरेस से उठकर चलते हुए मुक्तिबोध ने सिर्फ इतना ही कहा—यह काहे की बेल है?

मॉर्निंग ग्लोरी की—नंदलाल ने जवाब दिया.

मुक्तिबोधजी ने अपनी नजरें बचाते हुए कहा—तो फिर ईवनिंग ग्लोरी की भी कोई होगी? नहीं देखी तो मुझे लो! —और फिर वह हंस दिये, चल दिये.

हीरा में बाकी तो सब ठीक था, लेकिन एक बात गलत थी. उसने मुक्तिबोधजी की पूरी रकम और साइनिंग भी खुद ही तय कर दी थी—जैसे वह, मुक्तिजी, कोई बात ही नहीं. जालिम! पूछ तो लिया होता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म में जो आता है, रिश्ते जगा लेता है. अरे भाई, हमें अपना बेटा नहीं ब्याहना है. यह कर्माशियल दुनिया है, इस हाथ से काम लो, उस हाथ से दाम दो और बस—इससे पहले यह बकवास कभी न हुई थी. हुई भी तो हमने कांट्रेक्ट फाड़कर खिड़की से बाहर फेंक दिये. और अब? वह जिगर मैं कहां से लाऊं?—यह हीरा? कहता है मैंने नंदलाल को कह भी दिया कि अंकल का तो कुछ नहीं, वह दरवेश आदमी—अरे दरवेश को क्या जरूरत नहीं होती. फिर—फिल्मी दुनिया ग्रुप से चलती है. आप एक बार इस ग्रुप में घुस तो जाइये अंकल! 'अंबिका' ग्रुप आज के सबसे बड़े और कामयाब प्रोड्यूसर नंदलाल का ग्रुप—अरे, बड़े नंदलाल आये और बड़े गये और अपने घर में बैठे हुए मुक्तिबोध सचमुच चिल्ला उठे—गैट आउट...

बुढ़िया हड़बड़ा के उठी—क्या हुआ.

मुक्तिबोध की सांस धौंकनी की तरह से चल रही थी. वह माथे पर से लाज-संकोच की बूंदें पोंछ रहे थे.

तभी संगीता भारती बंकारी, फुंकारी—वही हो रहा है, जो तेरे ऐसे खूसट का होना था. और वह वापस अपने बुढ्ढे की कब्र में लेट गयी.

जिस दिलेरी से तकाजा करनेवालों को मुक्तिबोधजी ने बुध का वक्त दिया था, उसी बेहयाई से अगले शनिवार का दे दिया. (चैक बुध को बैंक में पड़ेगा तो... वगैरा) हैरानी की बात यह कि बीसियों ही आये मगर टाले जाने पर किसी ने उफ न की. क्या इरादे थे उनके? अरे, वह शोर मचाते, नालिश की धमकी देते, मगर यह चुप? राम जाने, यह सब मिलकर क्या करने वाले हैं. मुक्तिबोध कांप रहे थे.

बुध के रोज वायदा किये वक्त पर हीरा नंदलाल की पत्नी सुधा के साथ चला आया. सुधा के हाथ में मिठाई का डिब्बा था.

मुक्तिबोध और उनकी बुढ़िया ने मिठाई का डिब्बा ले लिया और इंतजार करने लगा...

हीरा बोला—मैं आपके घर में इन लक्ष्मी को ले आया हूं और.—उसने सुधा की तरफ इशारा किया—सुधा भाभी से बड़ी लक्ष्मी क्या होगी? बात यह हुई कि नंदलाल ओवर-फ्लो लेने के लिए कलकत्ते चले गये हैं, हफ्ते भर में लौट आयेंगे. जाते समय उन्होंने ताकीद की कि मुक्तिबोध-जी को मेरा अचानक चल देना बुरा न लगे, इसलिए तुम मेरी बीवी को ले जाना और साथ ब्रजबासी के यहां से रसमलाई का एक डिब्बा भी...

मुक्तिबोधजी ने सिर हिलाया और बोले—हूं! और एक नजर अपनी बुढ़िया की तरफ देखा. उनमें पुराने जलाल के दिन फड़फड़ाकर रह गये.

इधर हीरा और सुधा गये, उधर टांच वाले घर से रेडियोग्राम, स्पीकर, टेपरेकार्डर, हारमोनियम, सितार, फर्नीचर और कुछ बर्तन उठाकर ले गये—इसका क्या है? मुक्तिजी ने सोचा, दस दिन में जब पैसे आ जायेंगे तो चीजें लौट आयेंगी, मगर जब तक उन्होंने नीलाम न कर दी हों तो—कर भी दी हों तो नयी खरीदेंगे. आखिर एक आदमी ने अपनी औरत, अपनी इज्जत मेरे घर भेजी है. इससे बड़ी बात क्या होगी? यह कोई आजमाइश हो रही है. हो सकता है दस दिन में नंदलाल कलकत्ते से लौट ही आये.

जब टांच वालों ने घर की चीजों पर हाथ डाला तो मुक्तिबोध की बुढ़िया ने एक हृदयविदारक चीख मारी और बेहोश हो गयी.

दस दिन बीत गये लेकिन नंदलाल कलकत्ते से न लौटा. अब हीरा मुक्तिबोध से बचता फिर रहा था. नंदलाल का हाथ रोकने और मुक्तिबोध को पैसा दिलवाने के बीच में वह कहीं बंटकर रह गया था.

मुक्तिबोधजी हीरा की बात पर होंठ भींचकर सिर्फ एक ही कहते रहे—हूं! लेकिन जब हीरा चला जाता तो अपने आप से कहते—मुक्ति, तुझे क्या हो गया है, क्यों नहीं इन पिल्लों को ठुड्डे मारकर बाहर निकाल सकता? अब रह ही क्या गया है...?

इसी सिलसिले में एक दिन मुक्तिबोधजी ने दुलारे, अपने शागिर्द को भेजकर उस्ताद कलबअली का सितार मंगवाया, जिस पर हाथ रखते ही वह सब कुछ भूल गये. बजाते हुए कैसे वह उस साज से लिपट-लिपट जाते थे. मालूम होता था जैसे उनके बाजुओं में कोई महबूबा है जिस पर झुकझुककर, जिसे चूम-चूमकर, जिस पर अंगुलियां दौड़ा-दौड़ाकर वह किसी नयी जिंदगी के सुर निकाल रहे हैं—बुढ़िया देख रही थी और कबाब हो रही थी.

एक झाले के बाद एकदम मुक्तिबोधजी ने सितार एक तरफ रख दिया और फिर अपने आप पर करुणा—इस पर भी तू यह सब अपने आपसे होते देख रहा है मुक्ति—? क्यों नहीं तू नंदलाल से कह सकता—नहीं चाहिए मुझे तुम्हारा सिज्दा जो सिज्दा ही नहीं.

फिर वह नात जिसकी धुन अपनी बेकारी के दिनों में मुक्तिजी ने निकाली थी, जिसे गाते हुए उन्होंने बीच में सब बंद कर दिया, यह भैरवी, यह टोडी—खम्माच सब बकवास हैं. कुरआन की भी तो आयत है, जिस रुख जमाना फिरे, उसी रुख फिर जाओ... परमात्मा! मैं नहीं फिर सकता, मेरी हड्डियां बूढ़ी हो गयी हैं जो टूट सकती हैं, मुड़ नहीं सकतीं.

नहीं! मैं यह नहीं करूंगा. मैंने अपने संगीत, अपनी मां से प्यार किया है. ईश्वर! औरतें बीसियों, सैकड़ों हो सकती हैं, मां सिर्फ एक... क्या मैं भूखा भी नहीं मर सकता? यह आजादी तो मुझसे कोई नहीं छीन सकता...

नंदलाल दस दिन बाद भी नहीं लौटा. बीच में हीरा मुक्तिबोध-जी के घर की परिक्रमा करता रहा.

अब के जो हीरा आया तो एक तार से लैस होकर. तार कलकत्ते से आया था जिसमें लौटने के तिथि-वार सभी लिखे थे. उस दस्तावेज को कांपते हाथों में लेकर मुक्तिबोध फिर कुछ भूल गये.. और आंखें सिकोड़कर कहीं दूर देखते हुए वह फिर बोले—हूं! ...!

निश्चित तारीख को नंदलाल वाकई चला आया. हीरा उसे घेरघार कर मुक्तिजी के यहां ले ही आया. क्या यकीन से उसके हाथ घंटी पर पड़े. बहुत देर तक अंदर से कोई आवाज न आयी. आखिर पता चला कोई आ रहा है. दरवाजा खुला तो सामने बुढ़िया थी.

बुढ़िया ने उनको जाने के लिए कहा, न बैठने के लिए. इस पर भी वह अंदर जाकर बैठ गये.

हीरा ने पूछा—अंकल कहां हैं आंटी?

पहले तो वह ऐसे ही मटर-मटर देखती रही. आखिर बोली—जाने कहां खप गया है बुढ़ऊ? उसे तो मौत भी नहीं आती... क्या-क्या टोने न किये मैंने...

तीन घंटे इंतजार के बाद नंदलाल लौटने लगा. हीरा ने और कुछ देर देख लेने को कहा, मगर नंदलाल राजी न हुआ. उठते हुए नंदलाल ने तसल्ली के लिए जेब में हाथ डालकर देखा, चैक नहीं था! हीरा की हालत खराब थी जरूर. इतनी मेहनत से बनायी हुई उसकी इमारत ढह गयी थी जिसका ठेकेदार वह खुद ही था. उसी ने सीमेंट से ज्यादा रेत मिला दी थी उसमें!

हीरा गुमसुम जा रहा था कि दूर से उसके कान में कोई धुन सुनायी देने लगी, जो पीलू में बंधी थी.

हीरा ने पूछा—आपको कोई आवाज सुनायी नहीं देती नंदलाल जी? इस एंटॉप हिल के पीछे से. जहां अरब सागर है—?

नंदलाल ने सुनने की कोशिश की और फिर वैसे ही सिर हिलाया—नहीं तो... हां तो... नहीं तो...

● रूपांतर : लक्ष्मी चंद्र गुप्त

चलते-चलते

प्रभात की परछाइयां परे जा रही थीं.
पालने में नन्हीं पारो सो रही थी. सुबह का संगीत लोरियां दे रहा था. हवा झूलने झुला रही थी...
परे खिड़की के पास से दो सफेद-सफेद पक्षी उड़े और उड़ते-उड़ते दूर कहीं आसमान की गहराइयों में गुम हो गये.
पीछे देखा तो पारो जाग गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदी का कहानीकार 'रोटी' को प्रमुख और 'साहित्य' को गौण बनाने के लिए तैयार नहीं था.

हंसराज रहबर

तीन कम पचास बरस पहले की बात है कि राजेंद्र सिंह बेदी लाहौर पोस्ट ऑफिस में क्लर्क थे और उस समय की प्रसिद्ध उर्दू मासिक पत्रिका 'अदबी दुनिया' में उनकी कहानियां बड़े ठाठ से छपती थीं. मैं उन्हें तभी से जानता था, हालांकि वे उम्र में मुझसे साल-डेढ़ साल छोटे थे, लेकिन मैं अभी 'अदबी दुनिया' में छपना शुरू हुआ था और उन्हें शोहरत हासिल हो चुकी थी. कृश्न चंदर, सआदत हसन मंटो और इस्मत चुगताई के साथ उनकी गिनती नामवर कहानीकारों में होती थी.

मैं इन सबको शौक से पढ़ता और पसंद करता था. परखने-समझने और अलग-अलग पहचानने की दृष्टि बाद में विकसित हुई. बेदी में और मुझमें घनिष्ठता तभी बढ़ी.

बेदी का पहला कहानी संग्रह 'दाना व दाम' उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ और हाथों-हाथ लिया गया. इस संग्रह में उनकी 'गर्मकोट', 'ग्रहण' और 'तुलादान' आदि प्रारंभ की लेकिन बहुचर्चित कहानियां शामिल थीं. उनकी कहानियों की अपनी एक विशेषता थी—निम्न मध्य वर्ग के जिन लोगों में वे पैदा हुए, जिनसे उनके निकट संबंध थे और जिनके साथ वे डाकखाने में काम करते थे, उन्हीं में से वे अपनी कहानियों के पात्र चुनते और उन्हें पूरी सहानुभूति और साहित्यिक निष्ठा के साथ चित्रित करते. अपने इस वर्ग के सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, आशा, अभिलाषा और आकांक्षाओं को उन्होंने बखूबी समझ लिया था. यही कारण था कि वे अपने पात्रों को हाड़-मांस के बने चलते-फिरते इंसान बनाने के लिए सजीव विवरण जुटाने में सक्षम थे. कथानक संक्षिप्त होता था और पूरी कहानी एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक बिंदु के इर्द-गिर्द घूमती थी और क्लाइमेक्स पर जाकर खत्म होती. कुल मिलाकर वह जो चित्र प्रस्तुत करते थे, वह मन मस्तिष्क पर अंकित हो जाता था और कहानी पाठक पर अपना एक स्थायी असर छोड़ती थी.

उन दिनों साहित्य का प्रगतिशील आंदोलन जोरों पर था. प्रगतिशील कहलाना एक फैशन बन गया था. बहुत से बेकार नौजवान आंदोलन से इसलिए जुड़ गये

लेकिन बेदी से भूल यह हुई कि कैरियर बनाने आये प्रगतिशीलों की तरह वे भी फिल्म में पहुंच गये. साहित्य के लिए जो साधना दरकार है, वह उनसे छूट गयी. अपनी दोटूक राय से बड़ी-बड़ी हस्तियों को मुंहतोड़ जवाब देने वाले वरिष्ठ कथाकार का अंतरंग और विश्लेषणपरक लेख——

थे कि उन्हें लेखक बनकर और शोहरत पाकर कैरियर बनाना था. राजेंद्र सिंह बेदी भी आंदोलन के साथ थे और हमेशा साथ रहे, लेकिन वे आंदोलन से नहीं जुड़े थे, बल्कि आंदोलन उनसे जुड़ गया था. कारण यह कि साहित्य का उद्देश्य उन्होंने 'कला, कला के लिए' की बजाय 'कला, जीवन के लिए' को बनाया था.

बेदी इस उद्देश्य को सहज स्वाभाविक और व्यावहारिक रूप दे रहे थे. व्यर्थ की चिल्लपों मचाकर सस्ती शोहरत हासिल करना और कहानी को नारा बनाना उन्हें

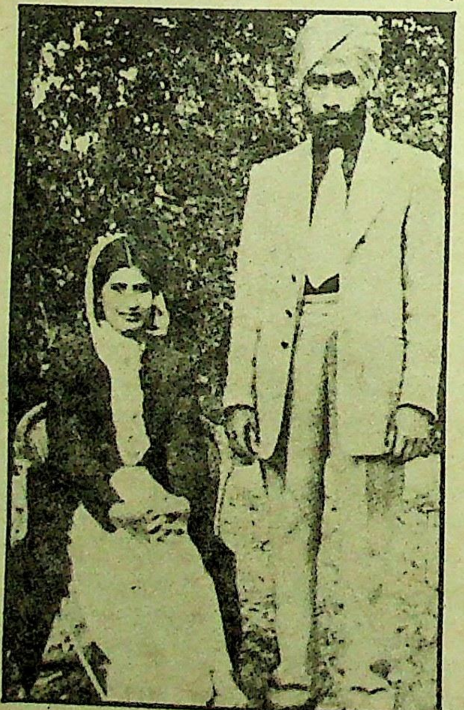

पत्नी के साथ राजेंद्र सिंह बेदी

स्वीकार नहीं था. नारे से कहानी बन सकती है, पर कहानी को नारा बना दिया जाये तो कहानी, कहानी नहीं रहती.

बेदी रेडियो से होते हुए फिल्म में बंबई पहुंच गये थे और एक खत उन्होंने बंबई से लिखा था. मैं देश-विभाजन के बाद लाहौर से दिल्ली आ गया था. अकबर मंजिल में मेरी रिहायश थी. घर से थोड़े ही फासले पर मासिक पत्रिका 'शाहराह' का दफ्तर था. बेदी समेत उर्दू के सभी प्रगतिशील लेखकों की रचनाएं 'शाहराह' में छपती थीं. प्रकाश पंडित संपादक थे.

पत्रिका में मेरा एक स्थायी स्तंभ था: 'मैं जहरे हलाहल को कभी कह न सका कंद.' इस स्तंभ के अंतर्गत मैं आंदोलन पर हावी गुट और कहानी को नारा बनाने तथा पश्चिम से आयात की जाने वाली समाज-विरोधी उच्छृंखल प्रवृत्तियों की आलोचना किया करता था. बेदी में और मुझमें घनिष्ठता तभी हुई. हम दोनों के विचारों में साम्य था. कृश्न चंदर, जिसे आंदोलन पर हावी गुट ने अपना नेता और 'एशिया का सबसे बड़ा कहानीकार' बना रखा था, मेरी आलोचना का केंद्र था और बेदी उसे पैंफलेटियर कहा करते थे.

बेदी के युग और उसमें बेदी की भूमिका को समझने के लिए प्रगतिशील आंदोलन को समझना जरूरी है. आंदोलन को अलग-अलग दो दौरों में बांटा जा सकता है. पहले दौर में जिस तरह हिंदी के प्रगतिशील और प्रयोगवादी एक ही मंच पर इकट्ठे थे, उसी तरह उर्दू के मार्क्सवादी और फ्रॉयडवादी और परंपराविरोधी प्रवृत्तियों का आयात खूब हुआ और पश्चिम की इस जूठन को 'प्रगतिशील' अथवा 'नये' साहित्य का नाम दिया गया. उर्दू में आंदोलन की शुरुआत 'अंगारे' नाम के कहानी संग्रह से हुई, जिसमें सज्जाद जहीर आदि की कहानियां शामिल थीं.

बेदी कई मामलों में दूसरों से अलग थे. उन पर पश्चिमी रुझान का असर तो था, लेकिन बहुत कम. उनकी 'घर और बाहर' कहानी फ्रॉयडवादी प्रवृत्ति की समाजविरोधी कहानी है, लेकिन वे मुख्य रूप से स्वस्थ प्रवृत्ति के लेखक थे और अपनी कहानियों का मवाद, जैसा कि उन्होंने खुद भी लिखा है, अपने गिर्दो-पेश से और समाज के रोजमर्रा से लेते थे.

दूसरा दौर युद्ध के दौरान 1943 के आसपास शुरू हुआ, जब वे प्रयोगवादी और फ्रॉयडवादी आंदोलन से अलग हो गये. तब साहित्य को जीवन में यों जोड़ा गया कि समसामयिक घटनाओं पर लिखी हुई और सपाट चीजों की बाढ़ आ गयी. पहले बंगाल के अकाल पर और सांप्रदायिक दंगों पर ढेरों कहानियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी गयीं. कुछेक, जो उस समय बहुत चर्चित हुईं, आज कोई उनका नाम तक नहीं जानता. मेरा खयाल है कि बेदी ने बंगाल के अकाल पर एक भी कहानी नहीं लिखी, क्योंकि बंगाल के सामाजिक जीवन से वे परिचित नहीं थे और सिर्फ एक कहानी 'छुइमुई' लिखी और वह भी पंजाब के संदर्भ में. कहानी लाजवाब है. सआदत हसन मंटो की 'टोबा टेकसिंह' की तरह यह कहानी भी हमेशा याद रहेगी और पढ़ी जायेगी.

लेकिन बेदी से भूल यह हुई कि कैरियर बनाने आये प्रगतिशीलों की तरह वे भी फिल्म में पहुंच गये. साहित्य के लिए जो साधना दरकार है, वह उनसे छूट गयी.

वे पहले ही कम लिखते थे, अब और भी कम लिखने लगे. और जो लिखते थे, उसमें वह बात पैदा नहीं हो पाती थी, जिसके लिए वे मशहूर थे. मैं 'शाहराह' में उनकी कहानियां पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया लिखता था तो वे इस कमी को स्वीकारते थे.

फिल्म में काम करते हुए भी उन्होंने 'अपने दुख मुझे दे दो' जैसी कुछ सफल कहानियां और 'एक चादर मैली-सी' लघु उपन्यास लिखा, जिसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ, लेकिन अपनी जो चीज उन्हें खुद पसंद नहीं आती थी, उसे लिखकर फेंक देते थे या फिर शुरू करने के बाद अगर मन के अनुकूल आगे नहीं बढ़ती थी तो बीच में ही अधूरी छोड़ देते थे. इस मामले में बेदी का कलाकार पूर्णरूप से सजग और ईमानदार था. पाठक को धोखा देने का सवाल ही पैदा नहीं होता था. वह खुद अपने को भी धोखा नहीं देते थे. 'पहाड़ी कौवा' उपन्यास का पहला परिच्छेद 'शाहराह' में प्रकाशित हुआ.

मुझे उपन्यास पसंद आया. उपन्यास का मुख्यपात्र पंजाब के एक कांग्रेसी नेता केदारनाथ सहगल को बनाया गया था. मैं उनसे भली-भांति परिचित था. वे अपने को क्रांतिकारी बताने और अपनी अलग पहचान कराने के लिए काली वर्दी पहनते थे. पहले परिच्छेद में उनका सही चरित्र उभरा था और 'पहाड़ी कौवा' नाम भी खूब था और इस चरित्र के लिए फब्ता था. मेरा खयाल था कि उस समय के खोखले वामवाद पर यह एक तीखा और सफल व्यंग्य होगा, लेकिन यह उपन्यास अधूरा ही रहा. शायद समय नहीं मिला और शायद मन के अनुकूल आगे नहीं बढ़ पाया. उन दिनों दिल्ली से 'शोला-व-शबनम' नाम की मासिक पत्रिका भी निकल रही थी, जिसका संपादन कार्य कुछ महीने मैंने किया. मैंने बेदी से उसके लिए कोई चीज मांगी थी.

अपने जवाबी पत्र में उन्होंने इसका उत्तर यह दिया था: 'शोला-व-शबनम' के लिए कुछ जरूर लिखूंगा, लेकिन जरा थोड़ी देर बाद. मैं आजकल रोजगार की फिक्र में हूं. आप हैरान न हों. यहां ऐसे मरहल भी दरपेश आते हैं, जब दूसरे वक्त की रोटी की फिक्र हो जाती है.

मतलब यह कि फिल्म जिस प्रकार की रोटी मुहैया करती है, वह आसानी से नहीं मिल जाती. उसके लिए बड़ी होड़ लगती है और बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ती है. इस दौड़-धूप में 'रोटी' मुख्य और सब बातें गौण हो जाती हैं. बेदी को भी मजबूर होकर काफी समय के लिए लेखन से हाथ खींच लेना पड़ता था.

इससे फिल्मकार राजेंद्र सिंह बेदी और कहानीकार राजेंद्र सिंह बेदी में द्वंद्व रहता था. बेदी का कहानीकार 'रोटी' को मुख्य और साहित्य को गौण बना देने के लिए तैयार नहीं था.

बेदी साहित्य की जनवादी परंपरा के लेखक थे. उन्होंने कम लिखा, लेकिन जो लिखा, वह हमेशा पढ़ा जायेगा और उसी से उनकी याद बनी रहेगी. हिंदी में उनकी ज्यादातर चीजें आ चुकी हैं, जो नहीं आयीं, उन्हें अब आना चाहिए. उनसे हिंदी साहित्य समृद्ध होगा और साहित्य की स्वस्थ परंपरा को बल मिलेगा. □

बेदी का पत्र रहबर के नाम

रहबर भाई,

आदाब.

खत मिला. मैं मुल्क के इस इलाके में, जिसे शमाली हिंद (उत्तर भारत) कहते हैं, किसी का साईबुल राय (सम्यक मत का) गर मानता हूं तो वे आप हैं. मेरे अफसाने के बारे में आपने जो कुछ लिखा है, मैं उसे सही समझता हूं. एक तो मेरी आदत कि जो चीज लिख चुकता हूं, खुद मुझे त्रुटियों से पटी हुई मालूम होती है. अब आपकी इस बेलाग राय ने मुझे उसे दोबारा पढ़ने पर मजबूर कर दिया. मुझे अफसाना ज्यादा बुरा नहीं लगा. ताहम उसमें 'वह' नहीं है, जिसे मुझे याद रखने वाले दोस्त 'बेदियत' कहते हैं. बहरहाल, मैं कोशिश करूंगा कि आइंदा बेहतर चीज लिखूं. मैंने लिखने-लिखाने का सिलसिला शुरू कर दिया है. अगर मुझे आपकी पुरखलुस राय का खयाल नहीं होता तो मैं 'शाहराह' को एक अफसाना भेज देता जो कि मैंने लिख रखा है, लेकिन मैंने 'पहाड़ी कौवा' का एक भाग ही भेजने का फैसला किया, क्योंकि नजरसानी पर मुझे अपना दूसरा अफसाना भी कमजोर नजर आया. इसका यह मतलब नहीं कि आपकी आलोचना मुझमें आत्मविश्वास कम कर देती है, बल्कि यह कि अच्छा अदब पैदा करने का जजबा और परिष्कृत हो जाता है, इसके लिए मैं आपका शुक्रगुजार हूं.

महेंद्र के अलफाज मेरे लिए हैरानकुन नहीं. लाहौर के जमाने में भी ये लोग मेरी हर अच्छी कोशिश को बुरा-भला कहते आये हैं. अगर तनकीद रचनात्मक ढंग से की जाये तो कौन सिरफिरा है, जो उससे लाभान्वित होने की कोशिश न करे, लेकिन उनके अंदाज में स्पर्धात्मक छेड़छाड़ और जाने क्या-क्या बातें होती हैं. नतीजा यह कि उनकी राय पर मुझे कभी यकीन नहीं बैठता. न उनकी राय मुझमें हौसला पैदा करती है, जो मेरी हर चीज को अच्छा कह देते हैं.

एक बात मैं आप और अपने दूसरे साथियों से कह दूं—मैं खत्म नहीं हुआ. मुझे यकीन है कि मैं लिखूंगा और बेहद लिखूंगा. एक ऐसा मोड़ आया था, जिसमें यारों ने इश्क करना छोड़ दिया, क्या आलम था, लेकिन अब वह अकाल युग खत्म हो गया. 'पहाड़ी कौवा' अभी खत्म नहीं हुआ.

खत्म करने के बाद प्रकाशन के लिए आपको लिखूंगा.

'फनकार' अच्छा निकाला है प्रकाश पंडित ने. नज्म का हिस्सा अच्छा नहीं. 'मेहराब' यों ही जुजिया निगारी (विवरणों का संकलन) है. महेंद्र की कहानी अच्छी थी, लेकिन आखिर में उन्होंने गड़बड़ कर दी है.

जियादा आइंदा

मुखलिस

राजेंद्र सिह बेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुअत्तिली

यह सिर्फ अपने कश्मीर में ही है कि लड़की की इज्जत उतनी समाजी हैसियत नहीं रखती, जितनी कि सियासी. एक हिंदू लड़की किसी मुसलमान लड़के के साथ भागी तो एकाएक हिंदू अल्पसंख्यता को खतरा पैदा हो गया और डेपुटेशन पर डेपुटेशन चीफ मिनिस्टर के पास आने लगे. . .कश्मीर की खूबसूरत वादियों में सियासी आंधी के अनेक आयामों का उद्घाटन करती एक गैरसियासी कहानी—

उस दिन मैं जिस हाउसबोट में ठहरा था, उसका नाम 'सिंफनी' था. मुझे हंसी इसलिए आती है कि सिंफनी अंग्रेजी में नग्मे को कहते हैं. और वह हाउसबोट सिंफनी नग्मा नाम की कोई चीज नहीं थी. टूरिज्म के महकमे के हिसाब से यह बोट तीसरे दर्जे का था. यह बात नहीं कि मैं उससे ऊपर दर्जे का वोट किराये पर लेने की हैसियत नहीं रखता था. किस्सा सिर्फ यह था कि उस साल कश्मीर में टूरिस्ट ही टूट कर पड़ा था और अच्छे दर्जे के सब हाउसबोट पहले आनेवालों और काले बाजारियों ने ले लिये थे. छोटे-छोटे होटल तक सैर-सपाटे वालों से पटे पड़े थे.

यूं झील का पानी गंदला न था. बरसात से इधर तो वह हमेशा नीलाहट लिए रहता था, लेकिन हम्दिया, गुलाम हम्दानी, सिंफनी और पड़ोस के 'फ्लाइंग जैक' और 'पिन अप' के मालिक अंदर का कूड़ा-करकट और गंदगी झील में ही फेंकते और फिर खाना बनाने के सिलसिले में वही पानी इस्तेमाल करने के आदी से हो गये थे. हम हिंदुस्तानी तो खैर लगातार गंदगी में रहने की वजह से कीड़ों-मकोड़ों के अभ्यस्त हो गये हैं, लेकिन सिर्फ जुकाम से ही छुट्टी पा जानेवाले पश्चिमी मुल्कों के टूरिस्ट इन कीड़ों-मकोड़ों को बरदाश्त नहीं कर सकते थे. चूनांचे 'फ्लाइंग जैक' में रहने वाले सिनियोर कारडिरो ने अपने बोट के मालिक गुलाम कादिर के खिलाफ शिकायत कर दी, जिससे उन बोटवालों और हाजी लोगों की नजर में वह और भी बड़ा फरिश्ता हो गया.

फिर यह 'सिंफनी', 'फ्लाइंग जैक' और 'पिन अप' झील में ऐसी जगहों पर खम गड़े थे कि एक तरफ तो सामने की पहाड़ी शंकराचार्य मंजर की खूबसूरती को कत्ल किये देती थी और दूसरी तरफ डल झील और झेलम दरिया के बीच का लॉकिंग सिस्टम जज्बों के सैलाब का गला घोंट देता था. अलबत्ता, सिंफनी की छत से बायीं तरफ दूर हरिमुख से इधर की पहाड़ियों में कभी कोई सुर्ख सफेद पंछी अपने छोटे परों पर तैरता हुआ नीचे की हरी-भरी वादी में गुम होता तो यूं लगता जैसे मेरी रत्ना के चेहरे पर कोई शरारत का ख्याल आया और निकल गया.

यह रत्ना कौन थी?. . . कोई नहीं.

फ्लाइंग जैक का सिनियोर कारडिरो गुआतेमाला से आया था और टूटी-फूटी अमरीकन अंग्रेजी जानता था. वह नाटे कद का आदमी था, जिसका चेहरा कच्चे गोश्त की तरह सुर्ख और फूला हुआ था, जैसा कि ज्यादा शराबनोशी और ऐय्याशी से हो जाता है. उसके पूरे सिर पर बाल नहीं थे, अलबत्ता माथे पर एक छोटा-सा गुफ्फा था, जो सिनियोरिना के साथ लड़ाई के बाद और भी छोटा हो जाता था.

सिनियोरिना कारडिरो एक दुबली-पतली औरत थी, जो हमेशा डांगरी पहने फ्लाइंग जैक में इधर-उधर जाती हुई दिखाई देती थी. अक्सर दिन के वक्त वह खिड़की में औंधी पड़ी झील के पानी में अपनी उंगलियों के केकड़े चलाती रहती और रात में वहीं पड़ी चांद का अक्स देखा करती.

मुझे अंदाजा हुआ ये कि लोग हफ्ते भर से ज्यादा यहां नहीं रहेंगे, क्योंकि रातें धीरे-धीरे अमावस की ओर लपक रही थीं.

सिनियोर कारडिरो क्यों तीसरे दर्जे के हाउसबोट में ठहरा? यह कोई भेदभरी बात थी. सामने बुलेवर्ड पर यूनाइटेड नेशंस के कुछ अफसर अपनी टोपियों पर हल्के नीले रंग की पट्टियां जमाये लौटते हुए दिखाई देते थे. कभी उनमें से किसी की जीप बुलेवर्ड पर हमारे सामने के हिस्से पर रुकती और अक्सर उतरकर किनारे पर से आवाज देता, "सिनियोर, . . . सिनियोर कारडिरो. . . ओ ओ ओ..."

आवाज गूंजती तो यूं मालूम होता जैसे कोई कहे जा रहा है, "रो. . . रो. . . रो. . . रो. . ."

एक दिन ऐसी ही आवाज आयी और मैंने देखा कि सिनियोर पानी से अपनी उंगलियों का केकड़ा निकालकर फ्लाइंग जैक में अंदर की तरफ लपकी. डांगरी में उसके जिस्म का भूतिया ढांचा दिखाई दे रहा था.

मुझे यूं लगा जैसे बुलेवर्ड पर खड़े जनरल को सिनियोर के जवाब की जरूरत ही नहीं. उसने पीठ हमारी तरफ करके शंकराचार्य की पहाड़ी को देखा, जहां कहीं से आईने का अक्स कांप रहा था. अक्स कभी धीरे-धीरे हिलता-कांपता और कभी तेज-तेज. वह बिजली की तरह एक खोह में गुम हो गया और फिर लौटकर पहाड़ी पर फूलों की एक क्यारी को रोशन करने लगा. पोस्त के फूलों की सुर्खी उस रोशनी में एकदम फ्लोरेसेंट हो उठी थी.

जनरल ने मुड़कर फ्लाइंग जैक की तरफ देखा, हाथ उठा टोपी छुई और जैसे सिनियोर को सलाम करता हुआ जीप में बैठकर सरहद पर लगी आग बुझाने के लिए चल दिया.

"अब क्या चीज है, हुआ क्या है?
जबकि तुम बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर ये हंगामा अए-खुदा क्या है?
क्या ?. . . क्या है? ये क्या. . क्या है?"

शहर में हंगामा हो रहा था. एक तरफ से मौलवी फारूक के अनुयायी निकल आये थे और दूसरी तरफ प्रतिनिधियों की भारी तादाद, जो किसी कान्फ्रेंस के सिलसिले में रियासत के दूर-दराज इलाकों, जम्मू की तहसील और किस्तवाड़ की तरफ से आयी थी. उनमें डोगरे थे, फिर गोबर, बरवाले उस्तबालिए. . .

उस भारी भीड़ में कालेज के लड़के, यहां तक कि लड़कियां भी बुरके-बुरके फेंककर शामिल हो गयी थीं. जब इतने सारे लोग एकदम लाल चौक, रेजीडेंसी रोड के नजदीक जमा हो जायें तो तांगे का धुरा टूटना भी झगड़े का बहाना बन सकता है और लड़की की बात तो मत कीजिए, जो अपने वजूद से ही इतनी खस्ता और भुरभुरी होती है, कि हाथ तो एक तरफ, नजर ही उसे बिखेर डालती है. उसे ही नहीं, उस कौम या कौमियत की आबरू को भी, जिसकी पैदावार होने का उसे सम्मान हासिल होता है.

यह मैंने अपने ही मुल्क में देखा है कि लड़की की इज्जत उतनी समाजी हैसियत नहीं रखती, जितनी सियासी. अभी पिछले ही दिनों एक हिंदू लड़की किसी मुसलमान लड़के के साथ भागी थी, जिससे एकाएक हिंदुओं की अल्पसंख्यता को खतरा पैदा हो गया और डेपुटेशन पर डेपुटेशन चीफ मिनिस्टर के पास आने लगे. केंद्रीय अफसर लोग जांच के लिए आने लगे. अल्पसंख्यक तो एक तरफ बहुसंख्यक जीत में भी डर के एहसास से कांप रहे थे, क्योंकि जीत इतनी मुश्किल नहीं, जितना कि उसको बरकरार रखना जोखिम है.

उस दिन वादी के सैकड़ों साल पुराने चिनार खामोश खड़े उस नयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरतें-हाल को देख रहे थे और हवा उनके सरों पर रखी हुई राजतरंगिणी और लिल्ला आरिफा के पन्ने उलट रही थी.

ऐसी हालत में अगर मैं कश्मीर के हुस्न का जिक्र करूं भी तो कैसे? मैं एक हिंदू हूं, पुराना बुतपरस्त, जो दिल्ली के एक गांव में रहता है. यहां कश्मीर की खूबसूरती का जिक्र करता हूं तो मुझे खुद ही यह अहसास होने लगता है जैसे मैं किसी मुसलमान लड़की को छेड़ रहा हूं, जिससे झगड़ा होने का डर है और इधर के बहुसंख्यक गलाघोंटकर मुझे मार देंगे. फिर सोचता हूं डल, गूला और नगरीसीवल कब से मुसलमान हुए, यह सामने की पहाड़ी शंकराचार्य है तो तख्ते सुलेमान भी. इस्लामाबाद है, तो अनंतनाग नाम भी चल रहा है. पटन के पंडित लोग इस वक्त भी बकरे का गोश्त खा रहे हैं. पामपुर के जाफरान का रंग इस्लामी सब्ज क्यों नहीं, इंसानी मेहनत और आस्मानी बरकत, वादी में जो, गेहूं और शाली (चावल के दाने) पैदा करती है, उनका खतना करके क्यों नहीं भेजतीं!

हां, यह सिरफिरेपन, बेअक्ली की बातें हैं, लेकिन इस अक्ल की मुअत्तली ही के सिलसिले में तो आदमी कश्मीर आता है, तहजीब का पूरा शोर, शहरों का कसैला धुआं पीछे छोड़ते हुए. अब अगर वह अकेला और अपने मन के अंधेरे और तनहाई से घबराकर कहीं बाहरी खूबसूरती पर झपट पड़े तो उसमें एक शख्स का कसूर हुआ, पूरी कौम का कैसे हो गया? बात नैतिक और सामाजिक से सियासी कैसे हो गयी?

मुअत्तली. . . आप बच्चे से क्यों खेलते हैं? इसलिए न कि कुछ देर के लिए जिंदगी का व्याकरण भूल सकें? शराब क्यों पीते हैं? इसलिए न कि वजूद में कुछ कम पड़ता है या फिर कुछ ज्यादा हो जाता है. औरत से मुहब्बत क्यों करते हैं? इसीलिए न कि. . . मैं पूछता हूं, बिना इन सब बातों के आप जी सकते हैं?

यह मुअत्तली कश्मीर में देसावर ही से नहीं आती, यहां की अपनी पैदावार भी है. हवाएं और नजारे जिसकी पूरी मदद करते हैं. आदमी मुर्ग कबाब, बल्कि मैं तो कहता हूं, कबाबे मुर्ग हो तो भी उसके बाल और पर लौट आते हैं. बरसों से सोया हुआ हुस्न एकाएक अंगड़ाई लेकर जाग उठता है.

उस दिन जब हम्दिया बाजार से गोश्त लाया तो उसकी हालत ही दूसरी थी, उसके पांव जमीन पर यकीनी अंदाज से न पड़ रहे थे. मालूम होता था जैसे वह बहुत ज्यादा तंबाकू पी गया है या कोई नशा किया है. हो सकता है, वह जैनब से मिला हो. . .

जानिब हमिदिया की माशूका थी और हब्बा कदल के पास अपने पुश्तैनी मकान में रहती थी—एक आदमी, जिसका नाम शायद गुलाम रसूल था, की मार्फत उसके बाप का पैगाम भेजा गया जो थोड़ी ले-दे के बाद मंजूर हो गया. फिर, हमेशा की तरह, बंद नोट, चीनी से बना हुआ एक बड़ा-सा थाल बांटा गया. शॉल दी गयी. खुदा और रसूल हुआ. मगर निशानी की तारीख पहुंचते पहुंचते सब कबाड़ा हो गया.

बात यह हुई कि बीच में जैनब का ममेरा भाई कूद पड़ा, जो यहीं सामने के होटल में बैरागीरी करता था. गरीबी और तंगी उससे गले मिली थीं, मगर शरीयत के हिसाब से उसका जैनब पर हक ज्यादा था. चूंकि कस्में ली जा चुकी थीं, शीरनी बंट चुकी थी, इसलिए मामला काजी के पास पहुंचा.

दोनों पार्टियों में सुलह कराने के सिलसिले में एक तीसरी ही बात हुई, जिसका जिक्र करते हुए भी घिन आती है. . . देखिए आप जिद न कीजिए . . . ऐसी ही बात है तो फिर सुनिए. . अट्ठारह-उन्नीस बरस की जैनब अपने मां-बाप की एक ही औलाद थी, उनकी तमाम जायदाद की वारिस, जो कुल मिलकार दो मकानों और शालरेंग के पास बीसेक बीघा जमीन थी और जो चोरी-छिपे बंटवारी में दी हुई थी.

जैनब हम्दिया के लिए गोश्ताबा हो गयी—दूध में पका हुआ गोश्त, जो एक तरफ तो बहुत ही लजीज होता है और दूसरी तरफ कश्मीरी खाने का आखिरी हिस्सा. जब उसे मेहमान के सामने पेश किया जाता है तो वह समझ जाता है कि इसके बाद और कुछ नहीं आयेगा. सुलह कराने वाले काजी साहब ने एक दिन उस खाने को देख लिया, जबकि वह ढंका हुआ नहीं था और . . .

अब जैनब को न हमिदिया कबूल करता है और न उसका ममेरा भाई, मम्मा—हां, जब जमीन-जायदाद की वजह से मम्मा मान जाता है तो हमिदिया तन के खड़ा हो जाता है और कानून के सब कागज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वगैरह निकाल लाता है, और अगर हमिदिया उसे निकाह में लेने पर राजी हो जाता है तो मम्मा अपने पुश्तैनी हक की अर्जी दे देता है. काजी मोहल्ले से निकाला जा चुका है और जैनब मकान के बुखारचे में बैठी एक ऐसी शाल पर बारीक काम कर रही है, जिसका कोई गाहक नहीं. . .

मैंने हम्दिया को समझाने की कोशिश की, "देखो हम्दिया, इसमें उस गरीब जैनब का तो कोई कसूर नहीं. . ."

हम्दिया ने मेरी तरफ यूं देखा जैसे मैं लातीनी में बात कर रहा हूं, "आप नहीं जानते महाराजा?"

"मैं?. . . मैं क्या नहीं जानता?"

"आज का कत्ल?"

"कत्ल? किसका? किसने? कौन?" मैंने एकदम उठते हुए कहा. . मेज से नीचे अखरोट की लकड़ी से बनी हुई कुरसी तड़ख गयी. "क्या, जैनब. . .?"

"जैनब नहीं, एक आदमी सामने होटल में ठहरा था."

"फिर?"

"फिर?"

"उसका कटा हुआ सिर वहां चारचिनारी में मिला और धड़ होटल की टट्टी में."

"नहीं."

"हां महाराज."

मैंने घूमकर दूर बाईं ओर चारचिनारी की तरफ देखा, जो झील डल के ठीक बीच एक छोटे से टापू की शक्ल में थी और जिस पर चिनार के चार पेड़ खड़े थे.

दिन के वक्त लोग वहां पिकनिक करते और चांदनी रातों में रोमांटिक जोड़े दूध और पानी के छींटे उड़ाते. . .वहां चारचिनारी में कटा हुआ सिर. . . अब वह जगह मेरे लिए कभी रूमानियत न रखेगी, हालांकि मेरा इरादा था कि एक दिन. . .

सामने बुलेवर्ड पर जीप नीला-सफेद झंडा लहराते हुए निकल गयी. फिर एक टूरिस्ट बस गुजरी, जो शायद मर्द-औरतों को निशात, शालीमार की तरफ ले जा रही थी. एक तांगा रुका और उसमें से सैर करने वाले कुछ लोग निकले और सिफनी के सामने वाले अड्डे की तरफ मुड़े.

उन्हें देखते ही शिकारेवालों ने अपने-अपने चप्पू चलाने शुरू कर दिये और किश्तियों को किनारे के दलदल और पत्थरों में यूं डुबो दिया जैसे बड़े लोग खाना खाने के बाद दांत कुरेदने की तीली फिर से उसके स्टैंड में खुबो देते हैं. शिकारेवाले जिंदगी और मौत से बेखबर गाहकों के लिए झपट रहे थे. एक दूसरे से लड़ रहे थे. गालियां बक रहे थे. . .दलसा. हटियार मुजाना! झिट्स. . . !"

"मारा गया आदमी कौन था?" मैंने हमिदिया से पूछा.

"सुनते हैं आंध्र का था."

"हिंदू होगा?"

"राजू नाम था. हो सकता है, मिराजदीन हो. . ."

"नहीं."

मेरी नाउम्मीदी बढ़ गयी, "नहीं वह हिंदू होगा, जरूर हिंदू होगा." मैंने हुंकारा.

हमिदिया और मैं, दोनों ऐसे आदमी थे जो हालात में बद से पहले बदतरीन को देख लेते हैं. उसके खयाल ही से डरते, कंपकपाते हैं लेकिन आखिर इसी में सनसनी भरी तसल्ली पाते हैं. यह चारचिनारी, ... मैं तो कभी रत्ना को वहां न ले जा सकूं. . .

रत्ना कोई नहीं तो क्या?. . . कभी तो होगी. . यह मुल्क कश्मीर जिसके बारे में कुछ कहते ही उसका हुस्न कम हो जायेगा या मेरी मां के सीधे-सादे लफ्जों में—इतना खूबसूरत जितना कि कोई झूठ बोले. . . और उसमें एक कटा हुआ सिर, जैसे कि किसी शरीफ घराने की औरत ने कोई निहायत ही गलीज गाली बक दी.

तभी मुझे कुछ याद आया और मैंने हमिदिया से पूछा, "किसने किया यह कत्ल? क्यों किया?"

हमिदिया ने कोई जवाब नहीं दिया.

"क्या किसी लड़की की बात है?" मैंने पूछा. हमिदिया ने 'हां' में सिर हिला दिया.

"मुसलमान लड़की?"

हमिदिया ने फिर कोई जवाब नहीं दिया, जिसका मतलब था—जरूर वह मुसलमान होगी. अब यहां आटे में नमक के बराबर हिंदू कैसे बचेंगे? मैं ही बेवकूफ हूं, जो वहां की बहुत ही बुरी हालत को देखते हुए भी चला आया.

मान लो दंगा न भी हो, तो हो सकता है दुश्मन गुलमर्ग से होता हुआ बड़गाम और अनंतनाग या इस्लामाबाद की तरफ फैल जाये और वतन को भागने की एक ही सड़क से काट दे. हवाई जहाज से कितने लोग जा सकेंगे? मगर नहीं, फोन के जियाले भी तो हैं जो ओलों और बर्फ के बीच में डटे हुए सरहदों की हिफाजत कर रहे हैं.

बहुत कुरेदने पर मुझे पता चला कि मृतक राजू की बीमारी, अक्ल की मुअत्तली, एक खतरनाक सूरत अख्तियार कर गयी थी. तीसरे दर्जे की टी.बी. या कैंसर की तरह तवायफों का बाजार—ताशादान तो कानूनन बंद था, इसलिए पैरा उसे अपनी पहचान की किसी धंधेवाली के पास ले गया, जहां उसने जेब से नोट निकाले, जो गिनती में तीन हजार के करीब थे और उस बैरे ने देख लिये. फिर जब वह अपने होटल को लौटकर आया तो वही धड़ होटल में और सर चार-चिनारी में. . . एकाएक मुझे एक खयाल आया और मैंने हमिदिया से पूछा, "कौन था, कौन था यह बैरा?"

हमिदिया ने हिचकिचाते हुए कहा, "मम्मा."

"कहां ले गया था उसे?"

अब हमिदिया के होंठ भी कांप रहे थे.

यही तो है न कश्मीर, जहां की बदसूरत से बदसूरत चीज भी एक खूबसूरत पृष्ठभूमि लिये होती है. थाना भी एक पहाड़ी की गोद में था, जहां गुलाब की क्यारियों के बीच एक छोटा-सा रास्ता बल खाता हुआ ऊपर-ही-ऊपर जाता नजर आता था. मैं अब तक इतना डर चुका था कि खतरे के बीच में पहुंच गया. . यह देखने से दंग होता या नहीं? इंसान का कटा हुआ सिर कैसा दिखाई देता है?"

इंस्पेक्टर गुलाम यजदानी छः फुट का एक लचकीला मगर मजबूत आदमी था. उसकी नाक बहुत तीखी और इंसानी थी और किनारों से एकदम सुर्ख और भीगी हुई दिखाई देती थी. वह मुझे तपाक से मिला, जिससे इस बात की ताईद हुई कि टूरिस्ट लोग कैसे भी हों, साफ दिल से पेश आना हर कश्मीरी अपना फर्ज समझता है.

राजू का सिर एक नक्काशीदार थाली में रखा था. उसकी आंखें खुली थीं. . . पथराई हुई, मुरदा आंखें, जिनमें किसी चीज का अक्स नहीं पड़ता. सपाट, काले रंग के चेहरे की वजह से आंखों की सफेदी और भी सफेद दिख रही थी. डोरों तक से खून निचुड़ चुका था.

यह मां का लाल, कश्मीर में सैर की गरज से आया था. जब घर से चला होगा तो उसे क्या पता होगा?. . . सनसनाते हुए तार उसकी कत्ल की खबर उसके सगे संबंधियों तक पहुंचा चुके होंगे. . . तभी मैंने देखा कि सिर को देखने के लिए जमा लोगों में एक आदमी डरकर पीछे हट गया, फिर दूसरा हट गया.

मुझे इसकी वजह समझ में न आयी. इंस्पेक्टर यजदानी मुस्करा रहा था. ठीक ही था. पुलिसवालों के लिए यह रोजमर्रा है. उसने हंसते हुए मारे गये आदमी का मुंह मेरी तरफ कर दिया. अब वह कटा हुआ सिर मुझे घूर रहा था. मुझे अचानक यों लगा, जैसे वह कह रहा है, "मेरा कत्ल तुमने किया है, तुमने. . . . !"

मैं एकदम पीछे हटा और उस सभ्य इंस्पेक्टर को सलाम-दुआ किये बिना वहां से भाग आया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कॉफी हाउस में कॉफी पी. रेडियो और उसकी ड्रामा यूनिट के कुछ लोगों से मिला. कुछ जर्नलिस्टों और प्रोफेसरों से बात की. अहदू के यहां खाना खाया, हालांकि खाना मैं पहले भी सिफनी में खा चुका था. फिर मैं बांध पर टहलने के लिए निकल गया. यहां कई रत्नाएं शोख और भड़कीले कपड़े पहने घूम रही थीं. उनमें से एक लाल रंग का स्वेटर पहने घूम रही थी. मैंने उसे देखा और इंकार में सिर हिला दिया . . . इंसान कितना ही सिर पटके, खून के रंग से ज्यादा सुर्ख रंग नहीं पैदा कर सकता. फिर डाकखाने जाकर देखा, मेरे नाम कोई खत आया है या नहीं? . . . किसी के बेटे के मुंडन का दावतनामा था, जो रिडायरेक्टर होकर यहां पहुंच गया. एक बात मैंने देखी कि मैं जहां भी जाता था, लोग उसी कत्ल की बातें करते थे और उसके बाद मुझे देख लेते थे, जैसे . . .

सिनियोर कारडिरो ने कुछ और भी मेहमान बुला रखे थे. उनमें से कुछ यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे और अलीगढ़ से आये थे, लड़कों को उर्दू पढ़ाने, क्योंकि कश्मीर की सरकारी जबान उर्दू है, मादरी चाहे कुछ भी हो. कुछ सियासी किस्म के लोग भी थे, जिनमें ज्यादा बाहर से आये थे. एक रियासत की असेंबली के स्पीकर का चमचा था, जो अपने तरीके से कश्मीर का एक छोटा-मोटा लीडर था. एक तीस-बत्तीस साल की सलोनी-सी हिंदू औरत थी, मिसेज दास, जिसका पता न चलता था कि पंजाबिन है या बंगालिन.

यह नहीं कि मिस्टर दास नहीं थे. वह भी थे लेकिन सिर्फ थे. मिसेज दास और सिनियोरिता मिलकर एक ऐसी जबान में बातें कर रही थीं, जो शब्दों से अपरिचित होती है. वहां का ड्राइंगरूम हमारे सिफनी के ड्राइंगरूम से थोड़ा बड़ा था और उसी में व्हिस्की के साथ खानेपीने की चीजें दी जा रही थीं.

क्या सिनियोरिता एक रूसी औरत थी, जो अपने मुल्क से भागकर अमरीका, गुआटेमाला चली गयी थी या सिनियोर? मगर यह सब व्यक्तिगत सवाल थे, जिन्हें मैं पूछ नहीं सकता था. अलबत्ता एक और बात, जिसने मुझे हैरान कर दिया, वह यह थी कि सिनियोर कश्मीर के फूल-पत्तों, कीड़े-मकोड़ों, मछलियों और जानवरों के बारे में किसी भी कश्मीरी से ज्यादा जानता था. मजे की बात यह थी कि एक गांव (कि वह कहां पर बसा है) के सिलसिले में चमचा साहब से बहस हो गयी.

सिनियोर कह रहा था कि वह गांव उड़ी, चिकोठी के पास झेलम दरिया के दायें किनारे पर बसा है और चमचा साहब के मुताबिक बायें पर. आखिर जांच-पड़ताल की गयी. नक्शे मंगवाये गये और पता चला कि सिनियोर कारडिरो ठीक कहता है. तब मेरे दिल ने मुझसे बीसों सवाल कर डाले. क्या हाकिम लोग जानते हैं कि यह आदमी कौन है? कहां से आया है? कश्मीर के बारे में इतनी जानकारी रखने की क्या वजह? एक और बात, कारडिरो ने नीली पट्टी वाले जनरल को क्यों नहीं बुलाया? क्या इसलिए कि वे लोग सिर्फ आईने की ही जबान समझते हैं?

फिर वही कटा हुआ सिर, जिसकी याद कश्मीर की सियासी विवाद ने भुला दी थी. सब इसी इत्मीनान के साथ कि शहर में दंगा नहीं हुआ, कश्मीर के भूत और भविष्य के बारे में ले-दे कर रहे थे. एक कह रहा था जनमत-संग्रह से कश्मीर पाकिस्तान को जाना चाहिए. दूसरा बरस पड़ा, "इसमें मत-संग्रह का सवाल है या संविधान का?" . . . मिसेज दास ने एक और ही बात शुरू कर दी, "क्यों छोड़ दें? हम कश्मीर क्यों छोड़ दें? क्यों बेकार जाने दें उन करोड़ों, अरबों को, जो हमने यहां के डिफेंस के लिए खर्च किये हैं?" मिसेज दास यों जाहिर कर रही थीं, जैसे किसी ने उनके पर्स से पैसे निकालकर उसे खाली कर दिया है. उनकी यह बात औरत होने के नाते माफ कर दी गयी . . .

मिस्टर दास, जो अपने कोटे से ज्यादा पी गये थे हुंकार उठे, "अंजू तुम औरतें सिर्फ एक ही काम के लिए बनी हो . . . !"

मेरी पहली कहानी

मैंने अपनी पहली कहानी पंजाबी में लिखी थी, जिसका नाम था 'दुःख-सुख', और वह उर्दू लिपि में छपने वाली पत्रिका 'सारंग' में छपी थी.

उर्दू में मैंने अपनी पहली कहानी, 'महारानी का तोहफ़ा' सन् 1936 में लिखी थी, जो 'अदबी दुनिया' के सालाना अंक में छपी थी और उसे साल की सबसे बढ़िया कहानी का इनाम भी मिला था. लेकिन उस कहानी को मैंने अपने किसी संग्रह में शामिल नहीं किया. यह इस बात का सबूत है कि मेरे होश-हवास शुरू से ही कायम थे. और मुझमें और आलोचकों में समझ का यह फर्क तभी से कायम है. जो रचना उनकी नजर में अच्छी है, जरूरी नहीं कि मैं भी उसे अच्छी समझूं. और उसके उलट भी मुमकिन है. □

प्रस्तुति : सुखबीर

इस पर जब सिनियोरिता ने भी सदमे से छाती पर हाथ रखकर 'हो' कहा तो मिस्टर दास ने मुस्कराकर उसकी तरफ देखा और बोला, "प्यार के लिए!" फिर ज्यादा पिये होने की वजह से वह प्यार लफ्ज का हर एक गैरमुल्की जबान में अनुवाद करने लगा.

सिनियोरिता छाती पर हाथ रखे फ्रांसीसी लहजे में कह रही थी, "फ्यूदल, मिस्टर दास, वेरी फ्यूदल . . ." और मिसेज दास का चेहरा गम व गुस्से से लाल हो रहा था. मालूम होता था कि वह घर पहुंचकर मिस्टर दास की खूब पिटाई करेगी.

बातें चल रही थीं—एक कलमा, एक कुरान, एक नबी . . . और आपका सब प्रोपेगेंडा बेकार . . . क्यों न कश्मीरी लोग हिंदुस्तान को गाली दें? वह जान गये हैं न, गाली देंगे, तो पैसा मिलेगा . . . यह सब गलती पंडित जी की है . . . शुरू में ही जनरलों के हाथ न रोकते तो कभी का फैसला हो चुका होता . . . आर्टिकल 370 . . . पाकिस्तान से आये हुये सभी रिफ्यूजियों को यहां कश्मीर में बसा देते तो . . . सरदार पटेल न होते तो हिंदुस्तान कभी का टूट चुका होता . . .

"वह तो बादशाह होने का ख्वाब देख रहे थे, शेख साहब . . ."

"अजी हटाओ, बख्शी साहब ने डंडे से हुकूमत की. कश्मीरी एक ही जबान समझता है और वह है डर की जबान. ऐसे ही तो नहीं इतिहास में कश्मीरी को जुल्मपरस्त कहा गया? सादिक साहब ठीक ही तो कहते हैं, "जिस चीज को दबाया जायेगा, वह और उभरेगी. क्यों न उसे सबके सामने लाकर खत्म कर दिया जाय? फिर प्रताप सिंह, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, बेकफील्ड, मलिका पुखराज, हरि सिंह . . . हर तरह की बातें हो रही थीं. खतरनाक और खतरे से खाली, हर एक शख्स यह समझ रहा था कि कश्मीर की कुल बीमारियों का इलाज उसके पास है. उन सब में से सिर्फ गुलाम रजा चुप था. जब भी कोई बात करता तो वह अपना सिर उसकी तरफ मोड़ लेता और खाली-सूनी निगाहों से उसकी तरफ देखने लगता. मैंने बात शुरू की, मेरा खयाल है . . .

तभी गुलाम रजा ने अपनी नजरें मेरे चेहरे पर गाड़ दीं. और मैं भूल ही गया, मैं क्या बड़ी बात कहने जा रहा था? जैसे प्रोफेसर कौल ने मेरी बात काटी. रजा ने उसकी तरफ देखना शुरू कर दिया. वैसे ही खामोश, वैसे ही सर्द, वैसे ही ठहमे हुए निर्विकार अंदाज से . . . एक ठंडा पसीना मेरी परेशानी पर दौड़ गया. जी चाहा कि उठूं और एकदम चीखकर कहूं, "बोलो . . . रजा, बोलो, तुम भी तो कुछ बोलो . . ."

अगले ही रोज मैं दिल्ली में था, जहां मुझे कोई नहीं देखता. □

अनुवाद : आभा दयाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साहित्यकार की मौत डबल ट्रैजिडी होती है

ख्वाजा अहमद अब्बास

"देखो, इस नौजवान लेखक को. तुमसे कम पढ़ा है, मगर उसने पंजाब के सब महान लेखकों को अपनी कलम से हरा दिया है. ये आगे चलकर बहुत नाम पैदा करेगा." बेदी साहब के विषय में ये भविष्यवाणी किसने की, कब की और क्यों की? पढ़िए बेदी साहब के समकालीन लेखक-फिल्मकार का बयान—

राजेंद्रसिंह बेदी से मेरी पहली, मगर सरसरी मुलाकात लाहौर में हुई थी. उस समय वो भी नौजवान थे और मैं भी. वो भी लोकप्रिय 'बेदी साहब' नहीं बने थे और मैं भी अनजाना ही था. मगर मैं बेदी साहब की साहित्यक स्थिति से परिचित था. इसलिए मुझे याद है कि मैंने उनको उनके कहानी-संग्रह 'दाना-व-दाम' पर बधाई दी, क्योंकि यह कथा-संग्रह मैंने पढ़ा था, तब मेरे तायाजाद भाई ख्वाजा गुलामुस्सैयदैन उस कमेटी के मेंबर थे, जिसने इस किताब के लिए कई हजार रुपये का इनाम पंजाब गवर्नमेंट की तरफ से दिया था, उस समय भाईजान ने इन कहानियों की बहुत प्रशंसा की थी. मैंने उस साल बी.ए. का इम्तहान दिया था. भाईजान के ये शब्द आज तक याद हैं कि "देखो, इस नौजवान लेखक को. तुमसे कम पढ़ा है, मगर उसने पंजाब के सब महान लेखकों को अपनी कलम से हरा दिया है. ये आगे चलकर बहुत नाम पैदा करेगा. तुम्हें भी इसकी तरह उर्दू की कहानियां लिखनी चाहिए."

ये सन् 1948 का जमाना था. कश्मीर कबाइलियों के हमलों का शिकार था. ये कश्मीर के इतिहास में क्रांतिकारी दौर था. रोज कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस की शहरी फौज से कबाइलियों का मुकाबला रहता था. हालत नाजुक थी. प्रगतिशील लेखक, जो देश के कोने-कोने से आये थे, उनमें से अधिकतर बेदी साहब को अपना गुरु मानते थे. हर शाम एक महफिल होती थी, जहां प्रगतिशील लेखक अपनी रचनाएं सुनाया करते थे.

मेरा जी चाहा कि मैं भी उस महफिल में कुछ पढ़ूं, मगर उस वक्त तक कोई खास चीज मैंने लिखी न थी. सिवाय एक कहानी 'अबाबील' के, जो उस समय मेरे पास न थी. इसलिए एक दिन सुबह से अपना कमरा बंद करके मैंने एक कहानी अपने खानदानी अनुभव की बुनियाद पर लिखी. ये एक सिख के बारे में थी, जो बूढ़ा होने पर भी पड़ोसी मुसलमान के खानदान की जान और इज्जत बचाता है. हालांकि इस सब में उसकी जान चली जाती है. उसका असर मुसलमान खानदान पर भी पड़ता है और वो अपनी सांप्रदायिक विचार-धारा को छोड़ देते हैं. आखिर में वो सांप्रदायिक मुसलमान (जो कहानी बयान कर रहा है) अपनी कलम की नोक से कहता है, "ये सरदार जी नहीं मर रहे थे. ये मैं मर रहा था. पुराना मैं." यह कहानी रात तक खत्म करके मैं दूसरे गेस्ट हाउस में गया, जहां मीटिंग खत्म होने वाली थी. मैंने कहा, "मैं अभी-अभी एक नयी कहानी लिखकर लाया हूं." सबने कहा, "सुनाओ, यार!"

कोई पंद्रह-बीस आदमी जमा थे. उनमें से अधिकतर प्रगतिशील लेखक थे, जो दिल्ली और इलाहाबाद से आये हुए थे. उनमें दो लेखक सिख थे और उनके अलावा कुछ नौजवान सिख फौजी अफसर भी थे. जब उन सबने अनुरोध किया तो मैंने कहानी सुनाना शुरू कर दिया. मैं कहानी पढ़ता जा रहा था. जब कहानी का क्लाइमेक्स आया तो बेदी साहब की आंखों में आंसू झलक रहे थे. कहानी खत्म होने पर उन्होंने मुझे गले से लगा लिया. कहने लगे, "कहानी तो आपने बेहतरीन लिखी है. इसे 'अदबे-लतीफ़' में भेज दीजिए, ताकि पाकिस्तानियों को भी मालूम हो कि ऐसे भी सरदारजी होते हैं."

बेदी साहब के मशवरे से मैंने वो कहानी 'अदबे-लतीफ़' को भेज दी.

महीने गुजरते गये. आठ महीने बाद मेरा फिर कश्मीर आना हुआ. पंडित जवहारलाल नेहरू ने उस समय मुझे वहां भेजा था, काउंटर प्रोपेगंडा करने के लिए. पाकिस्तानी रेडियो से जो भी झूठ-सच ब्रॉडकास्ट होता था, उसका हर रोज रेडियो पर ही जवाब देना मेरा काम था. बेदी साहब के बारे में मालूम हुआ कि वो जम्मू में हैं. और वहां उन्होंने जम्मू रेडियो स्टेशन का चार्ज ले लिया है.

बंबई में पता चला कि बेदी साहब जम्मू रेडियो से बंबई पहुंच गये हैं. किसी पिक्चर का स्क्रीनप्ले और संवाद लिख रहे हैं. अब तो बेदी साहब से अक्सर मुलाकात होने लगी.

बहुत जल्दी बेदी साहब फिल्म इंडस्ट्री में मशहूर हो गये. 'मिर्जा गालिब' को प्रेसीडेंट गोल्ड मेडल मिला तो उनके संवादों के कारण. 'देवदास' में बिमल राय ने संवादों की जिम्मेदारी बेदी साहब पर रख दी और बेदी साहब के संवादों की वजह से इस पिक्चर की धूम मच गयी.

उन दिनों मेरे यहां प्रगतिशील लेखकों की मीटिंग हर इतवार को होती थी. उसमें बेदी साहब भी अक्सर शरीक होते थे. उस दौरान उनके कई कहानी संग्रह छप चुके थे. एक रेडियो ड्रामों का भी संग्रह छप चुका था. उसका नाम था, 'बेजान चीजें', मगर उनका शाहकार था 'एक चादर मैली सी', जिसको लघु-उपन्यास या लंबी कहानी कहा जा सकता था. जब मेरे यहां उन्होंने पहली बार उसको सुनाया तो हम उनके साहित्यिक रोब पर मोहित थे.

मैंने जोश में आकर कहा कि "लघु उपन्यास की श्रेणी में ये इतना बड़ा साहित्यिक कारनामा है कि हेमिंग्वे के 'ओल्ड मैन एंड द सी' की याद दिलाता है. इस लघु उपन्यास के लिए बेदी साहब को भी नोबेल प्राइज़ मिलना चाहिए."

बेदी साहब अपनी पत्नी और लड़के की मृत्यु के बाद बहुत भावुक हो गये थे. किस्मत ने उनसे न जाने क्यों दगा की. और सालों वो खुद लकवे से पीड़ित रहे थे. अस्पताल में उनसे मिलने गया तो उन्होंने ऐसी बातें कीं कि मेरा भी दिल बैठ गया. मगर उनके अंदर बड़ी ताकत थी, जिसकी सहायता से उन्होंने इतने बड़े भारी गम उठाये, फिर भी जिंदा रहे. मगर उनको हमेशा ये अफसोस रहता था कि वो अब कलम नहीं चला सकते—इस दुख को लेकर वो इस दुनिया से चल बसे.

उस कलम से न जाने वो क्या-क्या शाहकार लिखना चाहते थे. एक साहित्यकार की मौत डबल ट्रेजेडी होती है.

एक तो लेखक की मौत. और साथ में उस साहित्य की मौत, जो वो लिखता अगर जीवन उसको मिला होता. बेदी साहब की मौत भी इसी प्रकार हम लोगों के लिए डबल ट्रेजेडी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबाद के पंडों का जिक्र तो प्रायः होता रहता है, पर नाइयों का न के बराबर, जबकि संगम-स्थल पर, राज्य इन्हीं 'राजाओं' का हुआ करता है, बेदीजी समस्याओं को स्थान-विशेष के परिवेश में ढालकर रेखांकित करने में इतने माहिर हैं कि यह कहानी पढ़ते हुए आपको लगेगा कि गंगा-यमुना की मिलन-स्थली के किनारे डेरा डाले हज्जामों के हुजूम में कोई और नहीं, आप खुब फंस गये हैं! . . .

हज्जाम इलाहाबाद के

मैं जहां पर खड़ा हूं, यहां से नजारा बहुत खूबसूरत है. यह गंदली गंगा, वह नीली यमुना और बीच में कहीं सरस्वती माई है, जो आज तक किसी को नजर नहीं आयी है. हम इन तीनों दरियाओं को 'त्रिवेणी' कहते हैं और जी में आये तो इनके मिलाप के कारण इसे 'संगम' भी कह डालते हैं, मूड-मूड की बात है.

यह संगम यों तो और भी बहुत काम आता है, लेकिन किसी मरे हुए लीडर की हड्डियां बहाने के लिए बहुत ही अच्छा है. यह किला जो आप देख रहे हैं, मुगल सम्राट अकबर ने बनवाया था. उसकी निगाह कितनी दूरदर्शी थी, मानो वह सदियों पहले जानता था कि चीन की तरफ से हमला होगा तो यहां पहुंचते-पहुंचते तो रुक ही जायेगा. कुछ दरिया रोक लेंगे, रहा-सहा यह किला रोक लेगा. यही वजह है कि यमुना का पानी आज तक उस किले के पैर धो-धोकर पीता है.

मैं. . .मुझे इलाहाबाद का ही समझो. यों मैं बेलाटकई का रहनेवाला हूं, जो यहां से पचास-साठ मील परे एक छोटा-सा गांव है. बरसों पहले एक अहीर बूढ़े ने बैठे-बैठे मनों के मन, सन बट डाली. सैंकड़ों रुपये बनाये, लेकिन सबके सब मेरी पढ़ाई में डुबो दिये. खुद तो अंधा हो गया, पर मुझे दिखने लगा. यह काला अक्षर, जो हमारे देश के बहुत-से लोगों को भैंस बराबर लगता है, मुझे भूरी पुड़िया नजर आता है.

मैं, इस उलटी तरफ बमरोली के हवाई अड्डे पर क्लर्की करता हूं. दस बजे मुझे दफ्तर पहुंचना है. लेट हो गया तो मेरा सेक्शन-इंचार्ज बहुत नाराज होगा. वह बेहद नर्वस आदमी है . . . और ब्लडप्रेशर का मरीज. मुझे अपना तो कुछ नहीं; अलबत्ता मुझे गाली देते हुए वह कांपा, मुंह से झाग निकला और गिर गया तो फिर. . . मेरा क्या होगा? खैर, कोई बात नहीं. अभी बहुत वक्त है. फिर हज्जाम लोकपति के ग्राहक भी धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं.

अब लोकपति ज्यादती कर रहा है. देखिए, मुझे अधमुंडा छोड़कर उसने एक अन्य ग्राहक पकड़ लिया. मैं उसकी तरफ नजरों के हाथ जोड़ते हुए कहता हूं, "लोकपति! . . . मेरी हालत पर तरस खाओ."

"अभी लो बबवा." लोकपति कहता है, "अभी पट से सब सफाचट हुआ जाता है." और अपने उस्तरे से वह ग्राहक के चेहरे पर दो-एक खूबसूरत से खत बना देता है. तभी वह एक और ग्राहक को पकड़ लेता है, जो मेरी तरह चिल्लाता है, "मुझे दफ्तर जाना है."

"सभों को जाना है बबवा, सभी को जाना है." लोकपति की आवाज में हार से मिली-जुली, एक दार्शनिक जीत है, जिसकी बुनियाद हमारे सदियों के पुराने ग्रंथों और शास्त्रों पर कायम है. लगता है, इस समय वह मेरे दफ्तर की नहीं, भगवान के घर की बात कर रहा है!

सवा आठ हो गये. . . जिंदगी बीती जा रही है. दफ्तर बीता जा रहा है. . यहां से घर, घर से दफ्तर, दफ्तर से श्मशान. . . बीच में अजल ही से थकी-हारी बीवी से झपट. . मार के बजाय खाना खाना. . खाना भी वह जो पुकार-पुकारकर कह रहा है, खा. . . ना. . . खा. . . ना! . .

सिवाय गोद के बच्चे के बाकी के सब या तो स्कूल जा चुके होंगे और या बाहर मिट्टी में ख्वार हो रहे होंगे. मैं तो कहता हूं, ख्वार ही हो जायें तो अच्छा है! . . अरे हां, एक बात तो आप को बतायी ही नहीं. . मैं जवाहर नगर में रहता हूं, जिसे बने हुए बहुत अरसा नहीं हुआ. इसलिए सारे का सारा नगर धूल और मिट्टी से अटा है. मैं मिट्टी को बहुत पसंद करता हूं. एक तो इसलिए कि मेरा और आपका सबका खमीर मिट्टी से उठाया गया है. और दूसरे इसलिए कि जब तक किसी बच्चे को मिट्टी का चुंबन न मिले. वह पनपता ही नहीं. बीस-बीस रुपया पानेवाले, ट्यूशनों पर जीनेवाले स्कूल के टीचर इस बात के महत्त्व को क्या समझें? जरा किसी बच्चे के कपड़ों पर मिट्टी देखी, उलटा मां के पास भेज दिया, जो पहले ही गर्भवती है. औरतों की जबान में—'उसकी वह तो पाजामें से भी छू जाये, तो पेट हो जाता है.'

नीचे किनारा भी भुरभुरा है या शायद दफ्तर से लेट हो जाने का डर है, जिसके कारण जमीन पांव तले सरकती हुई नजर आती है. लगता है जैसे बरसों पहले कुंभ के मेले पर जो सैंकड़ों-हजारों लोग भीड़ में दब गये थे, उनमें से कोई बच गया और अब मनों मिट्टी को सिर पर से हटाते हुए बाहर आने की कोशिश कर रहा है.

लोकपति का नया ग्राहक चिल्ला रहा है. . बात यह है कि इस नये ग्राहक की हजामत शुरू करके, उसके चेहरे पर तीन-चार खूबसूरत से खत लगाकर, लोकपति ने उस गरीब को भी बीच ही में छोड़ दिया है और एक नये ग्राहक को पकड़ लिया है. अब वह पहला ग्राहक लोकपति से लड़ रहा है, उसे गाली दे रहा है. . .अरे, यह क्या! दुहाई लाट साहब की. . . पहला ग्राहक चुपके-से चल दिया. . . वह मेरी तरफ आ रहा है.

मैं. . . उसे जानता हूं, "उग्र? . . . उग्रसेन!"

"हां जलतोरी! तू यहां कैसे?" वह मुझे देखते हुए कहता है. . . यों तो मेरा नाम बधान चंद है, लेकिन मेरे शाकाहारी होने के कारण वह सदा मुझे 'जलतोरी' ही कहकर पुकारता है और मैं भी उसे नहीं बताता कि जलतोरी असल में मछली को कहते हैं, जो मांस से बनी होती है, अगर राहू और कतला हो तो उसमें सिर्फ नाम के लिए रीढ़ की हड्डी होती है, और अगर कहीं मेरी तरह की ट्राउट हो तो रीढ़ की हड्डी होती ही नहीं. मुझे 'जलतोरी' पुकारने का एक अन्य कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मी था. पिछले चुनाव में मैंने कांग्रेस को वोट दिया था. आज तो वह लोकपति पर नाराज था. वरना सदा वह मुझे मां बहन की यह मोटी-मोटी गालियां दिया करता है. मेरा बड़ा मित्र है.

मैं कहता हूं, "भाई मैं तो स्नान करने आया था. सोचा, हजामत ही क्यों न बनवाता जाऊं? अपना उस्तरा जरा कुंद हो गया. . . कोई सिल्ली ही नहीं मिलती उसे लगाने. . . तेज करने के लिए."

"तुम भी सेफ्टी इस्तेमाल नहीं करते.? उग्र मुझसे पूछता है.

"आं हां. . ." मैं कहता हूं, "सेफ्टी के साथ मजा नहीं आता."

"तुफ!" उग्र सिर हिलाते हुए कहता है, "हम जैसे अवैज्ञानिक लोगों ही की वजह ही से यह होता है कि इधर बीवियों को और उधर देश भर को मुसीबत पड़ी हुई है. ख्वाहमख्वाह की दिन-दूनी रात चौगुनी तरक्की होती जा रही है."

"तो फिर क्या करना चाहिए?"

"तुम्हारे और मेरे जैसे लोगों को खस्सी कर देना चाहिए. . . इससे तो अच्छा है, हजामत के लिए वहां सैलून चले जाया करो."

"न भैया," मैं कहता हूं, "सैलून महंगा पड़ता है. घर ही अच्छा है. तू आज इनके चक्कर में कैसे पड़ गया?"

"क्या बताऊं यार?" उग्र दाढ़ी के अनकटे हिस्से पर हाथ फेरते हुए कहता है, "भयोनाथ से मेरे मौसा दीनानाथ आये थे. कहने लगे कि संगम पर नहायेंगे. मैंने कहा, 'नहाइए, मेरा क्या जाता है? जब तक मैं हजामत बनवा लूंगा'. . . और यों मैं इन कमीनों के चक्कर में फंस गया."

मैं उग्रसेन को देखकर हंसता हूं. लोकपति ने उसके चेहरे पर क्या खूबसूरत डाकबंगला बना दिया है. यानी मकान भी और लान भी. एक तरफ सफेदी, दूसरी तरफ स्याही. लगता है, अपने ही साथ मुंह काला किया है. . . और फिर एकाएक मेरी हंसी बंद हो जाती है. . मैं भी तो ऐसा ही बौड़म लग रहा हूं. उग्रसेन कहीं मुंह नहीं दिखा सकता, तो मैं भी दफ्तर नहीं जा सकता.

एक हमदर्दी की नजर से उग्रसेन की तरफ देखते हुए मैं अपनी बांहें उसके गिर्द डाल देता हूं और कहता हूं, "कोई बात नहीं दोस्त, जिंदगी में ऐसा भी हो जाता है."

"जिंदगी की ऐसी-तैसी." उग्रसेन एकदम आग-बबूला होकर कहता है. बजाय इस बात के कि उसकी तसल्ली हो, मेरी हमदर्दी के शब्द उसकी जलती पर तेल का काम कर जाते हैं और वह जो गालियां मुझे दिया करता था, हज्जामों को देने लगता है, "उनकी. . .हर बात में नफाखोरी. . . इसने पूरे मुल्क का बेड़ा गर्क कर दिया है."

"सुनो उग्र!" मैं पूछता हूं, "तुम कब से अहिंसा के कायल हो गये?"

"क्या करता?"

"अरे लगाते उसे पकड़कर दो-चार". . . कहते हुए मैं अपना मुक्का जोर से हवा में घुमाता हूं. मुंह में गालियां मिनमिनाता हूं, जो सब नामर्द लोग करते हैं, "तुमने उसकी पिटाई क्यों नहीं की?"

"कैसे करता?" उग्रसेन हज्जामों की तरफ देखते हुए कहता है, "यह सामने केबिन हैं न, इनमें जितने बैठे हैं, सबके हाथ में उस्तरा है."

हम दोनों मिलकर हंसते हैं. फिर एकाएक नाराज हो उठते हैं. और एक दूसरे के लंडूरे मुंह की तरफ देखकर खिलखिला उठते हैं. आखिर इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि जैसे-कैसे भी हैं, अपने देश के नाई हैं. हमारे बेटे-बेटियों का यही रिश्ता लानेवाले हैं. हमें इनसे सामने का झगड़ा नहीं मोल लेना चाहिए. आखिर तो अपना गला इन्हीं के हाथ में आना है.

संगम पर औरतें नहा रही हैं. एक का भी जिस्म अच्छा नहीं. किसी का पेट लटका हुआ है, तो किसी की-टांगें ऊपर उठी हुईं. लगता है, नेशनल बैंक का टेलर हो जो ऊंची कुर्सी पर बैठा हुआ पब्लिक के साथ बिजनेस कर रहा है. एक बुढ़िया है, शहर के लोगों ने जिसकी ममता का आखिरी कतरा तक निचोड़ लिया और भरे बाजार बेच डाला. पीठ से लगा हुआ उसका पेट, सूखी-मरगली टांगें और ठूंठ-सी बांहें हैं, जो देखने में ऊपर उठकर सूरज भगवान को अंजलि अर्पित कर रही है, लेकिन असल में लपक-लपक कर केंद्रीय सरकार के खुराक विभाग की जान को रो रही है. जैसे हमारी तस्वीर 'पाथेर पंचाली' विदेश पहुंची है और वहां के लोगों ने बहुत पसंद की है. इसी तरह बाहर के लोग उस बुढ़िया की तस्वीर देखकर बहुत खुश होंगे. फोटोग्राफी की दुनिया का सबसे बड़ा ईनाम उसे मिले और दुनिया भर के देशों से अन्न के जहाज कहीं और जाने के बजाय हिंदुस्तान की तरफ पलट पड़ें. अच्छी औरतें हमारे मुल्क में कहां रह गयीं? वह तो अब सिर्फ कैलेंडरों पर दिखायी देती हैं!

यह लीजिए, नौ बज गये. . . अब हम उकताने लगे हैं.

मैं और उग्रसेन दोनों टहलते हुए लोकपति की ओर जाने लगते हैं. तभी लोकपति का चौथा ग्राहक भी हमारी तरफ आता हुआ नजर आता है. यद्यपि मैं उसे नहीं जानता तथापि शक्ल ही से वह अपनी बिरादरी का जान पड़ता है. . . वैसे ही आधा मुंडा हुआ, वैसे ही दो-चार खत चेहरे के बायीं तरफ लगे हुए . . मैं जरा हिम्मत करके आगे बढ़ता हूं और उससे पूछता हूं, "क्यों भैया, क्या हाल है?"

"अच्छा है." वह कुछ झेंपकर कहता है.

"क्या देख रहे हो?"

"यही. . . दुनिया के रंग." और वह दाढ़ी के अनकटे हिस्से पर हाथ फेरने लगता है. क्या देखते हैं कि हम तीनों हंस रहे हैं और फिर एकाएक तीनों ही नाराज हो उठते हैं. मैं उग्र से कहता हूं, "यह ठीक है, लोकपति के हाथ में उस्तरा है, लेकिन हम चारों मिलकर उस पर झपट पड़ें तो वह हमारी दाढ़ी साफ करे या न करे, हम जरूर उसकी तबीयत साफ कर सकते हैं."

उग्र शक की निगाह से मेरी तरफ देखने लगता है. जैसे कह रहा हो, 'चारों मिलकर?' मानो कि हम चार कभी मिल ही नहीं सकते और अगर मिल गये तो फिर हम हिंदुस्तानी नहीं, जरूर हम में से किसी की रगों में विदेशी खून दौड़ रहा है. अगर मुझे दफ्तर न जाना होता, तो भाई मैं तो जरूर इनके साथ मिल जाता. हां, यह चौथा भाई हमारा. . खुदा मालूम उसकी क्या आइडियालोजी है!

हमारा चौथा भाई बंकारने लगता है. वह लोकपति और उसके साथियों के खिलाफ जहर उगलने लगता है, "यह लूट-खसूट, यह नफा-खोरी, गैरकानूनी है, अप्रजातांत्रिक है. हमें इसके खिलाफ जेहाद करना चाहिए." और फिर वह दूर ही से हज्जामों को धमकियां देने लगता है. जब वह शुरू हुआ था तो मैं समझा, उसके हाथ में उस्तरे से भी तेज कोई हथियार होगा, जिसे घुमाते हुए वह जोर से ललकारेगा. दुनिया-जहान के अधमुंडे लोगों को उकसा-भड़काकर अपनी मदद के लिए तैयार कर लेगा और लोकपति और उसके साथियों का खून कर डालेगा. लेकिन यह जानकर दुख भी हुआ और हंसी भी आयी कि वह भी हमारी तरह संसदीय प्रजातंत्र का कायल हो गया है, जहां हम तकरीरें कर-करके हार चुके हैं.

"यह लोकपति", वह कहता है, "कहीं बाहर से दो अच्छर क्या पढ़ आया है, अपने-आपको खुदा समझने लगा है. दुनिया-जहान की बहू-बेटियों से आंखें लड़ाता फिरता है और नहीं जानता कि उसके अपने घर में क्या हो रहा है. जब वह अपने काम में व्यस्त होता है,उसकी बेटी स्टीलवाले एक सेठ के साथ रास रचाये रहती है. एक लड़की सटई के पीछे भागती है और लड़का चोर-बाजार में कोठों के चक्कर. . . !"

यह चौथा भाई हमारे यहां के सब हज्जामों को जानता है. सबके

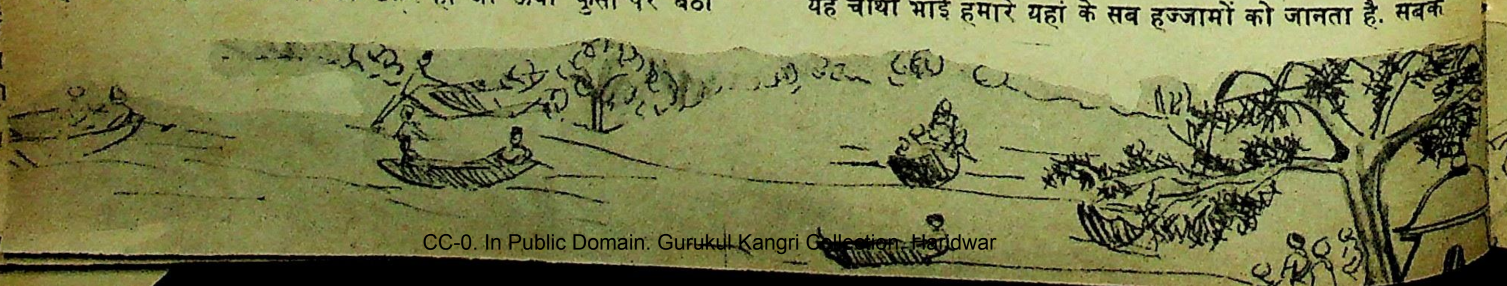

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चे चिट्ठे खोलकर हमारे सामने रखता है. यह उसी ने बताया कि उनमें तीन-चार हज्जाम अच्छे थे, जो पूरी हजामत बनाने के कायल थे, लेकिन बदकिस्मती से वे एक-एक करके मर गये, या बाकियों के शोर मचाने के कारण निकाल दिये गये. वे सब लोकपति के दोस्त थे और उनके कारण लोकपति सब कुछ कर सकता था, क्योंकि उसकी सूझ-बूझ अच्छी थी, नीयत साफ थी, लेकिन उनके चले जाने के बाद वह अकेला रह गया है. मजबूरन उसे दूसरों की हरकतों पर खामोश रहना पड़ता है. और वह खुद भी वही करने लगता है, जो उसके बाकी हज्जाम साथी करते हैं.

इन हज्जामों के अलावा दूसरे जो दरबों के बाहर बैठे थे, इस खेल के कायदे-कानून से वाकिफ हो चुके हैं. इलाहाबाद शहर, जिसके नीचे कहीं सरस्वती बहती है, किसी ऐसे व्यक्ति को जज्ब नहीं कर सकता, जो पढ़ा-लिखा न हो. संयोगवश कोई अनपढ़ आ भी जाये तो कुछ ही दिन में वह इतना पढ़ जाता है कि विश्वविद्यालय का कोई भी अच्छे से अच्छा विद्यार्थी उसका मुकाबला नहीं कर सकता. इलाहाबाद के हज्जाम आदमी बड़े मजे के हैं. खूब दूर की सोचते हैं. लंबी-चौड़ी योजनाएं बनाते हैं. पर पूरी एक भी नहीं कर पाते. बस, भाषण देते हैं, जबान के मामले में राय जरूर रखते हैं, लेकिन उसे अमलीजामा पहनाना तो एक तरफ, नंगा भी घूमने नहीं देते.

कुछ ही बरस की बात है. इलाहबाद के इन हज्जामों में पंजाब का एक हज्जाम आ गया. बस फिर क्या, सब लठ लेकर उसकी तरफ दौड़े और उसे निकाल फेंकने की तरकीबें लड़ाने लगे. लेकिन वह भी एक ही बदमाश था. बाकायदा सीना तानकर सामने खड़ा हो गया. अगर किसी ने एक उस्तरा निकाला तो उसने दो निकाल लिये. बाकी हज्जाम डर-कर बैठ गये और सामने होकर लड़ने के बजाय नीति की बातें करने लगे. वह घाघ सब कुछ समझ गया. उसने अपने केबिन के पीछे से कुछ तख्ते निकालकर एक खिड़की बना ली और उस पर एक बोर्ड लगा दिया 'कौशिक चेरीटेबल होम्योपैथिक डिस्पेंसरी. . .' और कुछ दवाई की शीशियां रख लीं. अन्य हज्जाम लोग बिदके. एक मीटिंग करके उन्होंने उसके खिलाफ फैसला कर लिया, लेकिन तब तक कौशिक, कमेटी की हिमायत हासिल कर चुका था. उससे ग्रांट भी ले चुका था. अब उसे वहां से कोई नहीं हिला सकता था. इसलिए आज तक वह वहां बैठा सबकी छाती में मूंग दल रहा है. हज्जाम उसका कुछ बिगाड़ न सके बल्कि अपने बच्चों-बेटियों के रिश्ते नाई होने के नाते उससे करवाते हैं.

इस पर तुर्रा यह कि उनके बीच का एक हज्जाम भी चला आया. लोग समझते थे कि उसका कारोबार क्या चलेगा, जिसकी अपनी शेव नहीं बनी है. लेकिन साब, जो अंदाजा सयाने का होता है, दीवाने का नहीं होता. उलटा उसके पास ज्यादा ग्राहक आने लगे. वे जानते थे कि बालों के बारे में जितना वह जानता है, कोई दूसरा नहीं जान सकता. अगर उसे बालों से मोहब्बत होगी तो ऐसी प्यारी शेव बनायेगा कि राह चलती लड़की गाल से गाल रगड़ेगी और नफरत होगी तो यों खूंटी से उखाड़ फेंकेगा कि सात जन्म तक ठोड़ी पर न बाल उगेंगे!

यह चौथा भाई हमारे संगम के नाइयों के बारे में और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन मैं उग्रसेन को आंख मारता हूं और कहता हूं, "भाई, मैं तो चला. . . साढ़े नौ हो गये."

उग्र हैरानी से कहता है, "ऐसे ही चल दोगे. जलतोरी?"

"क्या करूं?" मैं कहता हूं, "गया तो बीवी ही कुढ़ जायेगी न, नौकरी तो नहीं जायेगी?"

और हसरत की नजर से लोकपति को देखते हुए चल देता हूं, जिसके पास अभी तक ग्राहकों का तांता बंधा है. मेरे मन में यह खयाल चुटकी लेता है कि शायद लोकपति अब भी मुझे बुला ले और अगले पांच मिनट में नख-शिख से ठीक होकर जाऊं. लेकिन साहब, लोकपति को कहां वक्त है. और मैं रिक्शा लेकर घर पहुंच जाता हूं. . . विद्या, मेरी बीवी मेरा इंतजार कर रही है.

उसकी निगाह मेरे चेहरे पर पड़ती है.

"मैया री!" वह कहती है, "यह क्या?" और फिर वह दुपट्टा मुंह पर करते हुए हंसने लगती है. इस पर भी बस नहीं, पड़ोस में आवाज देती है, "जगन भैया, ए जरा इनको भी देखना. . ."

मैं हाथ जोड़ देता हूं, "विद्या. . भगवान के लिए. . . "

और फिर वह खुद ही देखने के लिए हाथ मेरी दाढ़ी की तरफ बढ़ाती है.

"खबरदार!" मैं उसका हाथ झटकते, नाराज होते हुए कहता हूं, "तू हाथ लगायेगी. . . तो मैं लात लगाऊंगा."

और फिर मैं सोचता हूं, इसमें बेचारी विद्या का क्या कसूर? एक सर्द आह भरते हुए मैं उसे सिर्फ इतना ही कहता हूं, "शुकर करो, तुम औरतों की हजामत किसी लोकपति नहीं, 'त्रिलोकपति' ने बनायी है."

"हमें और थोड़ी मुसीबतें हैं." विद्या कहती है, "तुम्हें तो सिर्फ एक हजामत बनवानी पड़ती है."

उसके बाद विद्या खाना निकालने लगती है. मैं गुस्से से कहता हूं, "आज खाना नहीं खाऊंगा."

विद्या हाथ मलते हुए कहती है, "हायजी, क्या अनर्थ है. गिरे गधे पर से और गुस्सा गरीब कुम्हार पर निकल रहे हो."

फिर मैं सोचता हूं, खाने के साथ मेरा क्या झगड़ा?

मैं खाना नहीं खा रहा, खाना मुझे खा रहा है. खाना खाते हुए हमदर्दी हासिल करने के लिए विद्या के सामने अपनी आज की मुसीबत की दास्तान दुहराता हूं. वह बेचारी, भोली-भाली, नहीं समझती कि उसके मुंह से निकला एक भी हमदर्दी का शब्द मुझे कितना दुख पहुंचायेगा. मेरे बयान के अंत में वह कह उठती है, "टपकी पड़े इन निगोड़ों पर. आज दफ्तर मत जाओ."

"क्यों?"

"ख्वाहमख्वाह क्यों तमाशा बनना. . !"

इस पर मैं भड़क उठता हूं, "क्या मतलब?. . मेरी शक्ल?" मैं उसे भी तमाशा दिखायी दे रहा हूं. कम से कम उसे तो यह नहीं कहना चाहिए था. मैं दफ्तर नहीं जा सकता तो घर भी नहीं आ सकता? और मैं विद्या को गालियां देने लगता हूं, जो दरअसल मुझे संगम के नाइयों को देनी चाहिए थीं या अपने-आपको. विद्या अंदर चली जाती है. और मैं समझता हूं, वह मुझसे डर गयी. लेकिन वह बाहर आती है तो हाथ में एक कटोरी लाती है, जिसमें गर्म पानी है. दूसरे हाथ में सेविंग-स्टिक और उस्तरा.

मैं सोचता हूं, चलो उस्तरा कुंद है तो क्या. जरा जोर लगाऊंगा, तो सब ठीक हो जायेगा. फिर बजाय इसके कि लोग मुझ पर हंसे, मैं उन पर हंसूगा. इसलिए जल्दी-जल्दी चेहरे पर झाग पैदा करके मैं उस्तरा फेरना शुरू करता हूं, लेकिन साहब, उस्तरा है कि कहीं टिकने के बजाय ऊपर से यों फिसलता हुआ ठोड़ी पर आ जाता है जैसे पार्क में स्लिपिंग रोस्ट्रम से बच्चे एकदम फिसलते हुए नीचे आ रहते हैं. मैं झल्लाकर पानी की कटोरी नीचे पटक देता हूं. उस्तरा दूर फेंक देता हूं.

"क्या बकवास है." मैं बंकारता हूं, "यह उस्तरा ले के दिया था. तेरे मायकेवालों ने."

"हायजी, उन्होंने तो ठीक ही लेकर दिया था. तुम्हीं ने सिल्ली गुम कर दी."

"किसने सिल्ली गुम कर दी?"

"तुमने. .. रोज निकाल बैठते थे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"झूठ. . . लगता है. तुम इससे अरबी छीलती रही हो."

विद्या खिन्न होकर उस्तरा उठा लेती है. मैं पलटकर उसकी ओर देखता हूं तो साफ नजर आता है कि वह दुपट्टे के पीछे अपनी हंसी को दबाने की कोशिश कर रही है. और जब मैं उसे शुद्ध अंग्रेजी के स्वर में 'शटअप' कहता हूं तो लगता है, गलती से 'बकअप' कह दिया. एक कहकहा पूरी फिजा को भर देता है और विद्या उस्तरे को हाथ में पकड़े हुए मुझे दिखाती है, "हजामत हो भी कैसे? . . .उलटे ही उस्तरे से अपने-आपको मूंडते रहे."

मैं देखता हूं, जल्दी की हालत में मैं सचमुच अपने मुंह पर उलटा उस्तरा फेरता रहा था. विद्या कहती, "ख्वाहमख्वाह मेरे मायकेवालों का नाम बद्दू किया."

"अच्छा-अच्छा!" मैं उद्विग्न होकर कहता हूं और फिर अपनी पूरी सभ्यता, कर्म-धर्म और विश्वासों पर अपशब्द बरसाने लगता हूं. विद्या बोल उठती है, "खबरदार, इसमें संगम का क्या कसूर? गंगा मैया का क्या दोष?. . मैं तो कहती हूं, मैं मरूं तो मुझे जलाना मत. गंगा में मेरा जल-प्रवाह कर देना. . . "

और मैं सोचते हुए चल देता हूं. गंगा में जल-प्रवाह? कैसी मान-मर्यादा है यह? कैसा पागलपन है हमारी नस्ल का? और मुझे याद आता है वह दिन, जब मैं द्रोपदी घाट की ओर नहाने निकल गया था. सर्दी और गर्मी. . .बीच के दिन थे. गंगा में तब बाढ़ नहीं आयी थी और दरिया मनों ही बालू छोड़कर खुद किनारों से बहुत दूर चला गया था. मुझे दरियाओं और झरनों का बहुत शौक है. बावले कुत्ते का काटा हुआ जितना पानी को देखकर डरता है, उतना ही मैं पानी के नजारे से खुश होता हूं. पहले किनारे के पास की चिकनी मिट्टी पेट पर मलता हूं, जिससे जिस्म की बीमारियां तो क्या, दिल और दिमाग की भी सारी उलझनें जाती रहती हैं. फिर अपने बदन के निहायत शर्मनाक हिस्से को पानी में डुबोकर एक हाथ से पानी पेट पर डालता हूं और दूसरे हाथ से पेट को खूब जोर से मलता हूं. अंदर आंतें हरकत में आ जाती हैं. मरे हुए टिशू भी जिंदा हो जाते हैं. फिर किनारे पर खड़े होकर तौलिए के बजाय हाथ से पूरा जिस्म रगड़ता हूं. रोम-रोम जाग उठता है और बदन स्कूल की लड़की के बदन की तरह नरम और चिकना हो जाता है. चूंकि नंगा होता हूं और सबकी तरफ देखता भी हूं. इसलिए मेरी तरफ कोई नहीं देखता. बंदर भी घबराकर भाग जाते हैं. शायद समझते हैं कि कोई हमसे बड़ा आ गया. इसलिए उस दिन बाथ लेने के लिए गया तो क्या देखता हूं, एक इंसानी खोपड़ी पड़ी है, जिसके साथ रीढ़ की हड्डी लगी है. जरूर किसी विद्या की बहन या उसके भाई का जल-प्रवाह हुआ होगा. हाय, हम हिंदुस्तानियों के भी रीढ़ की हड्डी होती है. . . यह नहीं हो सकता. किसी और कौम का कोई आकर यहां डूब मरा है. . . मगर ऐसा हो तो दुनिया-जहान में कोहराम मच जाये, और वहां के लोग रिग लगाकर पूरी बालू को छान मारें और अपना मुरदा भी यहां से निकालकर ले जायें.

उस खोपड़ी से कुछ परे होकर किनारे पर कपड़े रखते हुए मैं पानी में उतरा तो क्या देखता हूं कि पास ही के पावन जल में सचमुच का एक मुरदा पड़ा है. मैं उछलकर बाहर आ गया और घिन और खौफ से कांपता हुआ उसकी तरफ देखने लगा, जिसका जल-प्रवाह हुआ था और अब उसे जल की परवाह न थी. उसके बदन का गोश्त मछलियां खा चुकी थीं. अगर मैं भूलता नहीं तो मुरदे के नुचे हुए चेहरे पर एक तरफ दाढ़ी थी और दूसरी तरफ सब सफाचट था. आज के तजुर्बे से मैं इस बात का अंदाजा करता हूं कि मरने से पहले वह जरूर संगम पर गया होगा और वहां के किसी लोकपति से हजामत बनवायी होगी. . . खैर, मैं अपने कपड़े पकड़कर दरिया के ऊपर की तरफ हो लिया. . .ताकि उस गाजी मर्द के घिनौने बदन से लगा हुआ पानी मुझ तक न आये. एक बार फिर कपड़े रखकर दरिया में उतरा ही था कि पानी में से दो टांगें बाहर उठती हुई दिखायी दीं. मैं भाग आया और तब से मैंने द्रोपदी घाट तो क्या, किसी सीता या सावित्री घाट पर भी नहाने का इरादा नहीं किया. पर यह विद्या, मेरी बीवी अजीब तरह के पागलपने में अपना जल-प्रवाह करने को कह रही है. न बाबा, मैं नहीं चाहता कि मरने के बाद भी किसी की टांगें यों पानी से बाहर उठी हों.

मैं दफ्तर पहुंचता हूं. . . लेट. . . और चुपके-से अपनी सीट में जा दुबकता हूं. यों काम में लग जाता हूं जैसे सुबह से ही मरने की फुसरत नहीं और करीब दो घंटे से इस दफ्तरी काम में लगा हुआ हूं. क्लर्क मेरी तरफ देखते हैं. खुलकर हंसते हैं और बार-बार मेरी कुशलता पूछने के लिए आते हैं. इस अरसे में मेरा सेक्शन इंचार्ज सिर्फ एक बार मेरे पास आता है. मैं बहुत कुछ अपना चेहरा उससे छुपाने की कोशिश करता हूं, लेकिन तभी लॉग बुक के गुम हो जाने से जो हंगामा बरपा होता है, उसकी वजह से अपने-आपको भूलकर मुझे उसकी तरफ देखना ही पड़ता है. वह मेरी तरफ देखते ही कह उठता है, "आज तुम संगम पर गये थे."

"जी, सर!" मैं जवाब देता हूं और मेरा हाथ अपने-आप चेहरे की तरफ उठ जाता है. मैं डरता लरजता हूं कि न जाने अब वह मुझे क्या कहेगा? लेकिन साहब वह एक ऐसी बात कहता है कि मैं सोचता रह जाता हूं कि इस बात से मेरी दाढ़ी का क्या संबंध? वह कहता है, "कोई बात नहीं. . . लॉग-बुक कल मिल जायेगी." फिर वह चला जाता है.

मुझे कुछ समझ में नहीं आता. चेहरा कानों तक तमतमा उठता है और उसके अनमुंडे हिस्से पर एकाएक अजीब-सी खारिश होने लगती है. मैं जितना उसे खुजाता हूं, उतना ही ऊपर से नीचे तक मेरी खारिश बढ़ती जाती है.

दफ्तर में जैसे-तैसे भी दिन कटता है. मैं वक्त से पहले ही उठकर चल देता हूं. यह सोचते हुए कि चाहे मेरी पूरी जायदाद लग जाये, सैलून में जाकर हजामत बनवाऊंगा, फिर कोई दुनिया का और काम करूंगा. तभी मैं अपने-आपको युनीवर्सिटी हेयर कटिंग सैलून के सामने पाता हूं.

अंदर दाखिल होते ही मैं एक ऐसी कुर्सी पर जा बैठता हूं, जिसमें मुझे मां की गोद जैसी शांति हासिल होती है.

नासिर हुसैन मेरे पास आता है. इस पहले कि वह अपने हाथ का तौलिया मेरे गले में बांध दे, वह मुझसे पूछता है, "आप शिया हैं या सुन्नी?"

"जी?" मैं हैरान होता हूं.

वह फिर पूछता है, "आप शिया मुसलमान हैं या सुन्नी. . . . ?"

"क्यों भाई?" मैं कहता हूं, "हजामत का शिया-सुन्नी से क्या संबंध?"

"माफ कीजिए मैं सुन्नियों की हजामत नहीं बनाता."

"आप शिया हैं?"

"हां." तब तो उलटे आपको सुन्नियों की खूब ही हजामत बनानी चाहिए. वैसे मैं हिंदू शिया हूं. . .बघान चंद मेरा नाम है."

"ओ!" नासिर हुसैन कहता है, "फिर ठीक है. मुझे सिर्फ सुन्नियों से नफरत है. उनसे तो हिंदू लाख दर्जे अच्छे हैं."

फिर वह तौलिया मेरे गले में डाल देता है और सुनता ही नहीं कि मुझे हजामत बनवाना है, बाल नहीं कटवाना. आखिर उसे पता चल जाता है और वे शेविंग बुर्श लेकर मेरी तरफ बढ़ता है. तभी मेरे चेहरे की

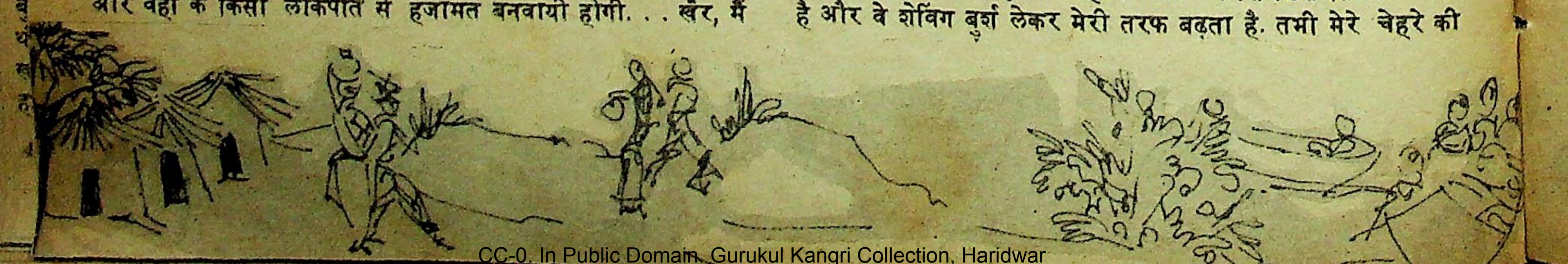

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ देखकर वह एकदम रुक जाता है. फिर मेरी ओर देखता है और शेविंग-स्टिक को एक तरफ रख देता है और कहता है, "आप उठ जाइए."

"क्या मतलब?" मैं हजामत को करीब आकर दूर हटते हुए देखता हूं और कहता हूं, "कहा न, मैं सुन्नी नहीं."

"सुन्नी- वुन्नी की बात नहीं."

"तो फिर. . . . क्या बात है?"

मैं जो खुशी के उस गुबारे पर सवार था, जो लखनऊ में पहली बार किसी अंग्रेज ने उड़ाया था, उसके पंक्चर हो जाने से एक दम भूऊऊऊ की आवाज से नीचे आ रहता हूं.

सैलून का मलिक नासिर हुसैन तपाक से कहता है, "क्या किसी और ने आपकी शेव शुरू की थी?"

"हां, लोकपति ने. . . संगम पर. . . . ग्रेट आदमी है."

"कुछ भी हो." नासिर हुसैन दृढ़ता पैदा करते हुए कहता है, "कितना भी ग्रेट हो, लेकिन बात यह है. . . किसी के भी चेहरे पर कोई-सा भी हज्जाम एक बार कैसा भी खत लगा दे, कोई दूसरा हज्जाम उसे 'टच' नहीं कर सकता. . . . यह हमारी यूनियन का कानून है." .

"आपकी यूनियन की ऐसी-तैसी!" मैं एकदम आगबगूला होकर कहता हूं, "एक तरफ हमारे हाकिम हैं, दूसरी तरफ कामगार मजदूर और उनकी यूनियन. बीच में हम लटक रहे हैं. . . क्या आपने किसी बुजुर्ग से नहीं सुना. . . . मरो और मरने दो? . . . . हम जायें तो कहां जायें?"

"बाहर!" "नासिर हुसैन कहता है.

मैं एकदम सब कुछ भूलकर पहले बाहर की तरफ देखता हूं फिर इस के मायने समझता हूं. मुझे उम्मीद ही न थी कि युनीवर्सिटी हेयर कटिंग सैलून का नासिर हुसैन आजादी के बाद मेरे साथ ऐसा सुलूक करेगा. होश में आते हुए नासिर हुसैन से कहता हूं, "मैं तुम्हारी यूनियन के खिलाफ स्ट्राइक करा दूंगा. भूख-हड़ताल कर दूंगा. . . मैं पंडितजी तक पहुंचूंगा, जो यहां के रहनेवाले हैं. अपने वतनी हैं. इलाहाबाद में एक बार आने दीजिए उन्हें. मैं उन्हें कहूंगा, 'पंडितजी, यह सब क्या हो रहा है? अभी तक इस उम्र में आपने देश का मामला ठीक न किया तो बड़े होकर क्या करेंगे?'

और जब कुछ समझ में नहीं आता तो मैं नासिर हुसैन के हुजूर में गिड़गिड़ाने लगता हूं, "नासिरजी! आप मुझसे दस-बीस रुपये ले लीजिए, लेकिन भगवान. . नहीं-नहीं, अल्लाह के लिए एक बार फिर मेरी हजामत बना दीजिए. नहीं तो मैं दुनिया जहान में कहीं मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहूंगा. . . सब मुझ पर हंस रहे हैं. . . . एक मैं रो रहा हूं."

बजाय इसके कि नासिर हुसैन मेरी हालत पर तरस खाये, वह कहता है, "रात हो गयी. . .इस वक्त कौन मुंह देखता है?"

बेकार है, सब कुछ बेकार है. इसलिए मैं कोई फर्जी छड़ी उठाकर फर्जी हवा में उसे घुमाता हुआ किसी फर्जी घर की तरफ चल देता हूं.

रातभर विद्या, मेरी बीवी मेरे पास नहीं आती. मुझे यों लगता है जैसे मैं कोई कबूतर हूं, जिसे किसी ने लाल रंग लगा दिया हो या चिड़ा हूं, जिसके गले में किसी ने फुंदना बांध दिया और अब मेरे ही रिश्तेदार मुझे अपने घर में घुसने नहीं देते. चोंचें मार-मारकर लहूलुहान कर रहे हैं. काट-काटकर भगा देने की कोशिश में हैं.

तड़के ही उठकर में संगम की तरफ चल देता हूं और लोकपति के पास पहुंचकर हाथ जोड़ देता हूं, "हे लोकपति . . . . भगवान के लिए मेरी हजामत बनाओ! तुमने कबसे मुझे इस हालत में लटका रखा है. न जीता हूं, न मरता हूं. . . . हालांकि मैंने तुम्हें पूरा टैक्स दिया है."

लोकपति जिसने किसी के चेहरे पर कुछ खत लगा रखे थे, उसे छोड़ देता है और कहता है, "आप जरा ठहरिए श्रीमान. . . . "

"नहीं, यह कैसे हो सकता है?" वह आदमी प्रतिरोध करता है, "मुझे दुकान पर जाना है."

"सभी को जाना है भैया!" लोकपति कहता है, "सभी को जाना है. कल इनकी हजामत बीच ही में रह गयी थी."

"यह जायें भाड़ में और तुम जाओ जहन्नुम में!" वह आदमी मुंह में झाग लाते हुए कहता है, "इनकी तो कल की हजामत रह गयी मैं पिछले इतवार से अधमुंडा बैठा हूं. . ."

लगता है, उस आदमी की बर्दाश्त आखिरी हद तक पहुंच गयी है और वह लोकपति को मारेगा, लेकिन लोकपति की एक ही कड़ी नजर और हाथ में उस्तरा देखकर वह कहता है, "अच्छा. . .मत भूलियो, इनके बाद मेरी बारी है."

और मैं इतमीनान से लोकपति के हाथ में अपना गला दे देता हूं और सोचता हूं, कुछ भी हो, लोकपति आदमी बुरा नहीं मामले का बहुत खरा है.

थोड़ी ही देर में चेहरे का वह हिस्सा साफ हो जाता है, जो कल अनकटा रह गया था. मैं उस पर हाथ फेरता हूं. जरनैली सड़क की तरह से साफ है, जिस पर कोई सौ की रफ्तार से गाड़ी चला सकता है. तभी लोकपति मुझसे कहता है, "अब आप उठ जाइए."

"क्या मतलब ?" मैं आखिरी बार हैरान होकर पूछता हूं.

"जो अनकटा रह गया था, वह मैंने काट दिया."

"मगर. . ." मैं चेहरे के दूसरे हिस्से पर हाथ फेरते हुए कहता हूं, "रात में इधर भी तो बाल उग आये हैं. . .!"

"कट जायेंगे बबवा! . . .वह भी कट जायेंगे!" लोकपति सिल्ली पर उस्तरा तज करते हुए कहता है, "बारी से सब ठीक हो जायेगा."

और मैं वहीं पर खड़ा अपनी बारी का इंतजार करने लगता हूं, जो आयेगी पर नहीं आयेगी.

कौशिक ऊंची आवाज से अपनी विजय पर हंस रहा है.

चंद्रभान न जाने किसको देखकर एक्ट्रेस जमुना का वह शेयर पढ़ने लगता है, जो उसने फिल्म 'देवदास' में बोला था—

कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीरे नीम-कश को,
यह खलश कहां से होती, जो जिगर के पार होता!

सामने दरिया में औरतें नहा रही हैं. एक युवती ने हर किस्म की शर्म-हया से बेपरवाह होकर सब कपड़े उतार दिये और जोर से उन्हें दूर किनारों की तरफ फेंक दिया और पूरे पर तौलकर पानी में कूद गयी. उस हसीन डाइविंग के बाद अभी वह सतह पर नहीं आयी है. लगता है, नीचे सरस्वती की थाह पाने की कोशिश कर रही है.

किला जिसे सम्राट अकबर ने बनवाया था, एक मिनिएचर हो गया, जो वक्त के अजायबघर में पड़ा है. मंदिर जमीन में धंस चुके हैं और बंदर ऊपर शायद चांद, शुक्र और मंगल पर कूद गये, जो अब हमारी धरती के सूबे हो चुके हैं. . .

एक फकीर जो शक्ल से हकीमे-वक्त मालूम होता है, बददुआ देता है, जो मुझे दुआ लगती है—

"जा बच्चा, सेफ्टी के सिवा तेरा कोई दारु नहीं!"

और मैं खुशी-खुशी घर लौट जाता हूं, जिसका रास्ता बाजार से होकर जाता है." □

संक्षिप्त रूपांतर : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्फुट शब्दों में कसमसाता लेखक

उपेंद्रनाथ अश्क

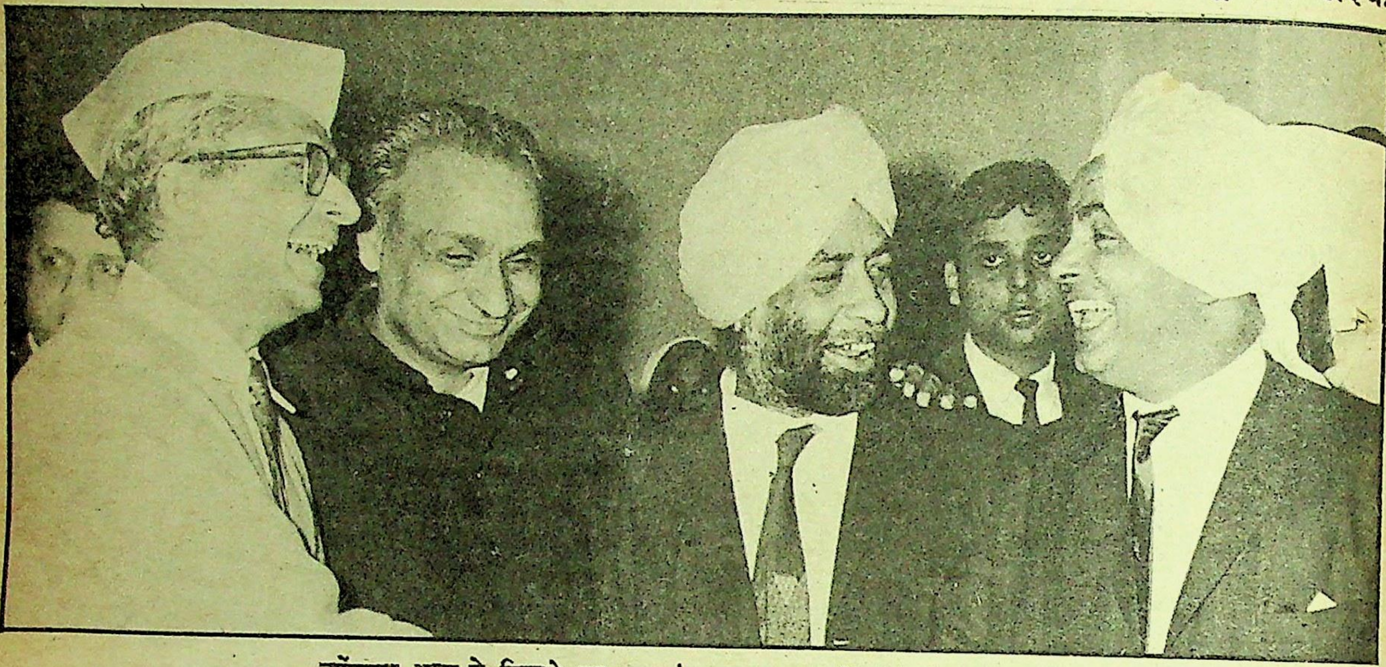

उपेंद्रनाथ अश्क से मिलते हुए रामानंद सागर, पास में खड़े हैं बेदी साहब

मुहब्बत चाहे अंगूर की बेटी से हो या नाजनीन से, बेदी जी की जरूरत रही या कमजोरी, यह तो आप खुद ही तय करें, लेकिन यह तय है कि इस खेल में तबाह होने के मंजर देखने का कलेजा बेदी में था. पढ़िए, साल-दर-साल बेदी की तनहा होती गयी जिंदगी के आखिरी दिनों की दास्तान. जबकि शराब और शवाब उनके लिए बीता हुआ सपना हो गये. इसे दर्ज किया है 'चेहरे अनेक' जैसी पुस्तक के बेदर्द लेखक अश्क ने, जो बेदी के दोस्त भी रहे और दुश्मन भी—

गत वर्ष मैं ही नहीं, मेरी पत्नी भी बेदी को देखने बंबई गये थे. दिसंबर, 1978 में उसे फालिज का दौरा हुआ था. कुछ स्वस्थ होने पर वह उर्दू लेखकों की एक कांफ्रेंस में शामिल होने दिल्ली आया था और गालिब अकादमी के मंच पर मैंने उसे खोये-खोये बैठे देखा था. बेदी न केवल अपनी दाढ़ी तराशता था, बल्कि बड़ी सफाई से काली पेंसिल की मदद से कुछ बालों को काला कर लेता था, लेकिन गालिब अकादमी के मंच पर कुर्सी पर ढीले से खोये-खोये बैठे मैंने जिस बेदी को देखा, मेरे दिल को बहुत धक्का लगा था. उसकी दाढ़ी के बाल बर्फ से सफेद थे और वे न तराशे थे, न ठाठे या फिक्सो से कसे थे, काफी बढ़ गये थे और उसकी आंखों में कुछ अजीब से खोये-खोयेपन का भाव था.

दूसरी बार 1980 में वह अपनी फ़िल्म 'आंखिन देखी' का मनोरंजन-कर माफ कराने के सिलसिले में दिल्ली आया था. ग्रेटर कैलाश में अपने मित्र सुरेंद्र सहगल के यहां ठहरा था और चूंकि मैं कुछ महीने पहले रेडियो और दूरदर्शन पर मानद प्रोड्यूसर नियुक्त हुआ था और विवेक विहार, शाहदरा में मकान बनवा रहा था, इसलिए मैं उससे कई बार मिला था.

यद्यपि उसकी तबीयत पहले से बेहतर थी, लेकिन फालिज का असर उसके दिमाग और चेहरे के दायें भाग, दायीं आंख, दायें हाथ और दायीं टांग पर शेष था, उसे बातें याद नहीं रहती थीं, उसे बोलने और लिखने में कष्ट होता था और चूंकि उसकी दायीं टांग जरा छोटी हो गयी थी, वह जरा लंगड़ा कर चलता था.

1976-77 में मैं उसके पास क्रमश: बीस दिन और तीन महीने रहा था. वह अपनी फिल्म की हीरोइन सुमन के इश्क में बेतरह गिरफ्तार था. सातवें आसमान पर उड़ता था. पत्नी से झगड़ा चरम सीमा पर पहुंच गया था.

फिर उसकी पत्नी ऐन झगड़े के बीच दिल के दौरे से चली गयी, लेकिन सुमन के इश्क ने उसे अपना आप इतना भुला दिया था कि बीवी की मृत्यु का भी उसने प्रकट कोई असर नहीं लिया, मान-मर्यादा का खयाल किये बिना सुमन को घर लाने लगा, मेरे समझाने का भी उसने बुरा माना. इतनी पुरानी दोस्ती में उस कारण थोड़ा बाल भी आ गया. लेकिन हुआ वही, जैसा मैंने उसे चेताया था. इधर उसकी फिल्म खत्म हुई, उधर जुलाई में सुमन ने शादी कर ली. बेदी ने आत्महत्या का प्रयास किया. दिसंबर में फालिज गिर गया.

वह आसमानों में उड़ता धरती पर आ रहा. उसका सारा आत्म-विश्वास चुक गया. उसके यहां अपनी प्रतिभा के प्रति पहले की सी आत्मविश्वासहीनता लौट आयी. उसे देखकर बहुत तकलीफ होती थी. मैं यथाशक्य उसे तसल्ली देता रहा. उसे यकीन दिलाता रहा कि सब कुछ ठीक हो जायेगा.

फिर उधर 81 में उसकी आंख का आपरेशन हुआ और एक आंख की ज्योति जाती रही. 82 में उसका बड़ा बेटा दिल के दौरे चला गया.

फिर उसे कैंसर हो गया. इधर मेरे हालात खराब हो गये. मेरा छोटा लड़का, जो प्रकाशन का सारा बोझ अपने कंधों पर पर उठाये था, अचानक बी. बी. सी. के कंपटीशन में बैठा, चुन लिया गया और लंदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला गया. मुझे अवबना मकान बेचकर वापस इलाहाबाद आना पड़ा. मैं दिल्ली में ही बीमार हो गया था.

सवा साल बीमार पड़ा. मैं ठीक नहीं हुआ था कि मेरा बड़ा लड़का बिस्तर से जा लगा. कागज की कीमत बहुत बढ़ जाने और सरकारी खरीद में पहुंच न होने से प्रकाशन का काम एकदम ठप्प हो गया. मई, 1983 में बीमारी के बावजूद मैं इंग्लिस्तान गया, अपने लड़के का त्यागपत्र दिला आया और इस तमाम परेशानी में बेदी को कोई खत नहीं लिख सका.

कौशल्या उसकी आंख के आपरेशन के वक्त भी गयी थी. उसके बड़े लड़के की मृत्यु पर भी वहीं थी, लेकिन उसके बाद कैंसर के कारण बेदी के दो-दो आपरेशन हुए और उसकी हालत बिगड़ गयी.

हम न पत्र लिख सके, न जा सके. इलाहाबाद के एक माफिया किंग के गुर्गे पिस्तौल लेकर 'नीलाभ प्रकाशन' के गोदामों वाले बंगले पर गैर-कानूनी कब्जा करने आ पहुंचे थे और हम उसी में उलझे थे. बीमारी के कारण और मित्रों और आत्मीयों के दुर्व्यवहार से बेदी बहुत शंकालु हो गया था. तभी कुछ मित्रों के पत्र आये कि बेदी की हालत बहुत खराब है और वह आपको बहुत याद करते हैं और आपसे मिलना चाहते हैं. आप जैसे भी हो, बंबई जरूर आयें लेकिन मैं जा नहीं सकता था.

मैंने उसे माफिया किंग के सिलसिले में अपने उलझाव की बात लिख दी और कौशल्या को उसकी तीमारदारी के लिए भेज दिया और उससे कह दिया कि बेदी को मेरी स्थिति समझा दे.

कौशल्या एक महीना वहां रही. बेदी बहुत अकेला और बहुत परेशान था. उसने घंटों उससे बातें कीं. तकलीफ के बावजूद वह सीढ़ियां उतरकर उसे छोड़ने आया और उसने हसरत भरे लहजे में कहा कि शायद वह मुझसे मिल नहीं पायेगा.

कौशल्या ने उसे तसल्ली दी कि आप बहुत-बहुत वर्ष जीयेंगे और अश्कजी भी आपसे मिलेंगे. मैं जाते ही उनको भेजूंगी.

कौशल्या ने आकर मुझे बेदी की हालत बतायी और कहा कि सीने के बाद अब उनके पेट का भी आपरेशन हुआ है. मल वगैरह के निकास के लिए उनकी नाभि के नीचे एक प्लास्टिक की थैली दी गयी है. यों उनकी हालत थोड़ी अच्छी है, वे बात कर लेते हैं, उन्हें तो मालूम नहीं, लेकिन डॉक्टरों ने ज्यादा वक्त उन्हें नहीं दिया. वे आपसे बहुत मिलना चाहते हैं, अगर आपको रस्म अदायगी नहीं करनी तो फौरन जाइए.

बहरहाल, मैंने 25 सितंबर को सीट बुक करायी और कौशल्या के भतीजे सुनील के साथ, जो उसे छोड़ने आया था, मैं बंबई के लिए रवाना हो गया.

मैं बीस दिन बंबई रहा. दुर्भाग्य से मेरे जाने के कुछ दिन पहले बेदी को बुखार आने लगा, उसकी हालत कुछ बिगड़ गयी और जब दवाइयों से लाभ नहीं हुआ तो डॉक्टरों ने उसका निरीक्षण करना चाहा. उनका खयाल था कि यदि बुखार किसी और कारण से हुआ तो इलाज हो सकेगा, कैंसर के कारण हुआ तो मुश्किल है और यह जानने के लिए निरीक्षण जरूरी है. बेदी के छोटे भाई हरबंस सिंह (जो अवकाश प्राप्त एक्जक्यूटिव ऑफिसर हैं) को तार दे दिया गया. वे अपनी पत्नी के साथ आ गये. उन्होंने मेरे बंबई पहुंचने के एक रात पहले बेदी को उनके निवास स्थान के करीब ही लिंकिंग रोड के सेंट जेवियर्स सिलवर क्लीनिक में भरती करा दिया.

मैं घंटों बेदी के पास बैठा. उसने बातें करने की कोशिश भी की, लेकिन प्रकट समझ में आनेवाले केवल ढाई वाक्य उसके होंठों से निकले. मैं उन ढाई फिकरों की बात नहीं करूंगा. यहां मैं उन चंद अस्फुट शब्दों का उल्लेख करूंगा, जो तीन-चार मुलाकातों में उसके होंठों से निकले. उनमें से दो मेरी समझ में आ गये. तीसरा मैं कोशिश करने पर ही समझ पाया. और बेदी की तमाम कोशिशों के बावजूद शेष मेरी समझ में नहीं आये.

शायद दूसरे ही दिन की बात है. मैं सुबह तैयार होकर लगभग दस बजे सेंट जेवियर्स सिलवर क्लीनिक पहुंचा. क्लीनिक के छोटे से गेट में दाखिल होकर मैंने अंदर कदम रखा तो बेदी मुझे गलियारे में, हरबंस के कंधे पर झुका, फालिज-जदा दायीं टांग के कारण मुश्किल से चलता हुआ आता दिखायी दिया. पहले दिन ही मेरे सामने डॉक्टर ने हिदायत दी थी कि उसकी इच्छा हो या न हो, बेदी को बरबस कुछ खुराक जरूर खिलायी जाये और चाहे जैसे भी हो, उसे कुछ घुमा-फिरा लिया जाये. कैंसर को बढ़ने से रोकने के लिए उसे जो इंजेक्शन दिये जा रहे थे, वे उसकी सारी प्रतिरोध शक्ति हर लेते थे और डॉक्टरों का कहना था कि यदि थोड़े भोजन और कसरत के द्वारा वह यूं शक्ति-संचय नहीं करता तो किसी भी रोग के कीटाणु उसके शरीर पर आक्रमण कर सकते हैं और कैंसर की स्थिति में उस दूसरी बीमारी को रोक पाना दुष्कर हो सकता है.

उसका छोटा भाई हरबंस ये दोनों काम पूरी निष्ठा से सरअंजाम देता था. एक चक्कर घुमाकर हरबंस ने बेदी को अंदर कुर्सी पर बिठा दिया. उसे नाश्ता कराया और बेड पर लिटा दिया. फिर मुझे उसके पास बैठाकर स्वयं नाश्ता करने चला गया. कुछ क्षण बदी चुपचाप लेटा रहा. फिर वह उठ बैठा और उसने मेरी तरफ देखकर, जिस आदमी ने मुझे उलझा रखा था, उसका नाम कठिनाई से लेते हुए अपनी भवें उठायीं और हाथ से संकेत किया कि उसका क्या हुआ. मैंने उसे सविस्तार सारा किस्सा बताया. उस पत्र का उल्लेख किया, जो उस संदर्भ में मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री को लिख दिया गया था.

अपने लखनऊ जाने का जिक्र किया और उसे बताया कि मैंने एक बंगला उन लोगों के चंगुल से आजाद करा लिया है, दूसरे का मामला नहीं निपटा, यद्यपि उनका दबाव कम हो गया है, इसीलिए मैं आ पाया हूं.

बेदी ने कहा, "कौशल्या. . . . "और उसने सिर को नकार में हिलाते हुए दायें हाथ, को उलटा-पलटा कि कौशल्या ने तो इस सिलसिले में कुछ नहीं बताया.

मैंने कहा, "कौशल्या सोफिस्टीकेटिड औरत है. तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं. वह तुम्हें परेशान नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने वह सब तुम्हें नहीं बताया."

इस सिलसिले में मैंने उसे जो पत्र लिखा था, उसे पढ़कर उसने कौशल्या से कहा था, "अश्क बहुत चालाक है." मैं नहीं जानता, मेरे मुंह से उस माफिया किंग का किस्सा सुनकर बेदी को विश्वास आया या नहीं, क्योंकि अपने अंतिम दिनों में वह बहुत संदेहशील हो गया था, लेकिन मेरी बात सुनकर वह लेट गया और उसने आंखें बंद कर लीं.

फिर एक दोपहर मैं उस वक्त क्लीनिक में जब पहुंचा, जब बेदी का छोटा भाई और उसकी पोती बन्नो उसे खाना खिला रहे थे. बेदी को खाने की इच्छा नहीं थी, लेकिन डॉक्टर की हिदायत के मुताबिक हरबंस ने उसे सूप पिलाया, एक डेढ़ फुल्का खिलाया, आधा सेब काटकर दिया और मौसंबी की चंद फांकें खिलायीं, फिर उसे लिटाकर वे दोनों लंच लेने चले गये.

बेदी अपने बिस्तर पर आंखें बंद किये पड़ा था और मैं कमरे के दूसरे बेड के साथ टेक लगाये वहां पड़ी एक मैगजीन देख रहा था, जिसे बन्नो छोड़ गयी थी, तभी बेदी ने आंखें खोलीं और मुझे अपने निकट कुर्सी पर बैठने का संकेत किया.

मैं जब कुर्सी पर जा बैठा तो वह उठकर बैठ गया और जबान को मुंह में घुमाते हुए उसने मुश्किल से एक शब्द होंठों से निकाला, "सिचाई."

मेरी समझ में कुछ नहीं आया, "सिचाई! सिचाई क्या?" मैंने होंठों ही होंठों में कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेंद्र सिंह बेदी : एक सिसिफस

अनवर अजीम

मैंने एक बार राजेंद्र सिंह बेदी से कहा, "आप पर सिसीफस का गुमान गुजरता है, जो उदासी से अपनी चट्टान को पहाड़ी से लुढ़ककर नीचे जाते देख रहा हो."

बेदी ने कहा, "तुम उदासी का जिक्र क्यों करते हो? मैं तो हर तस्वीर में खुश दिखाई देता हूं. मैं जानता हूं कि मुझे फिर एक ऐसी चट्टान मिलेगी, जिसे धकेलकर सबसे ऊंची चोटी पर ले जाना है."

मैं हंस पड़ा और मैंने कहा, "बेदी साहब, मैंने पहली बार आपको झूठ बोलते पकड़ा है."

वे संजीदा हो गये और उन्होंने सर्द लहजे में कहा, "तुम्हारी कॉफी ठंडी हो रही है."

उस वक्त भी उनकी आंखें मुस्करा रही थीं, जैसे कि अक्सर मुस्कराया करती थीं. वे सारी उम्र बुलंदी तक पहुंचने की उद्दोजहद में रहे और अक्सर अपने उद्देश्य की पूर्ति पर उदास हो जाते थे. यही कारण है कि मैं उन्हें सिसीफस कहता था—वह सिसीफस, जो सजा काट रहा है. उन्होंने सजा झेली अपनी मर्जी से, और उनके जमीर ने कभी उन पर मलामत नहीं की. □

प्रस्तुति : सुखबीर

बेदी ने उसी तरह फिर वही शब्द दोहराया और बेड के साथ लगी साइड टेबल की ओर देखा.

मैंने भी साइड टेबल की तरफ देखा. वहां शीशे के एक गुलदान में फूल लगे थे. दवाओं की कुछ शीशियां थीं. सिंचाई के लिए वहां क्या था?

मुझे मूर्खों की तरह साइड टेबल की ओर देखते पाकर बेदी ने दोनों हाथ बेड पर टिकाये और पायंते की ओर सरककर अपनी फालिज-जदा दायीं टांग दिक्कत से पलंग के नीचे खिसकायी और बायीं को साइड टेबल में सटाकर उसका पट खोला और उसमें से एक अधजला सिगरेट निकाला. फिर बायीं टांग तो उसने आसानी से पलंग के ऊपर कर ली, लेकिन दायीं को ऊपर ले जाने में उसे कठिनाई हो रही थी. मैंने उसकी टांग को सहारा देकर उसे पलंग पर कर दिया. बेदी ने सिगरेट होंठों में रखा. मैंने साइड टेबल के उसी खाने से दियासिलाई की डिबिया निकालकर उसका सिगरेट सुलगा दिया.

बेदी ने इत्मीनान से एक कश लगाया और धुंआ छोड़ते हुए कहा, "सिंचाई!" और मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे कह रहा हो—समझ गये ना.

दो-एक कश और लगाकर उसने सिगरेट खिड़की के बाहर फेंक दिया. फिर उसी तरह बिस्तर पर दोनों हाथ टिकाकर पीछे की ओर सरक, तकियों पर ढह गया और उसने आंखें बंद कर लीं.

सिंचाई का मतलब मैं समझ गया. उसकी प्यासी रूह निकोटिन के नशे से सैराब होना चाहती थी, लेकिन मैं सोचने लगा—कहीं मेरे बदले वहां हरबंस उसका पोता या पोती होते तो क्या वह उस टेढ़े तरीके से अपनी तलब का इजहार करता? वह यकीनन सीधे सिगरेट मांगता, लेकिन चूंकि मैं बैठा था, इसलिए उस छोटे से एक शब्द के द्वारा शायद मुझे जताना चाहता हो कि उसका दिमाग अभी तक हाजिर है और वह अपनी बात उसी सूक्ष्म वक्रता से कहने की क्षमता रखता है, जिससे काम लेकर वह अपना मंतव्य कहानियों में ऐसे छिपा देता था कि उसे पाने के लिए पाठक को खासे ध्यान से उन्हें पढ़ना पड़ता था.

लेकिन फिर एक दिन उसने कुछ ऐसी सूक्ष्म और गहरी बात कहने का प्रयास किया कि लाख कोशिश के बावजूद मैं उसका आशय नहीं जान सका.

शायद चौथे या पांचवें दिन की बात है, मैं उसी दोपहर के वक्त अकेला क्लीनिक में उसके पास कुर्सी पर बैठा था. हरबंस और बन्नो उसे खाना खिलाकर जा चुके थे. सहसा बेदी उठकर बैठ गया. उसके अंदर न जाने क्या तकलीफ थी, वह बहुत देर तक लेटा नहीं रह सकता था. बार-बार उठता-बैठता था.

उसने मुझे और करीब होने का इशारा किया. मैंने कुर्सी उसके बेड के और निकट खिसका ली.

बेदी ने दोनों हाथों से शून्य में एक आयत का खाका बनाते हुए कहा, "इक वड्डी स्लेट हुंदी ऐ ना, फेर इक ओस तों छोटी (और उसने शून्य में पहले खाका से जरा सा हटकर एक जरा छोटा खाका बनाया) फेर एक होर छोटी." (और उसने जरा हट कर तीसरी स्लेट बनायी) फिर हाथ उलटकर बोला, "ऐंदा ई हुंदी हुंदी ऐ."

(यानी एक बड़ी स्लेट होती है, फिर एक उससे छोटी, फिर एक उससे भी छोटी, इसी तरह होती होती है.)

खाके बनाकर और हाथ उलटकर उसने मेरी ओर देखा कि मैं उसकी बात समझ पाया हूं या नहीं?

लेकिन होनी क्या होती है और उससे उन तीन स्लेटों का क्या संबंध है, बेदी उनके माध्यम से क्या कहना चाहता है, लाख सोचने पर भी मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा.

मेरी अज्ञता को लक्ष्य कर बेदी के होंठों पर सर्दियों की क्षीण पीली धूप ऐसी दर्द और व्यंग्य भरी एक करुण-सी क्षणिक मुस्कान फैली और सिर को जरा-सा हिलाते हुए उसने कहा, "नहीं समझ पाये ना?"

उसने फिर शून्य में पूर्ववत तीनों स्लेटें बनायीं, उसी तरह हाथ उलटकर कहा, "ऐंदा ई हुंदी हुंदी ऐ!" फिर उस तरह मेरी ओर देखते हुए कहा, "नहीं समझ पाये ना!"

जब मैंने नकार में सिर हिलाया तो उसने कागज कलम मांगा.

मैंने बाहर जाकर काउंटर से कागज का एक टुकड़ा और बॉल-पेन लाकर उसे दिया. बेदी ने बॉल-पेन से कागज पर तीन बड़ी-छोटी आयतें बनायीं और उनमें सीधी लकीरें खींच दीं और मेरी तरफ देखा कि अब भी नहीं समझे?

मेरी आंखों में समझदारी का नितांत अभाव देखकर वह निराश हो गया, चुपचाप पीछे तकियों पर लुढ़क गया और आंखें बंद कर लीं.

बेदी चुपचाप आंखें बंद किये लेटा था और उसके वे अस्फुट इक्का-दुक्का शब्द मेरे दिमाग में खलबली मचाये हुए थे. जाने उसके मन में कौन से संदेह कांटे चुभो रहे थे कि उसको मेरी सच्ची परेशानी का भी शायद विश्वास नहीं आ रहा था. सिगरेट की तलब तो उसने जाहिर कर दी थी, पर वह तो रोज पीने लगा था और सुमन के इश्क में उसने अपना घर ही नहीं, अपने आपको भी तबाह कर लिया था. क्या अंगूर की बेटी या इंसान की बेटी के प्यार की प्यास उसे परेशान न करती होगी? और वह जो बहुत ही बारीक और अनोखी थीम्ज पर कहानियां लिखता था, जो कन्हैया लाल कपूर के शब्दों में थीम का बादशाह था, उसके मन में कैसे नादिर और अनोखे खयाल अभिव्यक्ति के लिए न तड़प रहे होंगे!

बेदी आंखें बंद किये लेटा था और मेरे दिमाग में उसके साथ गुजारी गयी लगभग आधी सदी की जिंदगी, उसके लतीफे, चुटकुले, ठहाके, उसके पात्रों की हास्य उपजाने वाली फब्तियां, ट्रेजिक से ट्रेजिक पत्रों में भी हास्य उपजाने वाले जुमले घूम गये और मेरे दिमाग में बार-बार नकोदर (जिला जालंधर) के एक गुमनाम शायर का शेर आने लगा :

वीरानी है शिकस्तगी दिल की,
क्या इमारत गमों ने ढायी है!

मैं उसकी ओर देखता था और मेरे मन में कोई बार-बार दोहराता था—क्या इमारत गमों ने ढायी है—क्या इमारत गमों ने ढायी है! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

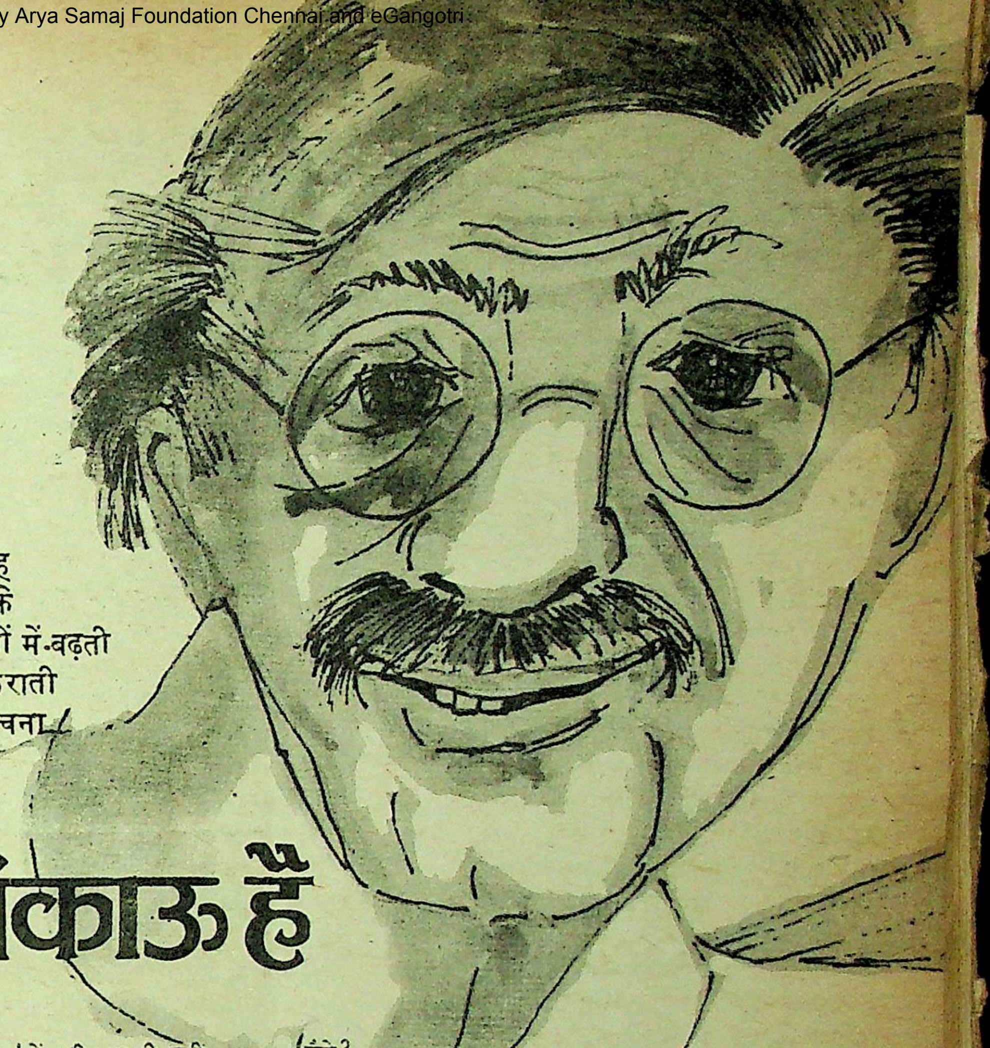

विकाऊ है एक बाप—उम्र इकहत्तर वर्ष, बदन इकहरा, दमे का रोगी, बच्चे तीन, कर्जदार सत्तर हजार का . . . क्या आप इसे जानते हैं..? या इसकी औलादों को जानते हैं. . . ? कहीं यह आपके ही मित्र के मित्र के मित्र के पिताश्री तो नहीं . . . ?— खून के रिश्तों में बढ़ती दूरी के आत्मघाती परिणामों से रूबरू कराती भविष्यदृष्टा कथाकार बेदी की सशक्त रचना/

एक बाप बिकाऊ है

देखी न सुनी यह बात जो 24 फरवरी के 'टाइम्स' में छपी. यह भी नहीं मालूम कि अखबारवालों ने कैसे छाप दी. क्रय-विक्रय के कॉलम में अपनी तरह का पहला ही विज्ञापन था. जिसने वह विज्ञापन दिया था, इरादे या उसके बगैर उसे एक पहेली का रूप दे दिया था. पते के सिवा उसमें कोई ऐसी बात न थी, जिससे खरीदनेवाले को कोई दिलचस्पी हो : बिकाऊ है एक बाप—उम्र इकहत्तर साल, बदन इकहरा, रंग गेंहुआ, दमे का रोगी—बॉक्स नं. एल-476, द्वारा 'टाइम्स'!

इकहत्तर बरस की उम्र में बाप कहां रहा—दादा-नाना हो गया वह तो?

उम्रभर आदमी हां हां करता रहता है, आखिर में नाना हो जाता है!

बाप खरीद लाये तो मां क्या कहेगी, जो विधवा है. अजीब बात है ना, ऐसे मां-बाप जो मियां-बीवी न हों!

एक आदमी ने उल्टे पांव दुनिया का सफर शुरू कर दिया है. आज की दुनिया में सब सच है भाई, सब सच है!

दमा फैलायेगा!

नहीं बे! दमा छूत का रोग नहीं.

है!

नहीं!

है!

उन दो आदमियों में चाकू चल गये. जो भी इस विज्ञापन को पढ़ते थे, बुड्ढे की सनक पर हंस देते थे. पढ़ने के बाद उसे एक तरफ रख देते और फिर उठाकर उसे पढ़ने लगते. जैसे ही उन्हें अपना आप अहमक मालूम होने लगता, वह इस विज्ञापन को अड़ोसियों-पड़ोसियों की नाक तले ठूंस देते—

एक बात है. . . . घर में चोरी नहीं होगी.

कैसे?

हां, कोई रातभर खांसता रहे. . . .

यह सब साजिश है नींद की गोलियां बेचने की!

फिर—एक बाप बिकाऊ है!

यों लोग हंसते-हंसते रोने के करीब पहुंच गये.

घरों में, रास्तों पर, दफ्तरों में बात डाक होने लगी जिससे वह विज्ञापन और भी विज्ञापित हो गया.

जनवरी, फरवरी के महीने प्रायः पतझड़ के होते हैं. एक-एक दारोगा के नीचे बीस-बीस झाड़ू देने वाले सड़कों पर गिरे सूखे-सड़े, बूढ़े पत्ते उठाते-उठाते थक जाते हैं, जिन्हें उनको घर ले जाने की भी इजाजत नहीं कि उन्हें जलायें और सर्दी से खुद को और अपने बाल-बच्चों को बचायें. इस पतझड़ और सर्दी के मौसम में वह विज्ञापन गर्मी पैदा करने लगा, जो आहिस्ता-आहिस्ता सेंक में बदल गयी.

कोई बात तो होगी?

हो सकता है, पैसे-जायदाद वाला. . . .

बकवास! . . . . . ऐसे में 'बिकाऊ' लिखता?

मुश्किल से अपने बाप से खलासी पायी है! बाप क्या था, चंगेज. . . हलाकू था साला!

तुमने पढ़ा मिसेज गोस्वामी?

धत्. . . . हम बच्चे पालेंगी सुधा, कि बाप? एक अपने ही वो कम नहीं गो—स्वामी हैं! . . . . ही-ही ही. . . . . !

बाप भी हरामी होते हैं. . . . .

बॉक्स एल-476 में चिट्ठियों का ढेर आया पड़ा था. उसमें एक ऐसी चिट्ठी भी चली आयी थी जिसमें केरल की किसी लड़की मिस उन्नी कृष्णन ने लिखा था कि वह अबू धाबी में एक नर्स का काम करती रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके एक बच्चा है. वह किसी ऐसे मर्द के साथ शादी की इच्छुक है जिसकी आमदनी समुचित हो और जो उसकी और बच्चे की मुनासिब देखभाल कर सके, चाहे वह कितनी उम्र का हो. उसका कोई पति होगा जिसने उसे छोड़ दिया था वैसे ही अबूधाबी के किसी शेख ने उसे उल्टा-पलटा दिया. चुनांचे अप्रासंगिक होने के कारण वह अर्जी एक तरफ रख दी गयी क्योंकि बिकाऊ बाप से इसका कोई संबंध न था. बहरहाल इन चिट्ठियों से यों मालूम होता था जैसे हैडले चेज, रॉबिन्सन इर्विंग और अगाथा क्रिस्टी के सब पढ़नेवाले इधर पलट पड़े हैं. वर्गीकृत विज्ञापन छापनेवालों ने जनरल मैनेजर को योजना पेश की कि विज्ञापनों की दर बढ़ा दी जाये. मगर नौजवान बुड्ढे या बुड्ढे नौजवान मैनेजर ने योजना को फाड़कर रद्दी की टोकरी में फेंकते हुए कहा— बकवास! . . एक पापुलर विज्ञापन के कारण दर कैसे बढ़ा दें?. . . . उसके हावभाव से मालूम होता था जैसे वह किसी भूल का निराकरण करने की कोशिश कर रहा है.

पुलिस पहुंची. उसने देखा, हिंदु कालोनी दादर में गंधर्वदास, जिसने विज्ञापन दिया था, मौजूद है और साफ कहता है कि मैं बिकना चाहता हूं. अगर इसमें कोई कानूनी अड़चन है तो बताइये—वह पान पर पान चबाता और इधर-उधर दीवारों पर थूकता जा रहा था. और अधिक छानबीन से पता चला कि गंधर्वदास एक गायक था, किसी जमाने में जिसकी गायकी की बड़ी धूम थी. बरसों पहले उसकी बीवी की मौत हो गयी, जिसके साथ उसकी एक मिनट न पटती थी. दोनों मियां-बीवी एक औंधी मुहब्बत में बंधे एक-दूसरे को छोड़ते भी न थे. शाम को गंधर्वदास का ठीक आठ बजे घर पहुंचना जरूरी था. एक-दूसरे के साथ कोई लेन-देन न रह जाने के बावजूद यह एहसास जरूरी था कि—वह है! गंधर्वदास की तान उड़ती ही सिर्फ इसलिए थी कि दमयंती, उसके संगीत से भरपूर नफरत करने वाली बीवी सिर्फ घर में मौजूद है और अंदर कहीं गाजर का हलवा बना रही है. और दमयंती के लिए यह एहसास संतोषदायक था कि उसका मर्द जो बरसों से उसे नहीं बुलाता, साथ के बिस्तर पर पड़ा, शराब में बदमस्त खर्राटे ले रहा है. क्योंकि खर्राटा ही एक संगीत था जिसे गंधर्व की बीवी समझ पायी थी.

बीवी के चले जाने के बाद गंधर्वदास को बीवी की तो सब ज्यादतियां भूल गयीं लेकिन अपने उस पर किये हुए अत्याचार याद रह गये. वह बीच रात के एकाएकी उठ जाता और गरीबान फाड़कर इधर-उधर भागने लगता. बीवी के बारे में आखिरी सपने में उसने देखा कि दूसरी औरत को देखते ही उसकी बीवी ने वावेला मचा दिया है और रोती-चिल्लाती हुई घर से भाग निकली है. गंधर्वदास पीछे दौड़ा. लकड़ी की सीढ़ी के नीचे कच्ची जमीन में दमयंती ने अपने आप को दफन कर लिया. मगर मिट्टी हिल रही थी और उसमें दराड़ें-सी चली आयीं थीं, जिसका मतलब था कि अभी उसमें सांस बाकी है. हड़बड़ाहट में गंधर्वदास ने अपनी औरत को मिट्टी के नीचे से निकाला तो देखा—उसके, बीवी के दोनों बाजू गायब थे, नाभि से नीचे शरीर नहीं था. इस पर भी वह अपने ठुंठ अपने पति के गिर्द डाले उससे चिपट गयी और गंधर्वदास उसी पुतले से प्यार करता हुआ उसे सीढ़ियों से ऊपर ले आया.

गंधर्वदास का गाना बंद हो गया!

गंधर्वदास के तीन बच्चे थे. थे क्या हैं. सबसे बड़ा एक नामी प्ले-बैक सिंगर है जिसके लौंग प्ले-रेकार्ड बाजार में आते ही हाथोंहाथ बिक जाते हैं. ईरानी रेस्तराओं में रखे हुए ज्यूक बाक्सों से जितनी फरमाइशें उसके गानों की होती हैं और किसी के नहीं. इसके विपरीत गंधर्वदास के शास्त्रीय गायन को कोई घास भी नहीं डालता था. दूसरा लड़का ऑफसैट प्रिंटर है और जस्त की प्लेटें भी बनाता है. प्रेस से वह डेढ़-दो हजार रुपया महीना पाता है और अपनी इटैलियन बीवी के साथ रंगरलियां मनाता है. कोई जिये या मरे, उसे इस बात का खयाल ही नहीं. जिस जमाने में गंधर्वदास का संगीत के साज बेचने का काम ठप हुआ तो बेटा भी साथ था. गंधर्व ने कहा, "चल, एच. एम. वी. के रेकार्डों की एजेंसी लेते हैं." छोटे ने जवाब दिया, "हां, मगर आपके साथ मेरा क्या भविष्य है?" गंधर्वदास को धचका-सा लगा. वह बेटे का भविष्य क्या बता सकता था? कोई किसी का भविष्य क्या बता सकता है. गंधर्वदास का मतलब था कि मैं खाता हूं तो तुम भी खाओ. मैं भूखा मरता हूं तो तुम भी मरो, तुम जवान हो, तुममें हालात से लड़ने की ताकत ज्यादा है. उसके जवाब के बाद गंधर्वदास हमेशा के लिए चुप हो गया. रही बेटी, तो वह एक अच्छे मारवाड़ी घर में ब्याही गयी. जब वे तीनों भाई-बहन मिलते तो अपने बाप को रंडुवा नहीं 'मर्द विधवा' कहते और अपनी इस नवोक्ति पर खुद ही हंसने लगते.

यात्रिक, एक कवि और एकाउंटेंट जो इस विज्ञापन के सिलसिले में गंधर्वदास के यहां गया था, कह रहा था, "इस बुड्ढे में जरूर कोई खूबी है, वर्ना यह कैसे हो सकता है तीन औलादों में से एक भी उसकी देखरेख न करे. क्या वे एक-दूसरे के इतने नजदीक थे कि दूर हो गये?" वह नहीं जानता था कि हिंदुस्तान तो क्या दुनिया भर में परिवार का विचार टूटता जा रहा है. बड़ों का आदर एक सामंती बात होकर रह गयी है. इसलिए सब बूढ़े किसी हाइड्रिक पार्क में बैठे दीर्घ प्रतीक्षा के शीत से ठिठुरे हुए हर आने-जानेवाले को शिकार करते हैं कि शायद उनसे कोई बात करे. वे यहूदी हैं, जिन्हें कोई हिटलर एक-एक करके गैस-चैंबर में धकेलता जा रहा है मगर धकेलने से पहले जंबूर के साथ उनके दांत निकाल लेता है जिन पर सोना मढ़ा है. या अगर कोई बच गया है तो कोई भांजा-भतीजा संयोगवश उस बूढ़े को देखने के लिए उसकी शुंडाकार अटारी में पहुंच जाता है तो देखता है कि वह तो मरा पड़ा है और उसकी पथरायी आंखें अब भी दरवाजे पर लगी हैं. नीचे की मंजिल वाले बदस्तूर अपना अखबार बेचने का कारोबार कर रहे हैं, क्योंकि दुनिया में रोज कोई न कोई घटना तो होती ही रहती है. डाक्टर आकर प्रमाणित करता है कि बूढ़े को मरे हुए पंद्रह दिन हो गये, सिर्फ सर्दी के कारण लाश गली-सड़ी नहीं. फिर वह भांजा या भतीजा कमेटी को खबर करके दृश्य-स्थल से टल जाता है कि कहीं अंतिम क्रिया-कर्म का खर्च उसे देना पड़े!

यात्रिक ने कहा, "हो सकता है, बुड्ढे ने कुछ संचय करने की बजाय अपना सब कुछ बच्चों पर ही लुटा दिया हो. संचित धन ही एक बोली है, जिसे दुनिया के लोग समझते हैं और उनसे ज्यादा अपने सगे-संबंधी. कोई संगीत में तारे तोड़ लाये, शिल्पकला में कमाल दिखा जाये, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं. फिर औलाद हमेशा यही चाहती है कि उसका बाप वही करे जिससे वह —औलाद खुश हो. बाप की खुशी किस बात में है, इसकी कोई बात ही नहीं और हमेशा नाखुश रहने के लिए अपने कोई-सा भी बेगाना बहाना गढ़ लेते हैं."

मगर गंधर्वदास तो बड़ा हंसमुख आदमी है, हर वक्त लतीफे सुनाता, खुद हंसता और दूसरों को हंसाता रहता है. उसके लतीफे प्रायः अश्लील होते हैं. शायद वे कोई नकाब-मुखौटे हैं जिनके पीछे वह अपनी कुंठाओं और यौन अतृप्तियों को छिपाता रहता है. या फिर सीधी-सी बात—बुढ़ापे में इंसान वैसे ही ठरकी हो जाता है और अपनी वास्तविक या काल्पनिक विजयों की अनुगूंज भी!

विज्ञापन के सिलसिले में आनेवाले कुछ लोग इसलिए भी बिदक गये कि गंधर्वदास पर पचपन हजार का कर्ज भी था. यह बात उसने विज्ञापन में नहीं लिखी थी और कदाचित उसकी ऐयारी का प्रमाण थी. इस पर एक जवान लड़की से आशनाई भी थी जो उम्र में उसकी अपनी बेटी रमा से छोटी थी. वह लड़की—देवयानी गाना सीखना चाहती थी जो गुरुजी ने दिन-रात एक करके उसे सिखा दिया और संगीत की दुनिया के शिखर पर पहुंचा दिया. लेकिन उनकी उम्रों में अंतर के बावजूद उनके संबंधों में जो आवेशपूर्ण बेचैनी थी, उसे दूसरे तो एक तरफ, खुद वे भी न समझ सकते थे. अब भला ऐसे आठों गांठ कुम्मैत बाप को कौन खरीदे!

गंधर्वदास संगीत सिखाते हुए यह भी कह उठता—मैं फिर गाऊंगा. वह पुनः पुनः यह बात शायद इसलिए भी कहता कि उसे खुद भी इसमें यकीन नहीं था. वह सुर लगाता भी तो उसे अपने सामने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवंगत पत्नी की रूह दिखायी देती—जैसे कह रही हो—अभी तक गा रहे हो?

इस अनोखी मांग और विचित्र स्वभाव के कारण लोग गंधर्वदास की तरफ यों देखते थे जैसे वह कोई बहुत चमकती-दमकती हुई चीज हो और जिसका नक्शा वहां से टल जाने के बाद भी काफी अर्से तक आंख के अंदर पर्दे पर बरकरार रहे और उस वक्त तक पीछा न छोड़े जब तक कोई अन्य भौतिक दृश्य पहले को धुंधला न दे.

किसी खुर्शीद आलम ने कहा, "मैं खरीदने को तैयार हूं बशर्ते आप मुसलमान हो जायें."

"मुसलमान तो मैं हूं ही."

"कैसे?"

"मेरा ईमान खुदा पर मुसल्लम है यानी पूरा है. फिर, मैंने जो पाया है उस्ताद अलाउद्दीन के घराने से पाया है."

"ऐहें. . .वह मुसलमान—कलमेवाला. . ."

"कलमा तो सांस है इंसान की जो उसके अंदर-बाहर निरंतर चल रही है. मेरा दीन संगीत है. क्या उस्ताद अब्दुल करीम का बाबा हरिदास होना जरूरी था?"

फिर खुर्शीद आलम का पता नहीं चला.

दो-तीन औरतें भी आयीं. लेकिन गंधर्वदास, जिसने जिंदगी को नौटांक बनाके पी लिया था, बोला, "जो तुम कहती हो, ऐन-मैन उससे उलट चाहती हो. कोई नया तजुर्बा जिससे बदन सो जाये और रूह जाग उठे, उसे करने की तुम में हिम्मत ही नहीं. दीन, धर्म, समाज-न जाने किन-किन चीजों की आड़ लेती हो, लेकिन बदन रूह को शिकंजे में कसके यों सामने फेंक देता है. तुम पलंग के नीचे के मर्द से डरती हो और उसे ही चाहती हो. तुम ऐसी कुंवारियां हो जो अपने दिमाग में पवित्रता ही की रट से अपना सतीत्व लुटवाती हो और वह भी बेमुहार. . ." और फिर गंधर्वदास ने एक शैतानी मुस्कराहट से कहा, "दरअसल तुम्हारे हिज्जे ही गलत हैं!"

उन औरतों को यकीन हो गया कि वे आदि माएं दरअसल बाप नहीं, किसी खुदा के बेटे की तलाश में हैं. वर्ना तीन-तीन, चार-चार तो उनके अपने बेटे हैं. माया की इस दुनिया में. . .

मैं उस दिन की बात करता हूं, जिस दिन बाणगंगा के मंदिर से भगवान की मूर्ति चोरी हुई. उस दिन पतझड़ बहार पर थी. मंदिर का पूरा अहाता सूखे-सड़े, बूढ़े पत्तों से भर गया. कहीं शाम को बारिश का एक छींटा पड़ा और चोरी से पहले मंदिर की ज्योतियों पर पतंगों ने उतनी ही उदारता से अपनी बलि दी, जिस उदारता से कुदरत उन्हें पैदा करती और फिर उनकी खाद बनाती है. यह वही दिन था, जिस दिन पुजारी ने पहले भगवान कृष्ण की राधा (जो उम्र में अपने प्रिय से बड़ी थी) की तरफ देखा और फिर मुस्कराकर मेहतरानी छब्बो की तरफ (जो उम्र में पुजारी की बेटी से छोटी थी) और वह पत्ते और फूल और बीज घर ले गयी.

मूर्ति तो खैर किसी ने सोने-चांदी, हीरे और पन्नों की वजह से चुरा ली, लेकिन गंधर्वदास को 'लारसन एंड लारसन' के मालिक ध्रुवे ने 'बेवजह' खरीद लिया. गंधर्वदास और ध्रुवे में कोई बात नहीं हुई. बूढ़े ने सिर्फ आंखों ही आंखों में उसे कह दिया—जैसे-तैसे भी हो, मुझे ले लो बेटे, बिना बेटे के कोई बाप नहीं हो सकता. इसके बाद ध्रुवे की आंख मिलाने, सवाल करने की हिम्मत ही न पड़ी. सवाल शर्तों का था, मगर शर्तों के साथ कभी जिंदगी जी जाये है? ध्रुवे ने गंधर्वदास का कर्ज चुकाया, सहारा देकर उसे उठाया और मालाबार हिल के दामन में अपने आलीशान बंगले 'गिरिकुंज' में ले गया, जहां वह उसकी तीमारदारी और खिदमत करने लगा.

ध्रुवे से उसके मुलाजिमों ने पूछा, "सर, आप यह क्या मुसीबत ले आये हैं? यह बुड्ढा, मतलब, बाबूजी आपको क्या देते हैं?"

"कुछ नहीं. बैठे रहते हैं आलथी-पालथी मारे. खांसते रहते हैं और

बेदी की लघु रचनाएं :

फूल

लोगों के घर कितने बेरौनक हैं.
उनमें प्यार नहीं, दौलत नहीं, फूल नहीं.

घर शर्त है वरना कोई आदमी इतना गरीब, इतना व्यस्त नहीं होता कि अपने घर के किसी कोने में फूल भी न उगा सके.

आमतौर पर लोग बीज इसलिए नहीं बोते कि शाम तक उसका फल पा सकेंगे.

मैं कहता हूं, जरा सब्र. . .

चौबीस घंटे में न तुम प्यार का सिला पा सकते हो न बीज का फल.

किसी नमदार धरती में बीज बो दो और भूल जाओ. जब तुम कोई और काम कर रहे होगे, बीज अपने आप फूटता रहेगा.

उस सुंदर प्रभात की कल्पना करो जब तुम इस संसार के घिनौने दृश्यों में से निकलकर इधर आ निकलोगे. तब एकाध फूल को अपनी ओर हुमकता पाओगे. □

प्रस्तुति : हंसराज रहबर

या फिर जर्दे-किवाम वाले पान चबाये जाते हैं. जहां जी चाहे थूक देते हैं; जिसकी आदत मुझे और मेरी सफाई-पसंद बीवी को अभी भी नहीं पड़ी, मगर पड़ जायेगी धीरे-धीरे. . .मगर तुमने उनकी आंखें देखी हैं."

"जी नहीं."

"जाओ, देखो, उनकी रोती-हंसती आंखों में क्या है? उनमें से कैसे-कैसे संदेश निकलकर कहां-कहां पहुंच रहे हैं?"

"कहां-कहां पहुंच रहे हैं?" जमनादास, ध्रुवे के मुलाजिम ने बिना इरादे माहौल में देखते हुए कहा, "आप तो वैज्ञानिक हैं!"

"मैं विज्ञान ही की बात कर रहा हूं जमना! अगर इंसान के जिंदा रहने के लिए फल-फूल और पेड़-पौधे जरूरी हैं, जंगल के जानवर जरूरी हैं, बच्चे जरूरी हैं तो बूढ़े भी जरूरी हैं, वर्ना हमारा इकॉलॉजिकल संतुलन नष्ट होकर रह जाये. अगर शारीरिक रूप में नहीं तो आत्मिक रूप से असंतुलित होकर इंसानी नस्ल हमेशा के लिए लुप्त हो जाये!"

जमनादास और अयावले भाऊ कुछ समझ न सके.

ध्रुवे ने बंगले में लगे अशोक के वृक्ष से एक पत्ता तोड़ा और जमनादास की तरफ बढ़ाते हुए बोले, "अपने पूरे विज्ञान से कहो कि यह ताजगी, यह लिखावट, यह प्रफुल्लता, और ये रंग पैदा करके दिखाये. . ."

अयावले बोले, "वह तो अशोक का बीज बोयें. . ."

"ऐहें!" ध्रुवे ने सिर हिलाते हुए कहा, "मैं बीज की नहीं, पत्ते की बात कर रहा हूं. बीज की बात करेंगे तो हम राम जाने कहां से कहां पहुंच जायेंगे."

फिर जमनादास के करीब होते हुए ध्रुवे बोले, "मैं तुम्हें क्या बताऊं जमना! जब मैं बाबूजी के चरण छूकर जाता हूं तो उनकी निगाहों का मर्म मुझे कितनी शांति, कितनी ठंडक देता है. मैं जो हर वक्त एक बेनाम डर से कांपता रहता था, अब नहीं कांपता. मुझे हर वक्त इस बात की तसल्ली रहती है— वह तो है! मुझे यकीन है, बाबूजी की आत्मा को भी कुछ ऐसा ही होता होगा!"

"मैं नहीं मानता सर, यह खालीपीली भावुकता है."

"हो सकता है," ध्रुवे भड़क उठता. हो सकता था वह जमनादास—अपने मुलाजिम को अपनी फर्म से डिसमिस कर देता. लेकिन बाप की आंखों के मर्म ने उसे यह न करने दिया. उल्टे उसकी आवाज में कहीं से कोई कोमल सुर चला आया और उसने बड़े प्यार से कहा, "तुम कुछ भी कह लो जमना, पर एक बात तो तुम जानते हो, मैं जहां जाता हूं, लोग मुझे सलाम करते हैं, मेरे सामने सिर झुकाते हैं, बिछ-बिछ जाते हैं."

ध्रुवे इसके बाद एकाएक चुप हो गया. उसका गला और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदी की लघु रचनाएं :

मंदिर

तू मंदिर की ओर जा रहा है?
यह मार्ग मत चुन. यह बहुत साफ और सीधा मार्ग है.
उस टेढ़े-मेढ़े, ऊंचे-नीचे मार्ग पर जा, जहां कीचड़ है, गंदगी है, लहू है.

तेरे पांव कीचड़ से लतपत हो जायेंगे, कपड़े गंदगी से सन जायेंगे, जिस्म लहू से लिथड़ जायेगा, पर तू मंदिर पहुंच जायेगा क्योंकि तेरा कद ऊंचा है और तुझे मंदिर के कलस दिखाई देते हैं.

तू अपना ख्याल न कर और पैरों के निशान बनाता चला जा. उन्हें देखकर लाखों राह भूले हुए मंदिर तक पहुंच जायेंगे, फिर मंदिर तुझे भी एक साफ-सुथरा स्थान दिखाई देगा.

यह साफ-सुथरा मार्ग चुनकर मंदिर की पवित्रता और महानता को कम न कर. □

प्रस्तुति : हंसराज रहबर

आंखें धुंधला गयीं. /

"सर, मैं भी तो यही कहता हूं—दुनिया आपके सामने सिर झुकाती है!"

"इसलिए," ध्रुवे ने अपनी आवाज पाते हुए कहा, "कहीं मैं भी अपना सिर झुकाना चाहता हूं. अथावले, जमनादास, अब तुम जाओ, प्लीज! मेरी पूजा में विघ्न न डालो. हमने पत्थर से खुदा पाया है!"

गिरिकुंज में लगे हुए आम के पेड़ों पर बौर आया. इधर पहली कोयल कूकी, उधर गंधर्वदास ने बरसों के बाद तान उठायी—

"कोयलिया बोले अंबुआ की डार. . ."

वह गाने लगे. किसी ने कहा, "आपका बेटा आपसे अच्छा गाता है."

"अईसा. . .?" गंधर्वदास ने बंबईया बोली में कहा, "आखिर मेरा बेटा है. बाप ने मैट्रिक किया है तो बेटा एम. ए. न करे?"

ऐसी बातें कहते हुए नासमझ, बेबाप के लोग गंधर्वदास के चेहरे की तरफ देखते कि उनकी झुर्रियों में कहीं तो जलन दिखायी दे. जब कोई ऐसी चीज नजर न आयी तो किसी ने लुक्मा दिया, "आपका बेटा कहता है, मेरा बाप मुझसे जलता है."

"सच?. . . मेरा बेटा कहता है. . ."

"हां, मैं झूठ थोड़े बोल रहा हूं."

गंधर्वदास थोड़ी देर के लिए खामोश हो गये, जैसे वह कहीं आत्माओं के लोक में चले गये हों और मां से बेटे की शिकायत की हो, बुढ़िया से कोई जवाब पाकर वह धीरे से बोले, "और तो कोई बात नहीं, मेरा बेटा—वह भी बाप है!. . ." वह फिर उन दिनों की तरफ लौट गये जब बेटे ने कहा था, "बाबूजी, मैं भी शास्त्रीय संगीत में आप जैसा कमाल पैदा करना चाहता हूं, मगर ढेर-सारा रुपया कमाकर." और बाबूजी ने बड़े स्नेह से बेटे के कंधे को थपथपाते हुए कहा था, "ऐसे नहीं होता राजू. . . या आदमी कमाल हासिल करता है या पैसे ही बनाता चला जाता है." जब दो बड़े-बड़े आंसू लुढ़ककर गंधर्वदास की दाढ़ी में अटक गये, जहां ध्रुवे बैठा था, उधर से रोशनी में वे फ्रिज हो गये, सफेद रोशनी जिनमें से निकलकर सात रंगों में बिखर गयी. . .

ध्रुवे को न जाने क्या हुआ, वह उठकर जोर से चिल्लाया, "गैट आउट!. . ." और लोग चूहों की तरह गिरते-पड़ते हुए भागे.

गंधर्वदास ने अपना हाथ उठाया और सिर्फ इतना कहा, "नहीं बेटे, नहीं."

उनके हाथ से कोई विद्युत धाराएं निकल रही थीं.

ध्रुवे जब 'लारसन एंड लारसन' में गया तो फिलिप, उसका वर्क्स मैनेजर कंप्यूटर को डाटा फीड कर रहा था. कंप्यूटर से कार्ड बाहर आया तो उसका रंग पीला पड़ गया. वह बार-बार आंखें झपक रहा था और कार्ड की तरफ देख रहा था. . .'लारसन एंड लारसन' को इकतालीस लाख का घाटा पड़ने वाला था. इस घबराहट में उसने कार्ड ध्रुवे के सामने कर दिया, जिसे देखकर उसके चेहरे पर शिकन तक न आयी. ध्रुवे ने सिर्फ इतना कहा, "कोई इन्फर्मेशन गलत फीड हो गयी है."

"नहीं सर. . .मैंने बीसियों बार चैक, क्रास-चैक करके इसे फीड किया है."

"तो फिर. . .मशीन है, कोई नुक्स पैदा हो गया होगा. आई. बी. एम. वालों को बुलाओ."

"मोदक—चीफ इंजीनियर तो साउथ गया है."

"साउथ कहां?"

"तिरुपति के मंदिर. . .सुना है उसने अपने लंबे, हिप्पी बाल कटवा कर मूर्ति को भेंट कर दिये हैं!"

ध्रुवे हल्का-सा मुस्कराया और बोला, "तुमने यह इन्फार्मेशन फीड की है कि हमारे बीच एक बाप चला आया है?"

फिलिप ने समझा, ध्रुवे उसका मजाक उड़ा रहे हैं या वैसे ही उनका दिमाग फिर गया है. मगर ध्रुवे कहता रहा, "अब हमारे सिर पर किसी का हाथ है, पुण्य-प्रताप है, और उसके परिणाम-स्वरूप दृढ़ संकल्प और साहस. . .मत भूलो, यह मशीन किसी इंसान ने बनायी है, जिसका कोई बाप था, फिर उसका बाप. . .और आखिर सब का बाप. . ."

फिलिप ने अपनी आंतरिक नाराजगी का मुंह मोड़ दिया, "क्या देवयानी अब भी बाबूजी के पास आती है?"

"हां."

"मिसेज ध्रुवे कुछ नहीं कहतीं?"

"पहले कहती थीं. अब वह उनकी पूजा करती हैं. बाबूजी दरअसल औरत की जात ही से प्यार करते हैं फिलिप. . .मालूम होता है उन्होंने कहीं प्रकृति के चितवन देख लिये हैं, जिनके जवाब में वह मुस्कराते तो हैं, लेकिन कभी-कभी बीच में आंख भी मार देते हैं!"

फिलिप का गुस्सा और बढ़ गया.

ध्रुवे कहता गया, "बाबूजी को शब्द—बेटी, बहू, भाभी, चाची, लल्ली, मैया बहुत अच्छे लगते हैं. वह बहू की कमर में हाथ डालकर प्यार से उसके गाल भी चूम लेते हैं और यों कैद में आजादी पा लेते हैं और आजादी में कैद. . ."

"देवयानी?"

ध्रुवे ने हिकारत से कहा, "तुम सेक्स को उतनी ही अहमियत दो फिलिप जितने का वह हकदार है. तीतर-बटेर बने बगैर उसे हवास पर मत छाने दो. . .संगीत शायद एक आड़ थी देवयानी के लिए. . ."

"मैं समझा नहीं सर?"

"बाबूजी ने मुझे बताया कि वह लड़की बचपन ही में आवारा हो गयी. उसने अपने बाप को कुछ उस अवस्था में देख लिया, जबकि वह किशोरावस्था से जवानी में कदम रख रही थी. जब से वह हमेशा के लिए आप ही अपनी मां हो गयी. बाप के मरने के बाद वह घबराकर एक मर्द से दूसरे, दूसरे से तीसरे के पास जाने लगी. उसका बदन टूट-टूट जाता था, मगर रूह थी कि थकती ही न थी."

"क्या मतलब?"

"देवयानी को दरअसल बाप ही की तलाश थी."

फिलिप, जो एक कैथेलिक था, एकदम भड़क उठा. उसकी भवें बालिश्त भर ऊपर उठ गयीं और फैली हुई आंखों से कोई नारकीय अग्नि लपकने लगी. उसने चिल्लाकर कहा, "यह फ्रॉड है मिस्टर ध्रुवे, प्योर, अन-अडल्ट्रेटिड फ्रॉड!. . ."

जभी ध्रुवे ने अपने खरीदे हुए बाप की नम आंखों को उत्तराधिकार में लिये, कंप्यूटर की पृष्ठभूमि में खड़े फिलिप की तरफ देखा और कहा, "आज ही बाबूजी ने कहा था, फिलिप! तुम इंसान को समझने की कोशिश न करो, सिर्फ महसूस करो उसे. . ." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदी की कथा रचनाएं : नौ

सिर्फ एक सिगरेट

एक सिगरेट. . . . सिर्फ एक सिगरेट कैसे बाप और बेटे के बीच एक पहाड़ की तरह खड़ी हो सकती है? . . . . सिगरेट, जिसे तनाव से मुक्ति पाने के लिए पिया जाता है, कैसे तनाव के समुद्र में एक आदमी को फेंक सकती है? वही सिगरेट कैसे राजेंद्रसिंह बेदी की कलम का सहारा पाकर एक महान कहानी का रूप ले लेती है ? . . . .इन सारे सवालों का जवाब है—सिर्फ एक सिगरेट.

संतराम की आंख खुली, तो उस वक्त चार बजे थे सुबह के. सोने से पहले वह एहतियात के साथ घड़ी सिरहाने के पास रखा करता था, लेकिन इस वक्त वह उसे उसके नीचे से मिली, जभी. . .जभी रातभर उसे अनहद नाद सुनाई देता रहा था. सोते में घड़ी कैसे भी सिरहाने के नीचे सरक जाये, तो उसकी साधारण-सी टिक- टिक भी अच्छे-खासे घड़ियाल की आवाज बन जाती है और चेतना की परतों में घुसकर 'अनहद धुनि' मालूम होने लगती है. आदमी को खामखाह अपने ब्रह्मज्ञानी होने का एहसास होता रहता है.

घड़ी का रेड़ियम बुड्ढा हो जाने की वजह से अपनी चमक खो बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, लेकिन वफादारी के सिलसिले में अब भी वक्त का अंदाजा देता जा रहा था. इस वक्त चार से कुछ ही मिनट ऊपर थे. संतराम ने आंखें झपकाते हुए फिर से अंधेरे में घड़ी देखने की कोशिश की. ऐसा कई बार होता है कि घड़ी की चाबी को आंखों के सामने बराबर न रखा जाये, तो पता चलता है, छह बज गये. आप दातुन-कुल्ला करके नहा-धो लेते हैं, पूजा-पाठ भी कर डालते हैं तो हैरान होकर देखते हैं, छह बजे हैं. . . संतराम को बत्ती जलाकर अपने और साथवाले बेडरूम में बच्चों की नींद में खलल डालने की जरूरत ही न पड़ी. क्योंकि घर के सामने की पुलिस चौकी में गारद ने चार बजा दिये थे. उसने सोचा, इतने सवेरे उठकर क्या करूंगा? चुनांचे उसने फिर से सोने की कोशिश की, लेकिन नींद अपना पेट पूरा भर चुकी थी और बुढ़ापे में तो एक बार जग गये सो जग गये, जैसे एक बार सो गये तो सो गये. उसने चादर उतारकर पायंती की तरफ फेंक दी और यों बिस्तर से निकल आया, जैसे तड़ाके में खुंब जमीन से बाहर चली आती है.

साथ के बिस्तर पर धोबन सो रही थी—एक पहलू पर. धोबन संतराम अपनी बीवी को कहता था. उसका नाम तो अच्छा-भला शांति था, लेकिन संतराम उसे इसी नाम से पुकारता था, क्योंकि वह लांड्री में कपड़ों की धुलाई के बहुत खिलाफ थी. घर में नौकर-चाकर, परमात्मा का दिया सब होते-होते वह रूमाल से लेकर भारी-भारी चादरें तक घर में ही धोती थी. जब थक जाती तो सबसे लड़ती और लांड्री खर्च से बहुत महंगी पड़ती. फिर रात को सोने से पहले वह हमेशा दबाये जाने की फरमाइश कुछ इस अंदाज से करती कि फरमाइश और हुक्म में कोई फर्क ही न रहता. दबाने की इस मुसीबत से संतराम तो क्या, धोबन के बच्चों तक को चिढ़ थी. कोई पांच नहीं तो दस मिनट दबवाये, लेकिन यह क्या कि कोई घंटे भर से इधर छोड़ने का नाम ही न ले. अजीब तमाशा होता था. आखिर दबानेवाले को खुद ही बेदम होकर लेट जाना पड़ता था. एक दिन बड़ी बेटी लाडो के साथ यही मामला तो हुआ. मां को दबाने के बाद वह हांफती-कांपती पलंग के एक तरफ जा गिरी और बोली, "अब तुम मुझे दबा दो, मम्मी!"

फिर इस दबने-दबवाने के सिलसिले में एक और बड़ी मुसीबत थी. धोबन को पता ही न चलता था कि उसके दर्द कहां हो रहा है. जहां हाथ रखो, दर्द हमेशा उससे थोड़ा परे होता था. और यों जगह ढुंढ़वाते-ढुंढ़वाते वह सारा बदन दबवा लेती थी. कोई कहे, यह उसकी चालाकी थी, तो ऐसी बात नहीं. उसे वाकई पता न चलता था और आखिर यह फैसला होता कि सारा बदन दुख रहा है. अच्छा, धोबन को दबवाने का ही नहीं, दबाने का भी शौक था. इशारा तो करो और वह तैयार. अलबत्ता यह काम उससे कोई कम ही करवाता था, क्योंकि उसका हाथ क्या था, मिस्तरी की पकड़ थी, जिससे वह अच्छे-भले आदमी के नट-बोल्ट कस देती थी. उसके बाजुओं की गिरफ्त न सिर्फ मर्दाना, बल्कि पहलवाना थी. यों मालूम होता था, जैसे वह आदमी को नहीं दबा रही. कोई बेड-कवर निचोड़ रही है. संतराम तो उसके धोबी पटरे से बहुत घबराता था. धोबन. . .हां, संतराम ने उसका यह नाम इसलिए भी रखा था कि बचपन में उसने बाइस्कोप में 'बारह मन की धोबन' देखी थी, जो अधनंगी हालत में पहलू पर लेटे, हाथ में मोर के पखोंवाला पंखा लिये एक भरपूर औरत मालूम होती थी. बाइस्कोप वाला अपने डिब्बे पर घुंघरू बजाता हुआ गली में आता था और आवाज देता था—"पेरिस की रात देखो. अपनी बारात देखो. . ." और फिर ट्यून बदलकर—"धोबन देखो बारह मन की गोरी-चिट्टी आहा तन की—आहा!". . .और सब बच्चे माओं से एक-एक पैसा लाकर उस जादू के बक्स वाले हाथ में देते हुए अपना-अपना चेहरा और आंखें बाइस्कोप में ठूंस देते थे और नज्जारों से पूरा-पूरा लुत्फ उठाते थे. पेरिस, बारात, सफेद रीछ, सरकस के जोकर के बाद जब धोबन आती थी, तो बच्चों को कुछ पता न चलता था. वे सोचते—धोबन क्यों इस बक्से में कैद कर रखी है? महीना पहले भी वह ऐसे ही लेटी हुई थी और आज भी लेटी हुई है. एक पहलू पर लेटे-क्या वह थक नहीं जाती? धोबन एक नामहसूस तरीके से बच्चों को अच्छी लगती थी, वह दिमाग में घुस जाती थी और कहीं पंद्रह-बीस बरस के बाद बाहर निकलती.

साथ के कमरे में लाडो, संतराम की शादीशुदा लड़की, जो एक रोज पहले अपनी ससुराल से आयी थी, सो रही थी—कुछ ऐसी बेखबरी में, जैसे उसका मियां ही न हो. उसका मुंह खुला हुआ था, क्योंकि रात के पहले पहर कमीने बाबी—उसके बच्चे—ने उसे सोने ही न दिया था और जब उसे नींद आयी, तो सांस लेने के लिए ज्यादा हवा की जरूरत पड़ी. लाडो जैसे शादी से छह बरस पहले थी, वैसे ही अब भी थी. बात करने में मुंह से पानी की फुहार सुननेवाले के मुंह पर पड़ती थी. जैसे वह रूठती, वैसे ही मन भी जाती. संतराम और धोबन को यही फिक्र थी—यह भाली-भोली बेटी हमारी बसेगी कैसे? उसे कोई 'मुश्किल पसंद' मियां मिल गया तो मुसीबत होगी. लेकिन उसे मियां जो मिला तो उसने कोई शर्त ही न पेश की. और न अब पेश करने का कोई इरादा रखता था. इधर इस घर में मां-बाप की अनबन, उधर लाडो की ससुराल में माता-पिता की मुहब्बत की ज्यादती या ऐसे ही दुनिया के शामिल डर ने दोनों मियां-बीवी को एक मजबूत रिश्ते में बांध रखा था. दोनों बहादुर इतने थे कि घर में चूहा निकल आने पर भी चीखते-चिल्लाते हुए एक-दूसरे की पनाह ढूंढ़ने लगते थे. संतराम उनके चिड़िया का दिल रखने पर बहुत खुश था, क्योंकि वह जानता था कि बहुत से नकारात्मक भाव जिंदगी के लिए कितने अच्छे होते हैं. मसलन डर, कंजूसी, शर्म वगैरह. लेकिन यह डर तो औलादों तक में पहुंच रहा था. लाडो के साथ उसका मुन्ना बाबी सोया हुआ था—मां के गले में बांह डालकर. जब जरा नींद खुलती, तो उसके कान मलने लगता. जाने यह क्या आदत थी उसको, जिसे सिर्फ उसकी मां ही बरदाश्त कर सकती थी. संतराम ने जब भी मुहब्बत में आकर नाती को साथ सुलाया तो थोड़ी ही देर में घबराकर उसे उठाते हुए फिर उसकी मां के साथ डाल दिया. सोते में बांह गले में डालने की बात इतनी न थी, अलबत्ता जब वह अपने लिजलिजे हाथों से कान मसलने लगता, तो अजीब-सी गुदगुदी होती और कभी यों मालूम होने लगता, जैसे कोई कानसलाई कान में घुस रही है.

छोटे दो बच्चे, लड़का और लड़की, अपने मामा के यहां गुड़गांव गये हुए थे. उनके बिस्तर खाली पड़े हुए बेकारी के आलम में छत को तका करते. बड़ा पाल यही था, जिसके खुर्राटे सुनाई दे रहे थे. कैसे वह देखते-देखते बड़ा हो गया था और संतराम के काबू से निकल गया था. पहले संतराम उसे उसकी गलती पर डांटता तो वह तरह-तरह से विरोध करता था. मां से लड़ने लगता, चाय की प्याली उठाकर खिड़की से बाहर फेंक देता, लेकिन अब वह बाप की डांट के बाद खामोश रहता था. यह बात संतराम को और भी खल जाती. संतराम चाहता था कि वह उसकी बात का जवाब दे और जब वह कहीं जवाब दे देता, तो संतराम और भी आग-बबूला हो उठता. वह चाहता था, बेटा उसकी बात का जवाब दे और नहीं भी चाहता था. वह नहीं जानता था कि आखिर वह चाहता क्या था. संतराम ने अपने बेटे पाल के सिलसिले में अपनी जिंदगी का आखिरी चांटा कोई छह बरस पहले मारा था, जो अब तक घिस चुका था. अब तो वह उससे डरने लगा था. आज भी पाल रोज की तरह रात को दो बजे आया था—डिप्लोमैट के दो-चार पैग लगाकर. ह्निस्की की असली महक तो घर के लोगों ने नींद में गुजार दी थी, लेकिन अब भी उसकी उलटी सांस में से बू आ रही थी.

पाल छब्बीस-सत्ताइस बरस का एक दुबला-पतला नौजवान था. अंदर ही अंदर कुढ़ते-खौलते रहने से उसके बदन पर बोटी न आती थी. इसके बावजूद चेहरे की बनावट और मूछों की हलकी-सी रेखा के साथ वह मर्द के रूप में स्वीकारने योग्य था. औरतें उसे बहुत पसंद करती थीं, क्योंकि वह बच्चों को बहुत पसंद करता था. वह शादी तो क्या, हर किस्म की जिम्मेदारी से घबराता था. लेकिन उसके अब तक कुंवारा रह जाने की एक वजह भी यह थी कि उसके साथ लौ लगानेवाली जितनी लड़कियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामूली चरित्रों की महत्वपूर्ण कहानी

■ बलराज वर्मा

कृश्न चंदर, मंटो, बेदी और इस्मत समकालीन उर्दू-कहानी की पहचान के वे चार रास्ते हैं जिनसे गुजरे बगैर उर्दू साहित्य की इस विधा का मूल्यांकन संभव नहीं. प्रेमचंद के द्वारा तैयार की गयी जमीन पर खड़े ये चारों स्तंभ कुछ मानों में एक दूसरे से कतई अलग हैं. इन चारों के कथासंसार एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी कहीं एक जगह वे जुड़ते भी हैं. जुड़ाव का वह बिंदु है—कला पर महारथ, जो हर कलाकार का सपना होता है मगर जिस तक कोई-कोई ही पहुंच पाता है.

राजेंद्र सिंह बेदी ने अपने पचास वर्ष के साहित्यिक जीवन में कुल सत्तर कहानियां लिखी हैं. यों तो उनकी हर कहानी साहित्य में अपना महत्व रखती है पर कुछ एक कहानियां ऐसी भी हैं जिन्हें उर्दू साहित्य में मील का पत्थर कहा जा सकता है; मसलन—'भोला', 'गर्म कोट', 'रहमान के जूते', 'जैनुल आबदीन', 'मन की मन में', 'लाजवंती', 'ग्रहण', 'मिथुन', 'सिर्फ एक सिगरेट', 'कल्याणी', 'मुक्तिबोध', आदि.

'सिर्फ एक सिगरेट' को उनकी श्रेष्ठ कहानी तो नहीं कहा जा सकता, पर इस किस्म की कहानी उर्दू या किसी भी भाषा के साहित्य में हर दृष्टि से ईर्ष्या का विषय जरूर मानी जायेगी.

प्रोफेसर आले अहमद सरूर ने बेदी की कला पर अपने एक लेख में यह स्वीकार किया है कि 'सिर्फ एक सिगरेट' एक ऐसी कहानी है, जो उन्हें उर्दू में 'कहीं और नहीं मिली'. दरअसल बेदी की बेहतर कहानियां घरेलू जिंदगी का ही सफल चित्रण हैं, और यह भी सच है कि आम घरेलू जीवन के विभिन्न पहलुओं का यह कलापूर्ण चित्रण अगर श्रेष्ठ नहीं तो सफल जरूर है. कहानी का नायक या केंद्रीय पात्र संतराम है जो

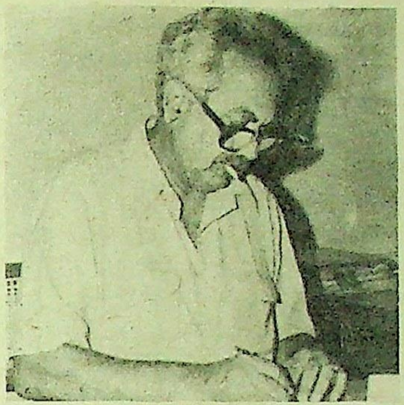

कभी एक सफल और खाता-पिता व्यापारी था, मगर कारोबार में घाटे की मार से अपने व्यवसाय में नीचे लुढ़क गया है. लिहाजा खासा परेशान है. अभाव से पैदा हुई लाचारी बुढ़ापे में और भी गहरी हो जाती है. जिंदगी की मजबूरियां आदमी को, खासतौर पर वृद्ध और हारे हुए आदमी को और भी भावुक बना देती हैं. वह दूसरों से कुछ ऐसी अपेक्षा कर बैठता है जो पूरी नहीं हो सकती.

थकी-हारी जिंदगी शीशे की तरह नाजुक होती है, जिसमें रिश्तों के हर बदले या बदलते रूपों में आदमी अपनी पराजय और मजबूरी को कुछ ऐसे ब्लो-अप में देखता है, जिनका सामान्य रूप से उसे अंदाजा नहीं होता और फिर अचानक वे सारी बातें उसके सामने आ खड़ी होती हैं. जो आम तौर पर आंखों से ओझल रहती हैं. संतराम ने जिंदगी में सिर्फ देना सीखा था. लेने में एक तरह से उसकी मानसिक मौत हो जाती है. बूढ़ा संतराम अपने बेटे से प्यार करता है और एक बाप की हैसियत से चाहता है कि बेटा भी उससे वैसा ही, उतना ही गहरा प्यार करे.

भरे-पूरे घर में बीवी-बच्चों के बावजूद वह अकेला है. अकेला और चुप, एक थका हुआ बूढ़ा. उसे शिकायत है कि उसकी बीवी उसकी जवानी की और बच्चे उसकी सफलताओं के ही साझीदार क्यों थे? वे उसका दर्द क्यों नहीं बांटते? ये कैसे रिश्ते हैं? वह अपने बेटे को डांटता है. गुस्से में ऐसी बातें कह जाता है जो उसके अवचेतन में भले ही लंबे समय से पल रही हों मगर जिन्हें जबान पर लाने का आदी वह कभी नहीं रहा. सब कुछ कह चुकने के बाद उसके दिल का गुबार कम हो जाता है और गलतफहमी भी दूर हो जाती है तो फिर पहले जैसा ही स्नेही और दयालू बाप बन जाता है.

संतराम के अलावा उसकी बीवी भी सशक्त पात्र है. अब वह केवल एक गृहस्थन है. परिवार की सुरक्षा और सेवा की भावना ही उसकी जिंदगी का आधार है. वह तो अपनी आदत से ही मेहनती और सफाई पसंद है. घर के काम को वह स्त्री का कर्तव्य और अधिकार, दोनों ही मानती है. मगर जब उसे अपने अंदर की मां जख्मी होती दिखाई देती है तो वह बिफर उठती है, "बेटे की यह हिम्मत कि तुम्हारे होते मुझे आंखें दिखाये!"

कहानी के पात्र बेहद मामूली चरित्र के हैं. अलग-अलग रख के देखें तो कहानी की घटनाएं भी कोई बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं. मगर उन्हें जिस अनुशासन के साथ कहानी में पिरोया गया है वह टैगोर के इस कथन की पुष्टि करता है कि कलाकार की हर कृति महत्वपूर्ण होती है.

संक्षेप में 'सिर्फ एक सिगरेट' एक वृद्ध पति-पत्नी, बल्कि मां-बाप की बेबसी और बुरे वक्तों की अत्यंत प्रभावशाली कहानी है. बेदी जिंदगी की छोटी-छोटी घटनाओं के चित्रण के महारथी हैं और अपने पात्रों के श्रेष्ठ चित्रकार. □

थीं सब शादीशुदा, एक-दो बच्चों की माएं थीं, जिनके मियां उनके बच्चों से प्यार करने, उनके साथ खेलने की बजाय खुद उनके सेक्स से खेलते थे.

चरित्र के हिसाब से पाल उमंग भरा था और महत्वाकांक्षी भी. उसमें अहम की भावना अथाह थी. यह अहम जिसकी वजह से उसकी नाक के नथुने फटे जाते थे और वह बड़े जोरदार तरीके से पाल आनंद के नाम से अपना परिचय कराता था, जैसे वह कोई परंपरा हो. यह परंपरा उसने कहां से पायी थी? आप बाप संतराम आनंद ही से न, जो एक बहुत बड़ी एडवरटाइजिंग एजेंसी का मालिक था और जिसने अपने बेटे को शहजादे की तरह से पाला था, उसकी मां—घोबन से चोरी-चोरी रकमें दी थीं और इसी कारण अपनी बीवी से अपने संबंध खराब कर लिये थे. फिर उसने पाल को सुरक्षा की छत दी थी—एक ऐसे मकान की छत, जिसमें तीन बेड रूम थे और एक शानदार ड्राइंग रूम, जिसमें उस्तादों की पेंटिंगें सजी थीं. फिर दिन में दो-दो बार बदलने के लिए कपड़े. ये सब अपने बाप से लेकर वह क्यों उसे ही भूल गया था. सिर्फ यही नहीं, उससे नफरत करने लगा था और यों पास से गुजर जाता था, जैसे उसका बाप नहीं, कोई कुरसी हो. अगर सरकार ने कोई नया कानून पास कर दिया, जिससे कंपनी फेल हो गयी, तो इसमें संतराम का क्या कसूर? जिंदगी में नफा होता है और नुकसान भी. यह क्या मतलब कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नफे के वक्त तो सब शरीक हो जायें और नुकसान के वक्त न सिर्फ अलग हो बैठें, बल्कि गालियां भी दें? लेकिन इसमें पाल का ज्यादा कसूर न था. वह आजकल के जमाने का लड़का था और सिर्फ उसी शख्स की इज्जत कर सकता था, जिसके पास पैसा हो या उसके ढेर सारे पैसे बनाने, बिल्डिंग खड़ी करने और इंपाला कार खरीदने की संभावना हो. एक बार संतराम के सवाल पर पाल ने यह बात कह भी दी थी, जिससे बूढ़े को बहुत ठेस लगी. उसके अंदर क्या कुछ टूट गया, इसका खुद उसे भी अंदाजा न था. उसका कितना जी चाहा था कि वह कहीं चोरी-चारी करके, डाका डाल के या बैंक होल्ड-अप करके लाख रुपया बनाये और उसे बेटे के पांव में फेंककर उसकी और उसकी मां की नजरों में अपना खोया हुआ सम्मान फिर से प्राप्त कर सके. लेकिन लाख रुपया खुले-खुले नहीं, शातिराना डाके से बनता है, जिसकी योग्यता संतराम में न थी. जब घाटा हुआ तो धोबन या लाडो या पाल में से किसी ने इतना भी तो न कहा—"ए जी या पप्पा, कोई बात नहीं, ऐसा हो जाता है. आप जी मैला क्यों करते हैं. जैसे खोया है, ऐसे ही पा भी लिया जायेगा." जो पैसा बनाने निकलते हैं, खो भी देते हैं और यह जरूरी नहीं कि हर नुकसान उठाने वाला बेवकूफ होता है. यह तो वही बात हुई, जैसे हर पैसा बनाने वाला अकलमंद होता है. क्यों सबने उसे बूढ़ा और सठियाया हुआ समझ लिया और बीसियों बार उसकी तरफ देखे बगैर पास से गुजर गये थे और यह समझने पर उसे मजबूर कर दिया था कि वह इस दुनिया में अकेला है. इसका तो यही मतलब हुआ न कि अगर फिर से उसकी माली हालत अच्छी हो जाये तो वह इन गुजरी सब बातों को दिल में रखकर एक हंटर हाथ में पकड़ ले और किसी भी इनायत से पहले बीवी और बच्चों को मार-मारकर नीला कर दे. नहीं, यह शौहर और बाप का कर्त्तव्य नहीं. लेकिन यह क्यों समझ लिया जाये कि बाप का कर्त्तव्य प्यार देना ही है, लेना नहीं? गोया उसे प्यार की जरूरत ही नहीं होती.

शायद यह सब इसीलिए था कि संतराम ने जिंदगी में सिर्फ देना ही सीखा था और अब यह उसकी आदत हो गयी थी. वह जब देता था, तो जीता था. लेने में उसकी रूहानी मौत हो जाती थी. मालूम होता था, उसे कारोबार में घाटे का इतना गम नहीं, जितना इस बात का है कि अब वह दे नहीं सकता. और जब घर के लोग चुपके से पास से गुजर जाते थे, तो वह उनकी खामोशी का अजीब उलटा-सीधा मतलब निकालता था. वह न जानता था कि लेने वालों को भी आदत पड़ सकती है—लेने की. फिर देना लेने वाले की सख्सियत को कितना कुचल सकता है, इसका संतराम को अंदाज न था. इस सिलसिले में वह बहुत निर्दयी सिद्ध हुआ था. उसने कई बार उधार लेकर भी बीवी-बच्चों को तोहफे दिये थे, जो उन्होंने लेकर रख लिये और बेशऊरी की खिड़कियों में से बाहर झांकने लगे. किसी ने शुक्रिये का एक शब्द भी तो न कहा और न कृतज्ञता की नजरों से उसकी तरफ देखा. सबने कितने कमीने और बुजदिलाना तरीके से अपनी मुहब्बत रोक ली थीं या शायद संतराम को अपने घाटे का इस कदर एहसास हो गया था कि घर के लोगों की निगाहों में उसे अपने लिए अपमान के सिवा और कुछ दिखाई ही न देता था.

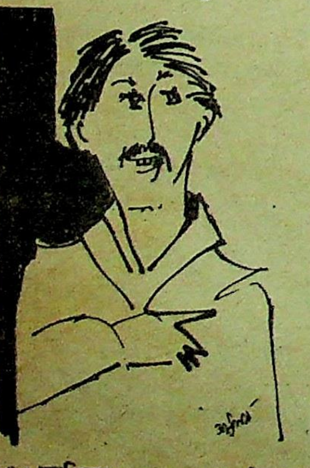

धोबन की चौबीस घंटे की नैगिंग और नसीहतों की संतराम को इतनी परवाह न थी, क्योंकि वह अनपढ़ और बदजबान होने के बावजूद मेहनती बहुत थी और अपनी सफाई-पसंद तबीयत से बहुत सी चीजों की पूर्ति कर देती थी. लेकिन एक रात बुड्ढे से प्यार के क्षणों में उसने होंठ चुरा लिये, क्योंकि संतराम के मुंह से सिगरेट की बू आती थी लेकिन वह तो बचपन ही से सिगरेट पीता था. अब सदियों के बाद यह बू कैसी? शायद वह इसी घाटे की बू थी, या शायद धोबन बूढ़ी हो गयी थी और ठंडी और खुश्क, क्योंकि यह जवानी और उसकी गर्मी ही है, जिसमें बू उड़ जाती है और भूमंडल की सब खुशबुओं पर छा जाती है. लेकिन अगर धोबन ठंडी और खुश्क और बूढ़ी हो गयी थी, तो वह खुद भी तो जवान न रहा था—संतराम. क्यों उसे इस उम्र में होंठों की तलब थी? बूढ़े और बेकैफ होंठों की, जिनमें रस नाम को न था. उन पर तो सिर्फ ज़ली-कटी और कोसने के सिवा और कुछ आ ही न सकता था. धोबन सीधी-सादी नादान औरत तो यह भी न जानती थी कि जब होंठ चुरा लिये जायें, तो मर्द पर क्या बीत जाती है. संतराम उन्हीं की तलाश में रूलकर उन होंठों पर अपने होंठ जा रखता है, जिन पर सिवा दुर्गंध के और कुछ नहीं होता.

या शायद धोबन बाइस्कोप की धोबन पर 'मीनापोज' चला आया था और उसने पहलू बदल लिया था और अपनी सेज से उठकर मोरपंख को हाथ से फेंकती हुई, देखनेवालों की तरफ से मुंह मोड़कर बैठ गयी थी. न वह जादू के डिब्बे वाला रहा था और न वे मासूम देखनेवाले. या खुद संतराम पर वह वक्त चला आया था जबकि जवानी एक बार फिर लौट आती है और आदमी कई बार बदनामी से बाल-बाल बचता है. पहले की-सी ताकत के साथ शऊर और तजरबा भी शामिल हो जाते हैं और एक परिपक्वता और प्रौढ़ता पा जाने से आदमी खुद ही अपने आप में सड़ांध पैदा कर लेता है. और थोड़े पानी वाले पोखर की कीचड़ में भैंस की तरह लोटने लगता है. या शायद इसकी वजह भी वही घाटा था, जो संतराम ने अपने कारोबार में खाया था और आर्थिक रूप में अपने आपको असुरक्षित पाने का एहसास मुहब्बत में असुरक्षित होने के एहसास में बदलकर रह गया था.

लाडो की तो खैर कोई बात ही न थी, वह तो ब्याही-बरी गयी और अपने घर जा बसी. वह तो अब 'बाबुल के आंगन की चिड़िया' थी, जो कहीं भूले हुए दानों को चुनती हुई उड़ जाती थी. लेकिन पाल तो यहीं था और उसे यहीं रहना था—इसी घर में, इसी छत के तले, जहां उसे बहू को लाना और बसाना था. कहीं और घर ले लेने से तो बाप के घर की छत नहीं बदलती. वह क्यों चंद बातों को नहीं समझता या समझना ही नहीं चाहता? क्यों उसके पास अपने बहन-भाइयों, अपने मां-बाप के लिए चंद मिनट भी न थे? अमेरिकन फर्म में एक्जीक्यूटिव हो जाने से क्या वह खुदा हो गया था? क्यों वह उस फर्म के जरिये से प्राइवेट कॉन्ट्रेक्ट लेने और यों पैसा पैदा करने में कोई ऐब न समझता था? वह कभी तो बाप से बात करता. बाप उससे पैसा तो न मांगता था? वह तो सिर्फ यही चाहता था कि उसका बेटा उसके पास बैठे. दो-तीन जिस्म इकट्ठे हों जो एक-दूसरे से निकले हैं. बदन, सिर्फ बदन को स्पर्श हो. यह भी न हो तो आंखें मिलें, जो बाप ही पर नहीं, पुरखों पर गयी हैं. पास बैठकर वे आवाज की नयी तालीम की बातें करें, जिससे पुराने—बहुत पढ़े-लिखे आदमी भी पीछे रह गये हैं. कुछ उनकी दुनिया का पता चले, कुछ अपनी दुनिया उन्हें दिखाई जा सके. उससे सीखें और उसे बता भी सकें कि सिर्फ तालीम ही बस नहीं, तजरबा भी जरूरी है और चंद हालात में जेम्स बांड के इल्म से बहुत ऊपर होता है. वह कभी कुछ तो मांगे, और कुछ न सही, तो मशवरा ही सही. क्यों वह एकाएकी इस कदर खुद-मुख्तियार और निर्लिप्त हो गया है? यह दलील काफी नहीं कि वह बड़ा होकर अब मां-बाप पर किसी किस्म का बोझ नहीं बनना चाहता. बोझ ही की बात है, तो वह अब भी बोझ है. कैसे वह कपड़े उतारकर धोबन के सामने फेंक जाता है और चूंकि घर में कुछ पैसे देता है, इसलिए मां मां नहीं रही, सचमुच की धोबन हो गयी? घर में बीसियों मेहमान आते-जाते हैं. उन्हें एयरपोर्ट से लेना या गाड़ी पर छोड़ने जाना सिर्फ मां-बाप ही का फर्ज है? और कुछ नहीं, तो लाडो ही को मिलने, लेने चला जाये. वह अपनी बेटी है, तो उसकी भी बहन है. अगर पाल यह सब हरकतें नासमझी के आलम में करता, तो कोई बात नहीं थी, लेकिन वह तो बला का जहीन था और एक पल में हर मामले की तह तक पहुंच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था. पार साल जब एक निहायत अमीर मां-बाप की इकलौती बेटी से उसका रिश्ता होने की बात चली, तो खट से उसने इनकार कर दिया और बोला, "दस साल मुझे आपके चक्कर से निकालने में लगे हैं, पप्पा! आप चाहते हैं, मैं और दस साल एक अमीर आदमी की इकलौती बेटी के चक्कर से निकलने में गुजार दूं?"

कितने पते की बात थी. संतराम तो इसे सुनकर चकित हो गया था. उसे इस बात का गौरव भी हुआ कि वह मेरा बेटा होने के नाते स्वाभिमानी स्वभाव का है, और अफसोस भी. अफसोस इसलिए कि बाप के चक्कर से निकलने का क्या मतलब? क्या बेटा बाप के चक्कर से निकल सकता है, या बाप बेटे के चक्कर से? क्या वे एक-दूसरे से कभी अलग न हो सकने वाला हिस्सा नहीं? क्या महाद्वीपों का फासला होने पर भी वे एक-दूसरे से दूर होते हैं? आखिर कौन-सा वह अंधा है, जिसे वह डोर दिखाई नहीं देती, जो बाप बेटे से वक्ती तौर पर या हमेशा के लिए जुदा होते हुए अपने पीछे छोड़ता और छोड़ता ही चला जाता है? बेटा चाहे बाप के जाने के बाद यही कहे कि मेरा बाप नालायक आदमी था, हजारों का कर्ज मुझ पर छोड़कर चलता बना. इस पर भी संबंध तो रहता ही है ना?—नालायक बाप और लायक बेटे का संबंध. मैं तो मर ही नहीं सकता, जब तक अपनी औलाद के लिए कुछ छोड़कर न जाऊं. ऐसा हुआ, तो इनकी मां धोबन तो मुझे वहां खुद के घर तक न छोड़ेगी और मेरी रूह का तौलिया तक निचोड़ डालेगी. लेकिन मेरे बाप ने मेरे लिए क्या छोड़ा था? इस पर भी उनकी इज्जत मेरे दिल में कभी कम नहीं हुई. क्या पैसा और जायदाद छोड़ने से ही कोई बाप कहलाने का हकदार होता है? यह बात तो आंकड़ों ही से गलत है. एक बाप कर्ज में मरता है, जभी दूसरा जायदाद बना सकता है ना? खैर, मेरा तो तुगलक रोड पर एक बंगला है. क्या हुआ, घाटे के बाद उस पर थोड़ा पैसा ले लिया? क्या मैं इतना ही गया-गुजरा हूं कि मरने से पहले उसका रहन भी न छुड़ा सकूं? फिर गांव जगदल में जमीन है दो सौ बीघे, जिसमें से कुछ बड़ों की है और कुछ मैंने अपने पैसे से बनायी है. क्या यह मेरी हिम्मत नहीं कि इतनी बड़ी मुसीबत आ पड़ने पर मैंने उसका एक इंच तक नहीं बेचा? मैंने इसीलिए नहीं बेचा, ताकि मेरे पुरखों की रूह को तकलीफ न हो और मेरे बेटे मुझे कोसने न दें. फिर बीमा है. बहुत टूट आयी तो खुदकशी करके बीवी-बच्चों को पैसा दिलवा सकता हूं. . .जभी संतराम को अपना बाप याद आया और उसकी मौत का वक्त, जिसमे सदमे की हद थी और उसके बीच एक अजीब-सी रहस्यमयी खुशी भी कि अब तो भी अच्छा-बुरा करेंगे, अपना करेंगे. और पाल के सिलसिले में इस बात ने संतराम को एक अजीब तरीके से मुक्त कर दिया—आखिर कौन-सा बेटा है, जो अपने दिमाग के किसी कोने में अपने बाप की मौत की ख्वाहिश ने लिये बैठा हो?

संतराम को एक अजीब-सी शांति का अनुभव हुआ. साथ के कमरे में आकर उसने जीरो पावरवाला बल्ब जलाया और उसकी मद्धिम-सी रोशनी में लाडो, उसके बच्चे, बीवी और फिर पाल का चेहरा देखा और कुछ देर खड़ा देखता रहा. वह अपने बेटे में जी रहा था और फिर अपने पोते, पड़पोते में. . .

जभी संतराम को एक सिगरेट की तलब हुई.

अरे यार, सिगरेट भी क्या चीज है. जिसने भी इसका आविष्कार किया, हद कर दी. ज़िंदगी का नन्हा-सा साथी, जो आपके एकाकी क्षणों में किसी दूसरे की मौजूदगी का एहसास दिलाता रहता है, जिसके दम से आप कभी अपने को अकेला महसूस नहीं करते. बल्कि सिगरेट तो खुद एक जिंदगी है, जिसका एक किनारा जिंदगी ही की तरह से धीरे-धीरे सुलगता और दूसरा मौत के मुंह या मुंह की मौत में पड़ा होता है. वह आपकी हर सांस के साथ जीता और मरता हुआ खुद राख हो जाता है, लेकिन आपके बिखरे हुए खयालों को एक नुक्ते पर समेट लाता है. आप चंद ऐसे भेद समझ चुके हैं, जिनके बाद और कुछ समझने की जरूरत ही नहीं रह जाती. लोग कहते हैं, इससे कैंसर हो जाता है. हुआ करे. जो लोग सिगरेट नहीं पीते, वही कौन सा उम्र-पट्टा लिखाकर लाये हैं? दुनिया के हर व्यक्ति को आखिर कोई न कोई बहाना तो मौत को देना ही है. सिगरेट का बहाना क्यों न हो.

रात जब संतराम घर लौटा था तो सिगरेट लाना भूल गया था और इस वक्त साढ़े चार बजे दूकानें बंद थीं. संतराम की तलब खुली, तो खुलती ही जा रही थी. सामने बेटे पाल के सिगरेटों का पैकेट पड़ा था, जिसके ऊपर माचिस रखी थी. पाल शहजादा होने के कारण स्टेट एक्सप्रेस से इधर की सिगरेट ही न पीता था, हालांकि उसके बाप संतराम को चारमीनार से लेकर कैंची और गोल्ड फ्लेक तक सब चलते थे. स्टेट एक्सप्रेस पी लूं? क्या जरूरत है? क्या मैं छह साढ़े छह बजे तक इंतजार नहीं कर सकता, जबकि पान-बीड़ी की दूकानें खुलने लगती हैं? लेकिन इंतजार करने दे, तो फिर वह सिगरेट नहीं, दूध का गिलास हुआ. संतराम का हाथ पैकेट की तरफ लपक गया. जीरो पावर बल्ब की रोशनी में उसने देखा, पैकेट में सिर्फ दो ही सिगरेट थे. एक तो पाल को बाथरूम के लिए चाहिए ही था, और दूसरा? क्या पता एक सिगरेट से उसका काम न चलता हो और दूसरे की भी जरूरत महसूस होती हो—इस वक्त नहीं, तो शेव के बाद सही, या नाश्ते के बाद. इस इलाके में स्टेट एक्सप्रेस कहां मिलते थे, जो उड़ा लेने के बाद नौ-दस बजे से पहले चोरी-चुपके रख दिये जायें, जबकि पाल उठता था. रख भी कैसे दिये जायें. क्योंकि इन सिगरेटों के लिए कनॉट प्लेस जाना और आना पड़ता था, जिसका मतलब था, आधा गैलन पैट्रोल फूंक देना—एक सिगरेट के लिए. इससे अच्छा है, छह-साढ़े छह: बजे तक इंतजार कर लिया जाये.

लेकिन साहब, सिगरेट जब बुलाता है, तो इतनी जोर की आवाज देता है कि कानों के पर्दे फट जाते हैं. वह आवाज न पीने वालों को सुनाई नहीं देती. उनके कान सुर में नहीं होते. क्यों न भीकू—अपने नौकर—से सिगरेट ले लिया जाये? वह तो बीड़ी पीता है. बीड़ी ही सही. लेकिन भीकू को उसकी कुंभकरनी नींद से जगाने का मतलब तो यह हुआ कि पूरा पहाड़ खोदो और फिर उससे एक कंकरी की फरमाइश करो. क्योंकि भीकू हमेशा हड़बड़ाकर 'क्या हुआ. . .क्या हुआ' कहता हुआ उठता था, जिससे घर के सब लोग जग जाते थे. इस कमीने की नींद बुरी लतों की वजह से कभी न पकती थी. अरे हां, बाहर चौकीदार भी तो है. संतराम ने दरवाजा खोलकर झांका और बत्तियों की रोशनी में इधर-उधर देखा, चौकीदार का कहीं तुख्म भी नजर न आता था. पौने पांच बजे थे और वह अपनी समझ में पांच बजाकर अपनी ड्यूटी पूरी करते हुए किसी चोर के साथ जा सोया था. बेकार ही हम लोग उसे पैसे देते हैं. कौन सा डाका पड़ने वाला है. जबकि सामने पुलिस की चौकी है? भीकू, चौकीदार या चौकी के किसी संतरी से बीड़ी मांगने से तो यही अच्छा है कि अपने बेटे का स्टेट एक्सप्रेस पिया जाये, उसे बुरा तो लगेगा, मगर जो है देखा जायेगा.

चुनांचे संतराम ने पैकेट उठाया और एक सिगरेट निकालकर सुलगा लिया.

एक ही कश से संतराम की बेचैनी आधी रह गयी थी, दूसरे कश से एक चौथाई. इस हिसाब से तो तीसरे-चौथे कश से पूरी तसल्ली हो जानी चाहिए थी, लेकिन सिगरेट का भी अजीब हिसाब-किताब होता है, जैसे बेचैनी का अपना लॉजिक. चौथे कश के बाद बेचैनी के कम होने की रफ्तार घट जाती है और सिगरेट जलने की ज्यादा बढ़ जाती है. बहरहाल बहुत मजा आया. स्टेट एक्सप्रेस इतना स्ट्रांग सिगरेट तो नहीं, जितना चारमीनार, मगर अच्छा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरा सिगरेट पी चुकने के बाद संतराम को महसूस हुआ कि उसने बुरा किया. क्या वह थोड़ी देर के लिए एक सिगरेट के बगैर न रह सकता था? नहीं, जवानी में आदमी अपने हवास पर काबू रख सकता है, बुढ़ापे में नहीं. आखिर बेटे का सिगरेट पिया है ना? मुझे खुश होना चाहिए और अगर वह मेरा बेटा है, तो उसे भी. कैसा मजा आया. छोटी चोरी में बहुत मजा आता है. जभी बाबी के बड़बड़ाने की आवाज आयी—"मारूंगा, मैं तुमको मारूंगा." वह सपने में किससे लड़ रहा था? लाडो ने आधे सोये, आधे जगे आलम में उसे थकपना शुरू कर दिया—"सो जा, बाबी, सो जा!" बाबी सो गया और वह भी सो गयी. पाल को कुछ पता न था. उसके खुर्राटे तो जा चुके थे, अलबत्ता नाक में कोई चीज अड़े होने के कारण सीटी-सी बज रही थी. जभी अंदर से घोबन की आवाज आयी, "सिगरेट पी रहे हो?"

"हां," संतराम ने वहीं से कहा.

जिसके जवाब में वह बोली, "सुबह ही सुबह शुरू हो जाते हो, दिन तो चढ़ने दो. . .यों कलेजा जलाने से बीमार होगे कि नहीं होगे."

संतराम ने दिल ही दिल में कहा, "मेरी बीमारी की जैसे बहुत परवाह है. ये घर के लोग जब परवाह करनी होती है, तो नहीं करते और जब नहीं करनी होती, तो करने लगते हैं. उसने अंदर के कमरे की तरफ मुंह करके सिर्फ इतना कहा, "तुम सो जाओ, अभी सवा पांच हुए हैं."

घोबन की आवाज उसकी अंगड़ाई में से छनकर आयी, "नहीं, मुझे हीटर लगाना, पानी गर्म करना है. बहुत कपड़ों का ढेर है. . ."

जभी घोबन के उठने की आवाज आयी. हां साहब, जब औरतें उठती हैं, तो वे इस बात का रख-रखाव नहीं करतीं कि उनकी खटपट से कोई डिस्टर्ब होगा. वह बिस्तर की चादर को छांट रही थी जैसे उस पर कहीं रेत आ पड़ी हो. फिर अलमारी की 'कैं' सुनाई दी और उसमें से दूध के लिए पैसे निकले, फिर सैंडिल की खटखट, जो बरसों पहले अच्छी लगती और दिमाग में फितूर पैदा करती थी, अब यों मालूम होता था, जैसे हथौड़े पड़ रहे हैं.

चादर छांटते हुए घोबन की आवाज आयी, "ओफ. . .ओफ दिमाग जल गया है. सिगरेट की बू से."

"अच्छा. . .अच्छा." संतराम ने कहा, "तुम्हें हर वक्त बू ही आती रहती है."

घोबन को वाकई बहुत बू आती थी, जो शायद उम्र का तकाजा था. चौथे कमरे में कोई सिगरेट पिये, उसे वहीं से पता चल जाता था, ऐसे ही व्हिस्की, शराब का, चाहे किसी ने सिर्फ, चक्खा ही हो उसे.

सिगरेट. . .दरअसल मर्द और औरत के मुंह की बू को एक होना चाहिए, वरना सब तबाह हो जाता है. इस तबाही के कारण ही संतराम ने अपनी टाइपिस्ट डाली को पहले सिगरेट पिला लिया था.

पाल उठेगा तो क्या कहेगा? यों एक सिगरेट पी लेने में तो कोई बात नहीं, लेकिन किसी क्रिया, किसी स्वाद की पूर्ति न पाना बुरा है. यह ऐसे ही है जैसे दो मुहब्बत करनेवालों में कोई तीसरा आ जाये. फिर पाल कई बातों में किस कदर कमीना है. एक बार उसका जूता पहन लिया, तो उसने कितनी गड़बड़ की थी. उसने जूते को एकदम फेंक ही दिया था और कहने लगा था, "मेरे और पप्पा के पैर एक हैं क्या?" अब यह खुल गया है और मेरे काम का नहीं रहा." सुनकर संतराम को बहुत दुःख हुआ था. एक बार बेटे का जूता पहन लिया, तो क्या हो गया? बीसियों बार उसने मेरी चप्पल पहनी है, मैंने तो कभी कुछ नहीं कहा उलटे मुझे खुशी हुई, एक एहसास के साथ कि मेरे बेटे ने मेरा जूता पहना है. और बड़ों का यह कहना भी दिमाग में आया कि जब बाप का जूता बेटे को बराबर आ जाये, तो फिर उसे कुछ नहीं कहते. चुनांचे तब से मैंने सब कहना-सुनना छोड़ दिया. नहीं, एक बार उसने किसी स्मगलर से अमेरिकी जर्किन खरीदी थी, जो मुझे बहुत अच्छी लगी थी. पाल को भी अच्छी लगी थी, जभी तो उसने खरीदी. लेकिन मैं हमेशा की तरह, अपने बुढ़ापे के कारण, उसे पहनने को जज्बे को रोक न सका. चुनांचे मैंने पहन ली. उसके रंग बड़े शोख थे. और मुझे उसे पहनने में बहुत मजा आया. लेकिन पहले तो घोबन ने मेरे मजे को किरकिरा किया—वह मुझे देखकर हंस दी.

"क्या हुआ?" मैंने पूछा.

वह अंदर ही अंदर अपनी हंसी दबाते हुए बोली, "कुछ नहीं. . ." और फिर रह भी न सकी और कहने लगी, "कैसे घूम रहे हो, जैसे देसी मुर्गा विलायती मुर्गी के इर्द-गिर्द घूमता है."

वह जज्बात का धोबी-पटरा था, खैर.

लेकिन रही सही कसर पाल ने पूरी कर दी. मैंने अपना शौक पूरा करने के बाद उस जर्किन को बड़ी एहतियात से वार्ड रोब में टांग दिया. लेकिन सुबह ही तो पाल जर्किन को मेरे पास ले आया और बोला, "पप्पा, आप ही इसे पहन लीजिए."

मैंने अपराधी के से भाव से कहा, "क्यों. . .तुम क्यों नहीं पहनते?"

"यह मेरे काम का नहीं रहा," वह बोला. "देखते नहीं, आपका पेट बड़ा, इसके पहनने से एलास्टिक चला गया है इसका."

मुझे बेहद गुस्सा आया. और मैं उस पर बरस पड़ा. मैंने कहा, "मैं तुम्हारा बाप हूं. जर्किन पहन ली और तुम्हारा नुकसान कर दिया. तुमने सैकड़ों नहीं, हजारों बार मेरा नुकसान किया है. मैंने कभी तुम्हें कुछ कहा है? उलटा मैं खुश हुआ हूं. चलो, यूं कह लो कि बाहर से नाराजी का सबूत दिया, लेकिन अंदर से मैं कितना खुश था? तुम सैकड़ों बार मेरी कमीज, मेरा जूता पहन गये हो. मैंने यही कहा— मेरा बेटा मेरे कपड़े पहनता है. और तुमने इस तरह उस दिन दो घोड़ों वाली वौस्की की कमीज मेरे मुंह पर दे मारी. तुम निहायत कमीने, निहायत बेशर्म आदमी हो."

बजाय इसके कि पाल को अफसोस हो, वह मेरे साथ दलीलबाजी पर उतर आया, "आप पान खाते हैं," वह कहने लगा, "और उसका कोई न कोई छींटा उस पर पड़ जाता है. क्या वह कमीज फिर मेरे पहनने के लायक रहती है?"

उन दिनों भी लाडो यहां, अपने मायके आयी हुई थी. उस झगड़े में वह भी बाहर आ खड़ी हुई और बोल उठी, "पप्पा बिल्कुल मेरी तरह हैं. . ."

उन दिनों छोटे दोनों भी, जो इस वक्त अपने मामा के यहां गुड़गांव गये हुए थे, छुटकी मीकू की मदद से बिस्तर की खलवटें निकालती हुई बोली, "हां, बात करते हैं, तो लाडो दीदी की तरह मुंह की सारी फुहार सामने वाले पर छोड़ देते हैं. तमाशा उस वक्त होता है. जब कहीं पप्पा और लाडो दीदी आपस में बात कर रहे हों, तो."

लाडो हंस रही थी. दूसरे सब हंस रहे थे. न चाहने के बावजूद मेरे चेहरे पर भी मुस्कराहट चली आयी थी. बात संजीदा रही थी और न हास्यपूर्ण. मैंने टालते हुए कहा भी तो इतना, "हां, आखिर लाडो का बाप हूं ना, उसी पर गया हूं."

और तो और छोटा दुमन भी हंस रहा था कंजूसों की तरह. फेफड़े पैदाइशी तौर पर कमजोर होने के कारण वह कभी खुलके न हंसा. "ही-ही पान खाते हैं ना, पप्पा," उसने कहा, "तो कमीज पर सामने तो लगता ही है, लेकिन पीठ पर न जाने कैसे जा लगता है." ये सब समझते थे, मैं पान मुंह से तो खाता ही नहीं, कमीज से खाता हूं. इस पर मजा यह कि, घोबन मंच पर चली आयी. मेरा खयाल था, मां होने के नाते वह बाप का पक्ष लेगी, लेकिन साहब, उसने उलटे बेटे-बेटियों की ताईद शुरू कर दी, "क्या पूछते हो इनका," वह बोली, "बिलकुल बाबी हैं दूसरे. खाना खायेंगे, तो सान्न कुरते पर गिरा होगा. लिखने बैठेंगे तो स्याही. मैं इनका क्या करूंगा! तो तो मुझे चलता है ना, घोते-घोते जिसके हाथ रह जाते हैं पर मेरी किस्मत उम्र. गुजर गयी मेरी इनके दाग निकालते निकालते. . . ."

सिर्फ एक बाबी रह गया था. उसके हाथ में एक छोटा-सा बांस था, जिससे वह बुड्ढा बाबा को भगा रहा था, "मारूंगा." वह शून्य में काल्पनिक शत्रु को संबोधित करते हुए कह रहा था. मुझे यों महसूस होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा, जैसे उसका बुढ्डा बाबा, उसका काल्पनिक [illegible] जिम्मी के भूकने की आवाज आयी, जिसे आप संयोग की बात कह लीजिए. मीकू बिजली का बिल चुकाने चला गया था, वरना वह अपनी मगही बोली में कहता है, "हम मियां-बीवी का झगड़ा में नहीं परब. . ." और यह बात और भी मेरे खिलाफ जाती. घर भर मेरा दुश्मन हो गया था. ऐसा पहले तो न था---चंद बरस पहले. जब से मुझे कारोबार में घाटा पड़ा है. दुनिया ही बदल गयी है. किसी को मेरी बात ही पसंद नहीं या शायद मैं बूढ़ा हो गया हूं, इसलिए सबको बुरा लगता हूं. मुझे इनके सामने से टल जाना चाहिए. . . इस दुनिया से टल जाना चाहिए. लेकिन मैं जाऊं तो कहां जाऊं? मैंनें इस घर, इन लोगों पर अपनी जान भी वार दी, न किसी क्लब का मेंबर हुआ, न कभी रेस को गया, यह तो यह, कोई पिक्चर भी ढब से न देखी. काम, काम और हर वक्त काम. तफरीह के लिए एक लमहा नहीं. इसीलिए मैं जहनी तौर पर बीमार हो गया हूं, शायद पागल. पागल नहीं तो सनकी जरूर हूं. कभी पागल या सनकी को भी पता चला है कि वह क्या है? उसे तो सिर्फ दूसरे जानते हैं, कभी-कभी उनकी शक्लों से अपनी शक्ल का पता चलता है. नहीं, यह बात नहीं. खुदा किसी को घाटा न हो. जवानी में जो होना है, हो जाये, लेकिन इस ढलती आखिरी उम्र में नहीं, जबकि रक्षा करने की सारी शक्तियां समाप्त हो जाती हैं. बच्चों का 'फादर इमेज' गड़बड़ हो जाता है और बीवी का भी. . .

पाल आठ बजे उठ गया था. उसे उठते देखकर संतराम सनसना गया. डर की एक निशानी यह है कि आदमी सामने या दिल में कहने लगे---मैं किसी से डरता हूं? संतराम पर अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका था कि वह अपने बेटे से डरता है. वह नहीं चाहता था, मामले को इस सतह पर ले आये, जिसे बेटा यह कहे कि मैं इस घर में नहीं रहूंगा. पाल तो चाहता था, ऐसा मौका पैदा हो. कोई सुने तो हंसे, बेटे का एक, सिर्फ एक सिगरेट ही पी लेने से इतना डर और इतनी जहनी बक-बक?

चाय से पहले पाल ने बाप की तरफ देखा और सदा की तरह नमस्कार किया, जिसके जवाब में संतराम ने सिर हिला दिया और अपनी निगाहें नीची कर लीं. वह चाहता था कि पाल दूसरी तरफ देखे तो वह उसकी तरफ तके. लेकिन पाल ने बराबर अपना मुंह बाप की तरफ रखा था, जिससे घबराकर संतराम ने अपना चेहरा अखबार के पीछे छिपा लिया. फिर उसे थोडा हटाकर देखा तो पाल सुड़क-सुड़क चाय पी रहा था. जिसके बाद उसने खट से प्याली पिरच में रखी. फिर वह सिगरेट का पैकेट थामे बाथरूम की तरफ निकल गया.

अब तक तो सब ठीक था. पाल ने पैकेट खोलकर नहीं देखा था. जब वह बाथरूम जायेगा, तब उसे पता चलेगा. और संतराम बेटे के बाहर आने और उसका चेहरा देखने के लिए यों ही इधर-उधर होता रहा. घोबन ने कहा, "नहाओगे नहीं?" तो जवाब में झल्लाते हुए संतराम ने जवाब दिया, "तुम्हें नहाने की पड़ी है, अब एक ही बार नहाऊंगा."

घोबन हैरानी से संतराम के चेहरे की तरफ देखने लगी. फिर उसकी बमकार को सदा की बेमानी समझकर नाश्ते के घंधे में लग गयी.

थोड़ी देर में पाल बाथ रूम से आया तो उसके होंठ मिचे हुए थे. माथा कुछ और पीछे हट गया था. वह वाशबेसिन में जल्दी-जल्दी अपने हाथ साबुन से धो रहा था. इतनी जल्दी क्या थी? क्यों जल्दी भागना चाहता था? सामने उसने आईने में अपने चेहरे की तरफ देखा. मुंह से झाग लिपट रहे थे. नहीं, हाथ धोते हुए झाग उड़कर चेहरे पर चले गये थे. चूंकि हाथ अभी साबुन से अटे थे, इसलिए उसने कुरते के बाजू से झाग को पोंछ दिया और फिर अपना चेहरा देखने लगा. उसके नथुने फूल रहे थे. दूसरों को देखकर नथुने फुलाना तो समझ में आता था, लेकिन अपने आपको देखकर नहीं. हाथ धोते हुए पाल लौटा तो घोबन ने आवाज दी, "रात तुम फिर पीकर आये थे?"

पाल ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ इतना कहा, "हां, आज फिर पीने वाला हूं."

घोबन तन गयी. वह ऐसी दबने वाली थोड़े ही थी. उसने साफ कर दिया, "आज पीकर आये तो मैं दरवाजे में कदम न रखने दूंगी."

जवाब में पाल ने कहा, "आना कौन चाहता है इस जेलखाने में!" मैंने पहले ही गोल्फ लिंक्स में एक कमरा देखा है."

फिर घोबन की पाटदार आवाज आयी, "निकल जाओ. . . अभी निकल जाओ." जिससे संतराम की जान निकल गयी.

"शांति!" संतराम ने कड़ककर कहा, "क्या बकती हो! यह घर तुम्हारा है!"

उसी पंचम में घोबन ने जवाब दिया, "हां, मेरा है. जाता है तो जाये. तुम भी जाना चाहते हो तो जाओ. भला हो तुम बाप बेटों का, जिन्होंने जीना सिखा दिया." और फिर वह रोने लगी.

संतराम इसी बात से तो डरता आया था कि ऐसा मौका न आये. बेटे के कुलच्छनों को देखकर वह अंदर से कुढ़ता रहता था, लेकिन बाहर से कुछ न कहता था. यह कहना तो बहुत आसान होता है, 'चले जाओ.' मगर फिर 'वापस आ जाओ' कहना मुश्किल है. पाल के बाकी काम की रफ्तार और भी तेज हो गयी. वह जल्दी-जल्दी शेव बना रहा था और अपनी ठोड़ी पर बेशुमार कट लगा रहा था और खून पोंछ रहा था. उसने मां को ऐसा जवाब क्यों दिया? वह मां को उलटी-सीधी कहता था तो संतराम को तकलीफ होती थी और मां उसे कुछ कहती तो महादुःख लेकिन मां-बेटे का रिश्ता ज्यादा सहज था, जिसमें वे एक-दूसरे को सुन-सुनाकर फिर एक हो जाते थे, मगर आज पाल का अंदाज यही था कि वह जायेगा और फिर नहीं आयेगा. . . .

आना कौन चाहता है इस जेलखाने में?---इसका क्या मतलब? पाल कुछ कह नहीं रहा था, लेकिन अंदर से महसूस कर रहा था कि इस घर में आने का क्या फायदा, जहां कोई चीज अपनी न रह सके, न जूता, न जर्किन और न सिगरेट. फिर पाल जल्दी-जल्दी नहाया और कपड़े पहनते हुए बाप के पास से गुजर गया. संतराम ने उसे बुलाने की कोशिश की, लेकिन उसने आनाकानी कर दी. अखबार भी उठाकर न देखा उसने और स्टेट एक्सप्रेस का सिगरेट पूरी नफरत से खिड़की के बाहर फेंकता हुआ निकलने लगा. घोबन तो उससे लड़ बैठी थी, इसलिए उसने बेटे को

बेदी :..और यह भी हुआ

बंबई आये दो महीने हो चुके थे जम्मू. मैंने कोई चिट्ठी-पत्तरी न लिखी थी. बीवी बेहद परेशान रही होगी. हम बंबई में हाथ-पांव मार रहे थे. एक दिन मैं होटल में चाय पी रहा था. अपने ध्यान में मगन था. धड़ से दरवाजा खुला. मैंने चौंककर देखा---मेरी बीवी खड़ी थी. उसने मुझे देखा और फुक्का मारकर रो पड़ी. बच्चे और सामान बाहर था. वो अपने भाई के घर गयी थी. उसे तो कोई और जगह न थी. पर भाई ने उसे सामान भीतर न रखने दिया. इस भाई को हमने लाहौर में अपनी मॉडल टाउन वाली कोठी में कितने ही दिन रक्खा था. पर इन बातों का कोई फायदा न था. मेरे बीवी-बच्चे उस लम्हा सड़क पर खड़े थे. बीवी रो रही थी. मैं बदहवास खड़ा था. मैं बाहर से सात सीटों वाली बस ले आया. उसमें सामान, बीवी-बच्चे सब लादे और साले के घर गया. मुझे बेहद गुस्सा आ रहा था. उसे भी पकड़कर बस में डाला और घर ढूंढने निकले. सात बंगले के पास एक सरदार का घर था. एक बड़ा-सा बंगला. उसके चार हिस्से थे. एक हिस्सा उसने हमें दे दिया. मेरे साले ने घर पर पानी तक न पूछा था. मैं बेहद गुस्से में तो था ही, तीन सौ रुपये महीने के किराये का बंगला खट् से ले लिया. ◻

---संदर्भ 'दीवानखाना'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आवाज दी, "बेटा, नाश्ता तो कर लो!"

"नहीं!" पाल ने निश्चित जवाब दिया और बाहर निकल गया. जिस अंदाज से उसने पीछे ओर से दरवाजा बंद किया था, उससे रूह तक में कपंन पैदा हो गया.

पाल के जाते ही धोबन और संतराम में ठन गयी. वह तो उसे सिर्फ इसी फजीते के सिलसिले में लानत-मलानत दे रहा था, लेकिन धोबन एक तरफ रोये जा रही थी और दूसरी तरफ कोस रही थी. इस सिलसिले में वह नये-पुराने, सब दफ्तर खोल बैठी. उसकी बातों से तो ऐसा पता चलता था कि इस घर में आकर उसने कभी कोई सुख ही नहीं देखा. वह बहुत फूटी किस्मत वाली थी, हालांकि संतराम समझता था कि इस दुनिया का कोई सुख नहीं, जो उसने बीवी को न दिया हो. और अगर दुख ही देखा है तो साथ उसने भी तो देखा, लेकिन बीवी न सिर्फ अपने, बल्कि पूरी औलाद को तबाहो-बरबाद करने का जिम्मेदार संतराम को ठहरा रही थी. वह कह रही थी, "पहले यतीम भाई-बहनों के सिलसिले में मुझे डांटते-झगड़ते रहे मेरे साथ, फिर दोस्त मुझ पर लाद दिये. एक हाथ से बच्चा खिला रही हूं और दूसरे से रोटियां सेक रही हूं इन लबड़कट्टों के लिए. अब कसाई औलाद के हवाले कर दिया. इतनी छूट दे दी पैसे-कपड़े की, जिससे वे नालायक निकल आये सबके सब, और अब बेटे की यह हिम्मत कि वह तुम्हारे होते-सोते मुझे आंख दिखाये?"

संतराम हमले की बजाय जवाब पर उतर आया था. वाकई यह क्या था, जो बीवी को बच्चों से न बचा सकता था और न बच्चों को बीवी से. जब तक लाडो भी जग गयी और आंखें पोंछते हुए इस घुटन भरे दृश्य को देखने लगी. काश वह थोड़ी देर पहले उठ जाती और अपने भाई को जाने से रोक लेती. वह मेरा बेटा है तो उसका भी तो भाई है. लेकिन मां को रोते देखकर वह उसकी तरफ हो गयी. बजाहिर उसने मां को ही चुप करने के लिए कहा और संतराम की तरफ देखा सिर्फ, लेकिन उसके देखने ही में क्या कुछ न था, जिससे संतराम के और भी औसान खता हो गये. और उसके बाद वह बच्चों को संभालने लगी और घर में अपने मियां को टेलिफोन करने, ताकि वह आये और उसे ले जाये. इसके बाद एक खामोशी छा गयी, जिसमें धोबन के सिसकने की आवाज सुनाई दे जाती थी. यह खामोशी. . . . .लाडो और दूसरे बच्चों ने भी तो यह समझ लिया था कि रोज का मामला है, कौन इस पर सिर धुने? यह क्या मेरा ही मामला था? संतराम ने सोचा—घर के किसी और व्यक्ति का नहीं? पाल तो पहले से भी भरा बैठा था— मां के बात करने से पहले. धोबन की बात तो सिर्फ एक बहाना हो गयी. वह न चाहता था. पाल को कोई-सा भी बहाना दे, लेकिन उसने नहीं तो उसकी मां ने उसे दे दिया, क्योंकि वह जल-भुन गया था, पैकेट में सिर्फ एक सिगरेट पाकर.

संतराम दफ्तर में दाखिल हुआ तो उसने किसी की दुआ-सलाम का जवाब न दिया, लेकिन उन लोगों को क्या परवाह थी! "आज साहब का मूड अच्छा नहीं," किसी ने कहा.

फिर दूसरी तरफ से आवाज आयी, "अच्छा कब होता है?"

केबिन में दाखिल होते ही चपरासी चंदू से संतराम ने सिगरेट का पैकेट मंगवाया. चंदू हमेशा पहले ही सिगरेट खरीद-कर रखता था. वह अपनी जेब से दाम खर्च कर देता और जब मालिक से मिल जाते तो जेब में डाल लेता. संतराम ने अपना कोट टांगा. पैकेट पर से कागज

... संतराम का जी काम में न था. एक शदीद डर ने उसके तन-मन को निष्क्रिय कर दिया था. उसने घूमनेवाली कुरसी पर पीछे हटते हुए अपनी टांगें मेज पर रखीं और सिगरेट के दो-चार लंबे कश लगाते हुए सोचने लगा— मैंने कैसे तबाह कर दिया है घर के लोगों को? बीवी और बच्चों को? मैं प्रौढ़ होने के बावजूद पढ़ते रहने की वजह से आजकल के जमाने का हूं. मैंने शौहर और बाप बनने की बजाय उनसे दोस्ती रखने की कोशिश की. शायद यही कसूर तो नहीं मेरा? मैंने बेटी से ऐसी बातें कीं, जो पुराने खयाल के बाप नहीं करते. जब वह कालेज जा रही थी तो मैंने कहा था—"वहां सह-शिक्षा है. लाड़, वहां लड़कियां होंगी और लड़के भी और लड़के करीब होने की कोशिश करेंगे. आजकल हमारे समाज में एक नयी चीज आ गयी है, जिसे गुड टाइम कहते हैं. गुड टाइम गुड टाइम है, लेकिन मर्द और औरत में जो बुनियादी फर्क है, उसे तुम मत भूलना. मर्द पर कोई जिम्मेदारी नहीं, बशर्ते कि वह अपनी नैतिकता अपनी सभ्यता से उसे स्वीकार न करे, लेकिन औरत पर बहुत है, क्योंकि बच्चा उसे उठाना पड़ता है. इसलिए दुनिया भर में औरतें न सिर्फ पुरातनपंथी हैं, बल्कि उनसे तकाजा किया जाता है, पुरातनपंथी होने का. और यही ठीक है, उन्हें कभी अपने आपको ऐसे मर्द के हवाले नहीं करना चाहिए, जो उसकी और उसके बच्चों की जिम्मेदारी कबूल न करे. . . ."

धुएं की घटनाओं में संतराम को उस वक्त का बेटी का चेहरा याद आया. वह बिटर-बिटर बाप की तरफ देख रही थी. कुछ समझ रही थी और कुछ नहीं भी. शायद वह सोचती थी—पप्पा यह आज क्या ले बैठे हैं? इस बात को तो आजकल के जमाने की हर औरत, हर लड़की समझती है. पप्पा कितने पुराने विचारों के हैं. अगर मैं पुराने विचारों का हूं. तो रोज ये किस्से क्या सुनता हूं? यह तो एक ऐसी बात है, जो बुद्ध के जमाने में भी कही जानी चाहिए थी और आज के जमाने में भी. क्या इनसान अभ्यास और गलती ही से सीखता है? लेकिन इसका नतीजा अच्छा ही निकला. जहां इस महल्ले के दूसरे बच्चों ने बुरे आचरण किये, वहां मेरे बच्चों ने नहीं, कम से कम लड़कियों ने नहीं. यह उसी तालीम का नतीजा था, जो मैंने उन्हें दी. तो फिर यह तबाही कैसी? पाल पच्चीस बरस का हो गया था, जब मैंने सीधे-सीधे उससे पूछा कि उसे औरत के सिलसिले में कोई तजरबा हुआ है? चूंकि वह बेटा होने के अलावा मेरा दोस्त था, उसने सब कुछ बता दिया. अब मुझे इस बात की फिक्र पड़ गयी कि वह तजरबा कामयाब हुआ या नहीं, क्योंकि शारीरिक संभोग एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी की चीज है. इसमें कोई सी भी गलती पूरी जिंदगी पर छा सकती है. इसीलिए तो मर्द-औरत के बीच मुहब्बत और शादी की चहारदीवारी की सुरक्षा लाजिमी है. लेकिन पाल भी मेरी तरफ बिटर-बिटर देख रहा था और शायद जी ही जी में हंस रहा था और कह रहा था ऊंहूं! जिम्मेदारी . . . . पप्पा उन्नीसवीं सदी में सांस ले रहे हैं. लेकिन यह तय था कि बहुत सी बातें वह न जानता था और मैंने उसके दिमाग के जाले और फफूंदियां उतारे और उसे इस काबिल बनाया कि वह दुनिया और उसके हालात का मुकाबला कर सके. और इस बेटे ने उसका एक सिगरेट पी जाने पर मुहतोड़ लिया मुझसे.

नहीं, हो सकता है, हमेशा की तरह वह किसी अपनी ही धुन में हो और जल्दी घर से निकल गया हो. फर्क यही है ना कि पहले वह दस के करीब जाता था और आज साढ़े नौ बजे निकल गया था. . . . कल मेरी एक फर्म से लाख रुपये की डील होने वाली है, सब ठीक हो जायेगा. अगर पाल खफा भी हो गया है तो राजी हो जायेगा. फिर सब मिलकर कुल्लू के पहाड़ पर जाने का प्रोग्राम बनायेंगे.

लेकिन एक सिगरेट. . . . सिर्फ एक सिगरेट!

संतराम का खून बार-बार खौल उठता था जैसे उसने बेटे को माफ न किया हो, खुद को माफ न किया हो. मगर जो बाप बेटे से नफरत करता है, अपने आप से नफरत करता है, और इसका उलट भी दुरुस्त है कि जो बेटा बाप से नफरत करता है, अपने आप से नफरत करता है. पाल दरअसल बाप से नफरत नहीं करता था, खुद से नफरत करता था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगी, खुद को माफ नहीं करेगा. वह बाप से मुहब्बत उस वक्त कर सकेगा, जब उसे नालायक और बेवकूफ साबित कर दे...

संतराम ने घंटी पर हाथ मारा और चंदू से कहा, "मिस डाली को बुलाओ."

डाली अंदर आयी. उसने बालों के परम बनवा रखे थे और चुस्त ब्लाउज के साथ एक सफेद रंग की साड़ी पहन रखी थी, क्योंकि संतराम को सफेद रंग बहुत पसंद था. लेकिन संतराम ने ढंग से उसकी तरफ न देखा. डाली जानती थी, आजकल बॉस कटा-फटा-सा रहता है. उसने भी दिनों से बिजनेस का अंदाज अख्तियार कर रखा था. यह तो उसकी कृपा थी कि एक बूढ़े आदमी से बातें करती थी. वह काम करती थी तो पैसे लेती थी, बीच में फालतू बातें कैसी.

अंदर आने के बाद जब डाली ने 'यस सर' कहा तो संतराम ने छिछकती हुई नजर उस पर डाली और अपने आपको कहने से रोक लिया कि तुम बहुत खूबसूरत लगती हो डाली.

लेकिन एक क्षण के लिए उसका दिल जो कहीं भी छुटकारा पाने के लिए तड़प रहा था, डाली के खूबसूरत बालों में अटक गया. ये औरतें भी खूब हैं. अगर मर्द का दिल सीधे बहाव में न बहे तो उसे लहरों और हिचकोलों में डुबो दो. मगर संतराम ने जल्दी ही अपनी आंखें उस तूफानी बहाव और पीछे के भंवर से हटा लीं और दायीं तरफ द्राक्षासव के कैलेंडर को देखने लगा, जैसे उसे कोई तारीख देखनी हो. ऐसी हरकतों को औरत खूब समझती है और अपनी नजरें अपने शिकार पर गाड़े रहती है. मर्द जानता है कि उसने औरत की आंखों में देख तो गया, इसलिए वह परे और परे से परे देखने और बचने की कोशिश करता है. लेकिन कब तक? आखिर मिनट के सौवें हिस्से के लिए मजबूरी और बेअख्तियारी के आलम में फिर उसकी तरफ देख लेता है. और यह वह लमहा होता है, जिसमें उसकी आखिरी फड़फड़ाहट ठंडी हो जाती है.

संतराम ने डाली से पूछा, "पारकिंग कहां है आजकल?"

परकिंज —डाली का भाई, जान परकिंज.

"यहीं है." डाली ने जवाब दिया और थोड़ा मुस्कराने की कोशिश की. वह संतराम के इस सवाल को इधर-उधर की बातों में से समझती थी, जो मतलब पर आने से पहले मर्द हमेशा करता है, लेकिन वह तो सख्त बिजनेस का-सा व्यवहार जारी रखना चाहती थी. आखिर कोई मजाक है—जब चाहे झिटक दो. इतने दिनों तक बात ही नहीं की. देखा तक नहीं और गुजर गये और आज एकाएकी परकिंज याद आया है.

लेकिन डाली भी कब तक बिजनेस का अंदाज रख सकती है?

संतराम ने डॉली को नादानी के आलम में सिगरेट पेश कर दी. एक लहर-सी डॉली के बदन में दौड़ गयी, जो उसके बालों के परम से ज्यादा बेचैन थी. उसने अपने बढ़ते हुए हाथ रोक दिये और बोली, "नो थैंक्स!" और फिर गुस्से और शिकायत से उसकी छातियां ऊपर-नीचे होने लगीं. संतराम ने उसकी नजरों में अपनी नजरें गाड़ते हुए एक रोने अंदाज में कहा, "डॉली...!"

ऐसा मालूम होता था, जैसे संतराम कहने जा रहा है—दुनिया ने मेरे साथ यह सब किया है, घर के लोगों ने किया है. एक तुम थीं, जो एक मामूली-से 'रेज' के लिए मुझे तवज्जह का धोखा दे सकती थीं और तुमने धोखा दिया और वह मुझे ऐसी मुहब्बत लगी, जो सच्ची मुहब्बत से कहीं ऊपर होती है. इसमें वही फर्क था, जो असली बोसे और चोरी के बोसे में होता है. जिसमें पिछला लाख रुपये का घाटा और आने वाला दो लाख रुपये का नफा बड़े खूबसूरत तरीके से एक-दूसरे में हल हो जाते हैं.... डॉली ने संतराम की तरफ देखा, वरना वह और भी बूढ़ा हो जाता और उसे एक ही जगह कई और घाटे पड़ जाते, जिनसे वह खुद भी बेकार हो जाती. उसने अपने गर्भाशय की तहों से सोचा, जो उसकी मां थी और दुनिया भर के मर्दों की मां, चाहे वे जवान हों या बूढ़े. फिर 'ऑल राइट' कहते हुए उसने अपना हाथ सिगरेट की तरफ बढ़ाया. संतराम ने लाइटर जलाकर डॉली की सिगरेट सुलगा दी. डॉली ने कश लगाकर की तरफ देखा. फिर दूसरा कश लगाने के बाद वह अपनी सीट पर से उठी. पीछे केबिन के दरवाजे की तरफ देखती हुई संतराम की तरफ बढ़ी.

जभी संतराम ने कहा, "परकिंज शहर में है तो उसे कहो..."

डॉली वहीं रुक गयी और उसकी तरफ देखने लगी, ताकि वह अपना वाक्य पूरा कर ले. संतराम ने कहा, "मुझे स्टेट एक्सप्रेस का एक कार्टन ला दे, पैसे फिर दे दूंगा."

"आल राइट!" डॉली ने कहा और पीछे हटती हुई वह केबिन से बाहर निकल गयी.

संतराम घर पहुंचा तो कार्टन की किलेबंदी के बावजूद वह डर रहा था. एक नहीं, बीसियों वहमों में गिरफ्तार था, जिनके बारे में वह घोबन या लाडो से न कह सकता था. उसके पहुंचने के थोड़ी देर बाद पाल चला आया. संतराम के बदन में जो कंपकंपी पैदा हो रही थी, बंद हो गयी. बल्कि एक अजीब तरह के सुकून, नर्मी और गर्मी का एहसास हुआ उसे, जैसे सर्दियों में कोई कमरे के अंदर बुखारी जला दे. लेकिन फिर वह डर उसके तन-मन पर छाने लगा— कहीं अपने कपड़े-लत्ते उठाने और गोल्फ लिंक्स के कमरे में चले जाने के लिए तो नहीं आया पाल? मगर इस बात के तो कोई आसार नहीं नजर न आते थे. फिर वह आज जल्दी क्यों चला आया? वह तो कभी न लौटा था रात के एक-दो बजे से पहले.

क्या वह 'अच्छा बेटा' हो गया था? लेकिन अच्छा बेटा होने के बावजूद वह चुप क्यों था? वह लाडो के साथ बात कर सकता था और नहीं तो बाबी के साथ खेल सकता था. कमीना. किस कदर बुग्ज से भरा हुआ था उसका सीना. लेकिन पाल ने कोई कपड़े-वपड़े इकट्ठे न किये. दो-एक मिनट के लिए अपने कमरे की तरफ गया और फिर बाहर आते हुए बाप की तरफ आया और जेब से एक पैकेट निकाल कर पप्पा को पेश कर दिया. संतराम ने देखा और पूछा, "यह क्या?"

"रैशियन सोब्राइन."

रशियन सोब्राइन सिगरेट.... और पूरा पैकेट. खून संतराम के कानों और आंखों तक आने लगा. एक सिगरेट क्या पी ली है इसकी, उसके एवज में पूरा पैकेट लाके दे रहा है. जूता मार रहा है एक तरीके से. संतराम ने पैकेट उठाया और पूरे जोर से पाल के मुंह पर खींच मारा.

"लुच्चे. शोहदे. हरामी." संतराम कह रहा था, "तू क्या समझता है, मैं अपनी सिगरेट भी नहीं खरीद सकता? तुझे खरीद नहीं दे सकता. इतना तो नहीं मरा हूं, जितना तू समझता है. अभी तो तेरे ऐसे सौ कमीनों को खरीद के रख लूं और जेब में डाल के चल दूं..... बास्टर्ड!"

पाल की कुछ समझ में न आ रहा था. उसने अपना हाथ होंठ पर रख लिया, जिस पर पैकेट के लगने से एक कट-सा चला आया था और खून का एक नुक्ता-सा दिखाई दे रहा था. उसने कहा भी तो सिर्फ इतना, "पप्पा."

लाडो बेडरूम से दौड़ी आयी और उसने भी इतना-सा कहा, "पप्पा!"

फिर घोबन मुड़ती हुई बोली, "क्या हुआ जी?"

"कुछ नहीं." संतराम ने सबको पीछे धकेलते हुए कहा, "मुझे इस पिल्ले से अपना हिसाब बराबर कर लेने दो. बहुत देर हो गयी इसे ठुके हुए.....!" फिर अपने बेटे के चेहरे पर खून की बूंद देखकर संतराम और डर गया, और भी वहशतनाक हो गया, क्योंकि बेटे का खून देखना कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

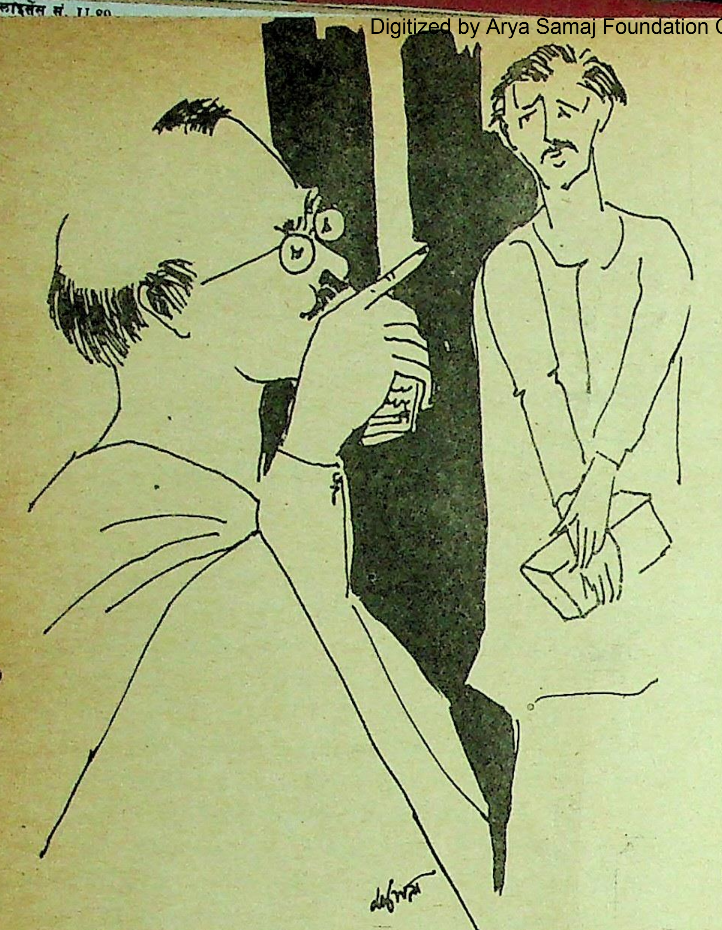

आसान बात नहीं. देखने वाले को बजाहिर वह बेटे का खून मालूम होता है, लेकिन खून उसका होता है. जिसका वह खून है... और भी आगे लपकते हुए, मुंह पर कफ लाते हुए संतराम कह रहा था, "मैं तुझे जान से मार दूंगा आज. छोड़ दो.... छोड़ दो मुझे.... यह भी एक मिसाल हो जाने दो. बेटे बाप का खून करते आये हैं, आज बाप को बेटे का खून करने दो. मादर.... मैंने तुझे क्या नहीं दिया? तू बाहर पंजाब पढ़ने के लिए गया तो चार सौ रुपये महीना भेजता रहा. फिर तू वहां से भाग आया और मेरे दोस्त ने दो बरस तुझे अपने यहां रखा और तुझे तालीम दी. मेरी वजह से उसने अपने यहां रखा, वरना तुझे कौन पूछता है— चीथड़े को. और फिर भी पैसे भेजता रहा, मेरे बेटे को तकलीफ न हो. और तू उससे होटलों और रेस्तराओं में जाता, हर किस्म की बदमाशियां करता रहा. तेरे अपने बकने के मुताबिक तेरे दोस्त तुझे शहजादा कहते थे, क्योंकि तू बाप के माल पर ऐश करता था. फिर तूने बी. ए. में कंपार्टमेंट की और इम्तहान को पूरा न किया, क्योंकि तू हिंदी में फेल हो गया था. हिंदी भी कोई बात थी भला? मैंने कितनी तुझसे मिन्नतें कीं कि एक मजमून है, पास कर ले, लेकिन तुझे उससे चिढ़ हो गयी. फिर भी मैंने तुझे कुछ नहीं कहा. छब्बीस बरस की उम्र तक तुझे घर रखा और रोटियां खिलाता रहा. होता किसी बाहर के मुल्क में तो अठारहवां फांदते ही बाप तेरे चूतड़ पर लात मारता और बाहर निकाल देता. यह अपना ही मुल्क है, जिसमें इस किस्म की चूतियापंथी चलती है...जब तेरी जेब में पैसे नहीं होते थे तो मैं तेरी मां से चोरी-चोरी दस-बीस पच्चास डाल देता था और आज यह उसी के कारण है कि यह मुझे आंखें दिखाती है और कहती है—मैंने अपनी औलाद को तबाहो-बरबाद कर दिया. तेरी वजह से मैंने अपनी जिंदगी तबाहो-बरबाद कर ली. यह तेरा ही फिकरा है न कि मेरी मां जिस किस्म की औरत है, इससे तो मेरा बाप कोई रखैल रख ले..... बोल, कहा नहीं तूने? जो बेटा मां के बारे में यह कह सकता है, वह बाप की बाबत क्या कहेगा? रोज तू मां को गाली देता हुआ निकल जाता है और जानता है, वह गाली किसे पड़ती है? वह मुझे गाली देती है तो गाली किसे पड़ती है? क्या इस घर में कोई मालिक नहीं? कोई बाप नहीं? क्या हुआ जो एक बार, जिंदगी में सिर्फ एक बार घाटा पड़ गया.

मैंने लाख रुपया गंवाया है तो आज ही लाख रुपये का कांट्राक्ट किया है, जिसमें से कुछ नहीं तो तीस-बत्तीस हजार बच जायेंगे. तब तो तेरी मां भी खुश होगी और यह लाडो भी, जो उस दिन बाप की बजाय मुझे अंकल कह गयी और तू भी खुश होगा और गर्व से मेरा नाम लेगा, मेरे पास 'हो-हो' कर बैठेगा और बातें करने की कोशिश करेगा, लेकिन मैं..... मैं तुम सबको समझ गया हूं. मुंह तक न लगाऊंगा किसी को."

पाल के होंठ फड़कने लगे थे. उसने डरते-डरते कहा भी, तो सिर्फ इतना, "पर.... पप्पा, मैंने किया क्या है?"

"तुमने?" संतराम और भी बुलंद आवाज से चीखा, "तुमने मुझे वह गाली दी है, जो किसी ने नहीं दी. किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी. सब जानते हैं ना, मैं खाली हाथों से उनकी बोटियां उड़ा दूंगा. तेरी यह हिम्मत कि एक सिगरेट पी जाने से तूने पूरा पैकेट मेरे मुंह पर दे मारा?"

"एक सिगरेट?" पाल ने कहा.

"हां." संतराम ने कहा, "तुझे पता चल गया ना, मैंने तेरी एक स्टेट एक्सप्रेस सुबह पी ली थी....!"

"नहीं.... मुझे तो कुछ नहीं मालूम."

इससे पहले कि जो संतराम कांप रहा था, नीचे गिर जाता, बेटे ने बढ़कर थाम लिया और उसके गले लगकर फूट-फूटकर रोने लगा. और कहने लगा, "माफ कर दो.... मुझे माफ कर दो, पप्पा."

अगले रोज संतराम नित्य की तरह सुबह के चार बजे उठकर गया था. उसे फिर सिगरेट की तलब हुई. धोबन को डिस्टर्ब किये बगैर वह साथ के कमरे में चला आया, जहां पाल, लाडो और उसका बच्चा बाबी सोये हुए थे. संतराम ने जीरो पॉवर का बल्ब जलाया और उनकी तरफ देखने लगा. हलकी, मद्धिम-सी रोशनी में वे सब फरिश्ते मालूम हो रहे थे— एक से एक हसीन और खूबसूरत और खुशबूदार. आज बाबी की बांह मां के गले में न थी. वह आजादाना और बेफिक्र सो रहा था.

संतराम ने सोचा—कालेज भेजने से पहले मैंने इस बच्ची को लेक्चर दिया था, लेकिन अगर यह कोई ऊंच-नीच करती तो क्या मैं इसे सड़क पर फेंक देता? पाल का तजरबा नाकाम होता, तो मैं उसे जिंदगी का खेल न सिखाता? यह नैतिकता.... यह संस्कृति सब बातें हैं. ये और यहां से बाहर के सब बच्चे हैं, जो खेलते हैं, फिर गिरते हैं, फिर उठकर खेलने लगते हैं.... धोबन....? धोबन बेवकूफ है, वह नहीं जानती कुछ ..... सिवाय कपड़े धोने के.

संतराम ने स्टेट एक्सप्रेस का कार्टन निकाला और उसे बेटे के सिरहाने रख दिया. रात उस झगड़े की वजह से वह उसे बेटे को दे ही न सका था. चलो, यह और भी अच्छा हुआ. जगेगा, तो एकदम पूरा कार्टन पाकर कितना खुश होगा.... फिर संतराम ने बेटे के लिए हुए रशियन सोब्राइन के पैकेट में से एक सिगरेट निकाल उसे जलाया और धुएं के बड़े-बड़े कश छोड़े. जीरो पावर के बल्ब की रोशनी पहले ही कुछ नहीं होती, इस पर धुएं ने और भी दृश्य को धुंधला दिया था और बच्चे फरिश्तों से भी ज्यादा हसीन लगने लगे थे. संतराम का जी चाहा कि वह आगे बढ़कर पाल का चेहरा चूम ले, लेकिन कहते हैं, सोते में बच्चे का चेहरा नहीं चूमते. जाने क्यों. उस वक्त तो संतराम ने यही सोचा कि अगर उसने ऐसी हरकत की तो वे जग जायेंगे....

सोब्राइन के चौथे कश में नशा था या शायद संतराम की आंखें बेटे की शराब से चढ़ गयी थीं. उसने धुआं साफ करते हुए एक बार फिर सब की तरफ देखा और कहा, "जियो.....जियो बेटा! सुख की नींद सोओ इस छत के नीचे....! मैं बाप हूं, तो किसी बुरे सपने को भी नहीं आने दूंगा....!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोड्यूसर की गाड़ी में आटे की बोरियां

प्रकाश पंडित

आखिर वह कौन-सी गलती थी, जिसने बेदी साहब के तमाम वादों और इरादों पर पानी फेरते हुए भी उनकी शोहरत को चार नहीं, पांच-सात चांद लगा दिये थे. एक अंतरंग खुलासा—

अगर किसी समीक्षक से उर्दू के सिर्फ तीन शायरों के नाम लेने को कहा जाये तो वह फौरन गिनवा देगा—मीर, गालिब और इकबाल. इसी तरह अगर कोई मुझसे उर्दू के सिर्फ तीन कहानीकारों के नाम लेने को कहे तो मैं भी एक ही सांस में गिनवा दूंगा—प्रेमचंद, मंटो और बेदी.

मुझे बेदी साहब को उस आलम में पकड़ने का मौका तो नहीं मिला, जब उनके दाढ़ी नहीं आयी थी और न ही उन दिनों उनके मिलाप का शर्बत पीने का मजा मिला, जब वह लाहौर के बड़े डाकखाने में पोस्टकार्डों और लिफाफों पर बड़े दिलबराना अंदाज में खटाखट मोहरें लगाया करते थे, लेकिन बाद में जब वह डाकखाने की मोहरों और बाबुओं से छुटकारा पाकर लाहौर में 'संगम' नामक प्रकाशन-संस्थान कायम करके और उसका भट्ठा बिठाकर आल इंडिया रेडियो की नौकरी के सिलसिले में दिल्ली और श्रीनगर में जूतियां चटकाकर बंबई पहुंचे तो उस वक्त की उनकी स्याह दाढ़ी से सफेद दाढ़ी तक के कमोबेश सारे स्याह-सफेद से मैं जरूर वाकिफ हूं. इस दौरान में मेरा उनसे बेतकल्लुफ पत्र-व्यवहार भी होता रहा और यहां-वहां मुलाकातें भी.

आज से लगभग बीस बरस पहले अपने 13 अगस्त, 1966 के एक पत्र में जबकि मैंने हिंद पाकेट बुक्स की तरफ से सिर्फ उनके हास्य-व्यंग्य लेखों के प्रकाशन की मांग की थी यानी किसी तरह के मशवरे का कोई मौका मुहैया नहीं किया था, उन्होंने हमेशा की तरह एक अदद मशवरा जड़ दिया था.

प्यारे प्रकाश पंडित,

सलामे मोहब्बत!

बुजुर्गों का कहना है कि प्यारे का शब्द लिखकर फिर सलाम न लिखिए, लेकिन हमने कब बुजुर्गों का कहा माना है. मानते तो उर्दू में लिखते! अगर तुम मेरे हास्य-व्यंग्य लेखों के बारे में संजीदा हो तो मैं उन्हें तरतीब दे ही डालूंगा, लेकिन तुम उनका क्या करोगे, क्योंकि मैं तो टाइलेट-पेपर पर नहीं लिखता. मतलब यह कि क्या तुम इसे जेबी किताब की सूरत में छापोगे या लाइब्रेरी एडीशन में. उर्दू में या हिंदी में या तमिल में?

एक बात जो मैंने हमेशा तुमसे कहनी चाही, लेकिन अपनी जात और तुम्हारी जात देखकर रह गया और वह यह कि तुम शराब को पेशाब समझो और एक नामर्द आदमी की तरह शरीफ हो जाओ तो तुम एक बड़े लेखक बन सकते हो. मेरा यह खयाल तुम्हारे कुछ अफसानों

और जानदार खतों पर आधारित है. अब मेरी इस बात का तुम चाहे कुछ भी मतलब निकालो, लेकिन मेरी यह सही राय है. न लिखोगे तो कई किस्म के अदीब तुम पर चढ़ें रहेंगे और तुम उन्हें छापते रहोगे और खुद छिपते.

खैरख्वाह

राजेंद्र सिंह बेदी

इससे भी दस बरस पहले यानी आज से तीस वर्ष पहले, जिन दिनों सेवक 'फनकार' का संपादक था और बेदी साहब ने फिल्मों और उनकी हीरोइनों के चक्कर में पड़कर दिन का चैन नहीं तो रातों की नींद जरूर हराम कर ली थी और अफसानानिगारी से मुंह तोड़ लिया था तो सेवक ने भी बेदी को अफसानानिगारी को फिर से मुंह लगाने का मशवरा दिया था. संजीदा होकर उन्होंने हमारे मशवरे पर अमल करने का वायदा फरमाया था.

भाई प्रकाश पंडित साहब!

कृपा-पत्र मिला. मैं आप लोगों का शुक्र-गुजार हूं कि आप मेरी मजबूरियों को हमदर्दी की निगाह से देखते हैं. आप ही चंद लोग हैं, जो मुझसे मायूस नहीं, जितने दूसरे हैं. मैं अदब की तरफ नहीं आ सकूंगा, इसका सवाल ही पैदा नहीं होता. अपनी प्रोडक्शन मैं इसलिए शुरू कर रहा हूं कि दाल-रोटी का सिलसिला यकीनी हो और फिर लिखने-पढ़ने का अमल जारी हो.

मुझे इस बात का यकीन है कि कोई बात कामयाबी से करनी हो तो आदमी जब तक उस बात से संबंधित माहौल में चौबीस घंटे सांस न ले, उसे ठीक से पूरा नहीं कर सकता.

अपनी प्रोडक्शन शुरू होने के बाद मैं फिल्मों में फ्री-लांसिंग के काम से छुटकारा पा लूंगा. और अपनी यूनिट के आदमियों से मैंने तय कर रखा है कि प्रोडक्शन के बाकी के काम में मैं अपने आप को नहीं उलझाऊंगा. करूंगा तो सिर्फ वही काम, जो लिखने से संबंध रखते हों.

नाविल 'पहाड़ी कौआ' किसी वक्त दस-पंद्रह दिन के अंदर खत्म कर सकता हूं और उसके बाद 'कन्यादान' और 'हंकिये' नाम के दो नाविल स्केच कर रखे हैं, जो इसी साल में खत्म करूंगा. —**राजेंद्र सिंह बेदी**

और देख लीजिए, इस तीस बरस के अरसे में बेदी साहब ने किस सहृदयता और दयानतदारी के साथ अपने सारे वायदों पर पानी फेर कर दिखा दिया है. अलबत्ता नावलिट 'एक चादर मैली-सी' लिखने की जरूर भयानक गलती कर डाली थी, जिसने उनकी शोहरत को चार नहीं, पांच-सात चांद लगा दिये थे.

एक बार बेदी साहब के पास एक लंबी-चौड़ी मोटर कार थी. उन्हीं दिनों पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक संत सिंह सेखों बंबई पधारे. पंजाबी साहित्य केंद्र की ओर से उन्हें एक पार्टी दी गयी, जिसमें अन्य लेखकों के अलावा बेदी साहब भी शामिल हुए. पार्टी के बाद सेखों साहब के बहुत से अन्य लेखक भी बेदी साहब की कार में बैठ गये. बेदी साहब ने उन्हें विभिन्न नाकों पर पहुंचाने की जिम्मेदारी ले ली.

रास्ते में अपनी छितरी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए पंजाबी लेखक सुखबीर ने चुटकी लेते हुए कहा, "बेदी साहब, यह गाड़ी आपके प्रोड्यूसर होने की सही निशानी है!"

"क्यों नहीं." एक अन्य लेखक बोला, "गाड़ी क्या है, पूरा छकड़ा है."

"और इसमें. . ." अब के सेखों साहब ने अपनी घनी मूछों में मुस्कराकर कहा, "आटे की बोरियां भी लादी जा सकती हैं."

इस पर बेदी साहब ने भी सेखों साहब की ओर मुस्कराकर देखा और बोले, "वही तो लादे लिये जा रहा हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्म कोट

क्या सपनों में जीना आदमी की फितरत है. . . .? क्या किसी को रोका जा सकता है सपनों में जीने से? सपने और सच में कितना फर्क होता है. . . .? सपनों में बादशाह और सच में खाकशाह का जीवन जी रहे एक पोस्टमैन की कहानी जिसे संभवत: बेदी साहब ने जिया भी. . .क्योंकि वे विभाजन से पूर्व लाहौर के एक पोस्ट आफिस में नौकरी करते थे. इस कहानी पर बनी फिल्म आज भी भारत की श्रेष्ठतम यथार्थवादी फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है--

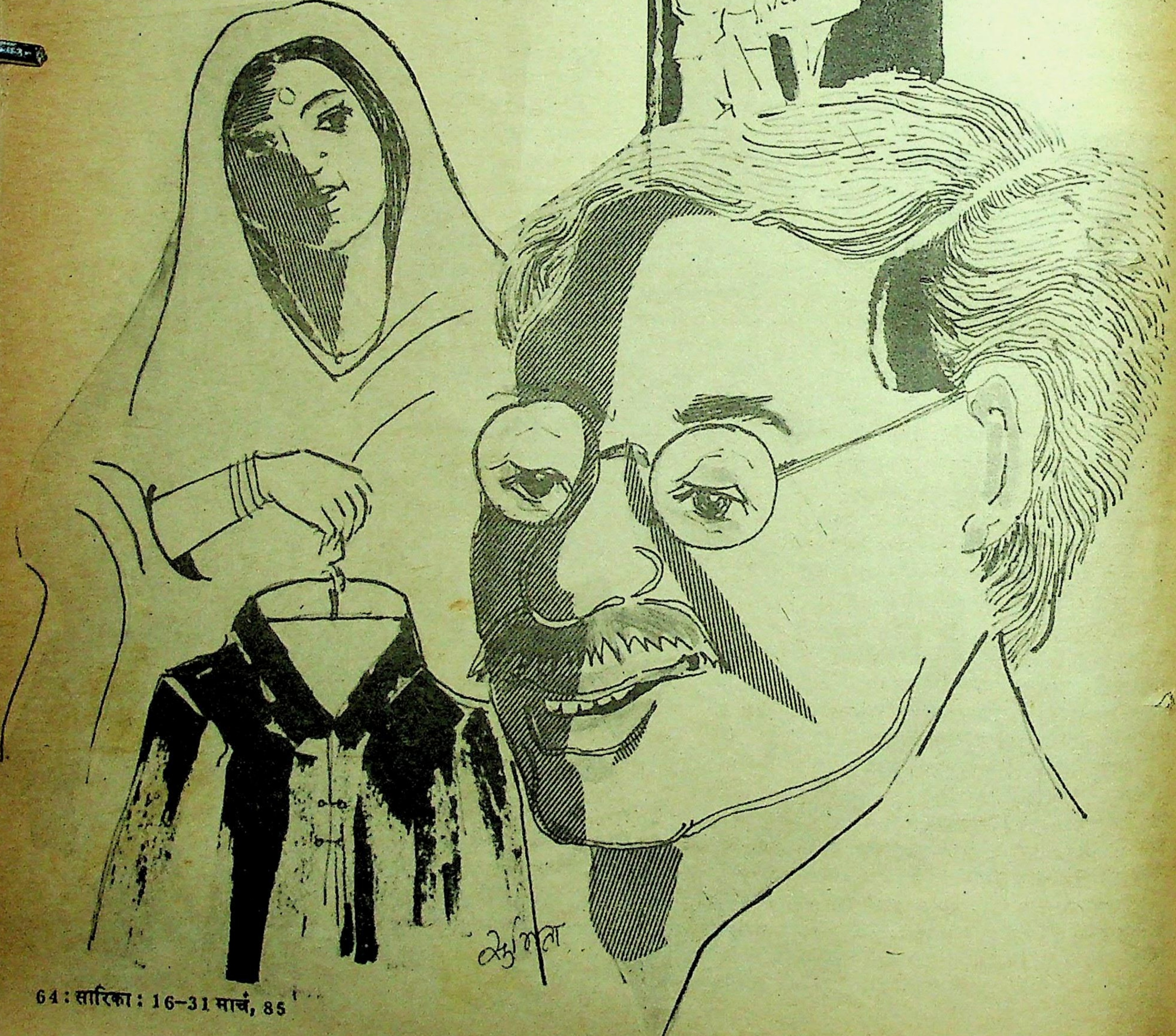

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने देखा है सिराजुलद्दीन टेलर मास्टर की दूकान पर बहुत से उमदा-उमदा सूट टंगे होते हैं. उन्हें देखकर अक्सर मेरे दिल में खयाल पैदा होता है कि मेरा अपना गर्मकोट बिलकुल फट गया है और इस साल हाथ तंग होने के बावजूद मुझे एक नया गर्मकोट जरूर सिलवा लेना चाहिए. टेलर मास्टर की दूकान के सामने से गुजरने या अपने महकमे के मनोरंजन क्लब में जाने से गुरेज करूं तो मुमकिन है कि मुझे गर्मकोट का खयाल भी न आये. क्योंकि क्लब में जब संता सिंह निरानी के कोटों के नफीस वेसटर्ड मेरे समंदर तफैल पर ताजियाना लगाते हैं तो मैं अपने कोट की बोसीदगी को बहुत शिद्दत के साथ महसूस करने लगता हूं कि वह पहले से कहीं ज्यादा फट गया है.

बीवी-बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिए मुझ जैसे मामूली क्लर्क को अपनी बहुत-सी जरूरतें तरक करनी पड़ती हैं और उन्हें जिगर तक पहुंचाती सर्दी से बचाने के लिए खुद मोटा-झोटा पहनना पड़ता है. यह गर्म कोट मैंने पार साल दिल्ली दरवाजे से बाहर पुराने कोटों की एक दूकान से लिया था. दुकानों के सौदागर ने पुराने कोटों की सैकड़ों गांठें किसी 'मराजा मराजा एंड कंपनी' कराची से मंगवाई थीं. मेरे कोट में नकली सिल्क के अस्तर से बनी हुई अंदरूनी जेब के नीचे 'मराजा मराजा एंड को.' का लेबल लगा हुआ था. मगर कोट मुझे मिला बहुत सस्ता. महंगा रोये एक बार सस्ता रोये बार-बार और मेरा कोट हमेशा ही फटा-सा रहता था.

उसी दिसंबर की एक शाम को मनोरंजन क्लब से वापस आते हुए मैं अनारकली में से गुजरा. उस वक्त मेरी जेब में दस रुपये का नोट था. आटा, दाल, ईंधन, बिजली, बीमा कंपनी के बिल चुका देने के बाद मेरे पास वही दस रुपये का नोट बचा रह गया था. जेब में दाम हो तो अनारकली से गुजरना अनुचित नहीं. उस वक्त अपने आप पर गुस्सा भी नहीं आता बल्कि अपनी जात कुछ फैली हुई मालूम होती है. इस वक्त अनारकली में चारों ओर सूट ही नजर आ रहे थे और साड़ियां. चंद साल से हर नत्थु खैरा सूट पहनने लगा है. मैंने सुना है पिछले कुछ बरसों में कई टन सोना हमारे देश से बाहर चला गया है. शायद इसीलिए लोग शारीरिक प्रदर्शन का खयाल भी बहुत ज्यादा रखते हैं. नये-नये सूट पहनना और खूब शान से रहना हमारे अखलास का बस यही सबूत है. वरना जो लोग सचमुच अमीर हैं ऐसी शान शौकत और दिखावटी औपचारिकताओं की जरा भी परवाह नहीं करते.

कपड़े की दुकानों में वेस्टर्ड के थान के थान खुले पड़े थे. उन्हें देखते हुए मैंने कहा, क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपयों में से कोट का कपड़ा खरीदकर बीवी बच्चों को भूखा मारूं. लेकिन कुछ समय के बाद मेरे दिल में नये कोट के नापाक खयाल का रद्दो-अमल शुरू हुआ. मैं अपने पुराने गर्मकोट का बटन पकड़कर उसे बल देने लगा. चूंकि तेज-तेज चलने से मेरे जिस्म में हरारत आ गयी थी इसलिए मौसम की सर्दी और इस किस्म के अन्य प्रभाव मेरे कोट खरीदने के इरादे को निर्णय तक पहुंचाने में असफल रहे. मुझे तो उस वक्त अपना वह कोट भी सरासर तकल्लुफ नजर आने लगा.

ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा है जो लोग सचमुच अमीर होते हैं उन्हें तो फटा हुआ कोट बल्कि कमीज भी औपचारिकता में शामिल समझनी चाहिए. तो क्या मैं सचमुच अमीर था.

मैंने घबराकर अपना निज का विश्लेषण छोड़ दिया और दस का नोट सही-सलामत लिए घर पहुंचा.

शम्मी मेरी बीवी, मेरा इंतजार कर रही थी.

आटा गूंथते हुए उसने आग फूंकनी शुरू कर दी. कमबख्त मंगल सिंह ने इस बार लकड़ियां गीली भेजी थीं. आग जलने का नाम ही नहीं लेती थी. ज्यादा फूकें मारने से गीली लकड़ियों में से ज्यादा धुआं उठा. शम्मी की आंखें लाल अंगारा हो गईं. उनसे पानी बहने लगा.

"कमबख्त कहीं का—मंगल सिंह," मैंने कहा, उन पुरनम आंखों के लिए मंगल सिंह तो क्या मैं सारी दुनिया से जंग करने को तैयार हो जाऊं.

बहुत देर के बाद लकड़ियां आहिस्ता-आहिस्ता चटखने लगीं. आखिर उन परनम आंखों के पानी ने मेरे गुस्से की भी आग बुझा दी. शम्मी ने मेरे कंधे पर सिर रखा और मेरे फटे हुए गर्म कोट में पतली-पतली अंगुलियां डालती हुई बोली, "अब तो यह बिल्कुल काम का नहीं रहा."

"हां," मैंने धीमी आवाज में कहा.

"सी दूं. . .यहां से. . ."

"सी दो, अगर कोई एकाध तार निकालकर रफू कर दो क्या कहने."

कोट को उतारते हुए शम्मी बोली, "अस्तर तो मोटी टिड्डियां चाट रही हैं. नकली रेशम का है न, यह देखिए."

मैंने शम्मी से अपना कोट छीन लिया और कहा, "मशीन के पास बैठने की बजाए तुम मेरे पास बैठो शम्मी, देखती नहीं हो दफ्तर से आ रहा हूं. यह काम तो उस वक्त कर लेना, जब मैं सो जाऊं."

शम्मी मुस्कराने लगी.

वोह शम्मी की मुस्कराहट और मेरा फटा हुआ कोट.

शम्मी ने कोट खुद ही एक तरफ रख दिया. बोली, "मैं खुद भी इस कोट की मरम्मत करते-करते थक गई हूं. इसे मरम्मत करने में गीले ईंधन को जलाने की तरह जान मारनी पड़ती है. आंखें दुखने लगती हैं. आखिर आप अपने कोट के लिए कपड़ा क्यों नहीं खरीदते?"

मैं कुछ देर सोचता रहा.

यूं तो मैं अपने कोट के लिए कपड़ा खरीदना गुनाह समझता था, मगर शम्मी की आंखें, उन आंखों को तकलीफ से बचाने के लिए मैं मंगल सिंह तो क्या तमाम दुनिया से जंग करने पर तत्पर हो जाऊं. वेस्टर्ड के थानों के थान खरीद लूं. नये गर्म कोट के लिए दिल में कपड़ा खरीदने का खयाल पैदा हुआ ही था कि पुष्पामणि भागती हुई आयी.

"बाबूजी, आप आ गये. आज बड़ी बहिन जी (मास्टरनी) ने कहा था मेजपोश के लिए दसूती लाना और गर्म कपड़े पर काट सिखाई जाएगी. गनिया माप के लिए और गर्म कपड़ा."

चूंकि इस वक्त मेरे गर्म कोट के लिए कपड़ा खरीदने की बात हो रही थी, शम्मी ने जोर से एक चपत उसके मुंह पर लगाई और बोली, "इस जनमजली को हर वक्त कुछ खरीदना ही होता है. मुश्किल से इन्हें कोट सिलवाने पर राजी कर रही हूं."

वह पुष्पामणि का रोना और मेरा गर्म कोट.

मैंने आदत के खिलाफ ऊंची आवाज में कहा, "शम्मी."

शम्मी कांप गई. मैंने गुस्से से आंखें लाल करते हुए कहा, "मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो—अभी किसी तरह करो. ऐसे जैसे रो-पीटकर मंगल सिंह की गीली लकड़ियां जलाती हो. तुम्हारी आंखें, हां याद आया. देखो तो पुष्पामणि कैसे रो रही है. पोपी बेटा! इधर आना, इधर आओ मेरी बच्ची, क्या कहा था तुमने. बोलो तो— दसूती, गनिया माप के लिए गर्म कपड़ा, बच्चू नन्हा भी तो ट्राइसकिल का राग अलापता गुब्बारे के लिए मचलता सो गया होगा. उसे गुब्बारा न ले दूंगा तो मेरा कोट सिल जाएगा. है न. कितना रोया होगा बेचारा. शम्मी— कहां है बच्चू?"

बच्चू आ गये आंधी और बारिश की तरह शोर मचाते हुए.

मैंने शम्मी को खुश करने के लिए नहीं, बल्कि यूं ही काफूरी रंग के मीनाकार कांटे सबसे पहले लिखे. अचानक रसोई की तरफ मेरी नजर उठी. चूल्हे में लकड़ियां तड़ातड़ जल रही थीं और उधर शम्मी की आंखें भी दो चमकते हुए सितारों की तरह रोशन थीं. मालूम हुआ मंगल सिंह गीली लकड़ियां वापस ले गया है.

"वोह शहतूत के डंडे जल रहे हैं और खोखा." शम्मी ने कहा.

"और उपले?"

"जी हां उपले भी."

"मंगल सिंह देवता है. शायद मैं भी जल्दी ही गर्म कोट के लिए अच्छा सा 'वेस्टर्ड' खरीद लूं ताकि तुम्हारी आंखें इसी तरह चमकती रहें, इन्हें तकलीफ न हो. इस माह की तनख्वाह में तो गुंजाइश नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिक पूर्ति विभाग से संबंधित विषयों की मौलिक हिन्दी पुस्तकों पर

पुरस्कार

नागरिक पूर्ति विभाग से संबंधित विषयों अर्थात उपभोक्ता संरक्षण, उपभोक्ता सहकारी समितियां, सार्वजनिक वितरण, विधिक माप विज्ञान आदि पर श्रेष्ठ मौलिक हिन्दी पुस्तकों के लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नागरिक पूर्ति विभाग, खाद्य और नागरिक पूर्ति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा नकद पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे।

प्रथम पुरस्कार 5000/- रु.
द्वितीय पुरस्कार 2500/- रु.

पुरस्कारों से संबंधित सभी मामलों पर विभाग का निर्णय अंतिम होगा और इस विषय पर कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा।

पात्रता:

यह पुरस्कार 1984-85 और 1985-86 की दो वर्षों की अवधि के लिए हैं। पहली अप्रैल, 1984 से 30 जून, 1985 तक लिखे गये सभी प्रकाशित ग्रन्थों या पाण्डुलिपियों को विचारार्थ स्वीकार किया जाएगा।

भेजने का पता और अंतिम तारीख:

पुस्तकों या साफ-साफ टाइप की गई पाण्डुलिपियों की पांच-पांच प्रतियां निर्धारित प्रपत्र के साथ सचिव, नागरिक पूर्ति विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 को मुहरबन्द लिफाफे में 31 जुलाई, 1985 तक उपर्युक्त पते पर अवश्य पहुंच जायें। निर्धारित प्रपत्र और अन्य शर्तें भी उपर्युक्त पते से प्राप्त की जा सकती हैं।

davp 84 319

अगले महीने जरूर जरूर. . ."

"जी हां, जब सर्दी गुजर जाएगी."

पुष्पामणि ने कई चीजें लिखवाईं. दसूती गुनिया माप के लिए, गर्म कपड़ा हरे रंग का. डी. सी. एम. के गोले. गोटा. इमरतियां, और बहुत सारे गुलाब जामन. मुई ने सब कुछ लिखवा दिया. मुझे कब्ज था. मैं चाहता था कि यूनानी दवाखाना से एतरफल जमानी का एक डिब्बा भी लाकर रखूं. दूध के साथ थोड़ा खाकर सो जाया करूं. मगर मुई पुष्पा ने इसके लिए गुंजाइश ही कहां छोड़ी थी. और जब पुष्पा ने कहा, गुलाब जामन तो उसके मुंह में पानी आ गया. मैंने कहा सबसे जरूरी चीज तो यह है, शहर से वापस आने पर मैं गुलाब जामन वहां छिपा दूंगा जहां सीढ़ियों में बाहर जमादार अपना दूध का कलसा रख दिया करता है और पुष्पा से कहूंगा मैं तो लाना ही भूल गया तुम्हारे लिए गुलाब जामन. उस वक्त उसके मुंह में पानी भर आयेगा और गुलाब जामन न पाकर उसकी अजीब कैफियत होगी.

फिर मैंने सोचा बच्चू तो सुबह से गुब्बारे और ट्राइसकिल के लिए जिद कर रहा था. मैंने एक बार अपने से सवाल किया, एतरफल जमानी?

शम्मी बच्चों को पुचकारते हुए कह रही थी, "बच्चू बेटी को ट्राइसकिल ले दूंगी अगले महीने. पोपी मुन्ना कुछ नहीं लेगा."

और मैंने शम्मी की आंखों की कसम खाई, जब तक ट्राइसकिल के छः सात रुपये जेब में नहीं होंगे मैं नीले गुंबद के बाजार से नहीं गुजरूंगा. इसलिए कि दाम न होने की सूरत में नीले गुंबद के बाजार से गुजरना बहुत खतरनाक है. ख्वाहमखाह अपने आप पर गुस्सा आएगा. अपनी जात से नफरत पैदा होगी.

उस वक्त शम्मी बैजमी आइने की टुकड़ी के सामने सफेद काफूरी सूट में खड़ी थी. मैं चुपके से उसके पीछे जाकर खड़ा हुआ और कहने लगा, "मैं बताऊं इस वक्त तुम क्या सोच रही हो?"

"बताओ तो जानूं?"

"तुम सोच रही हो सफेद काफूरी सूट के साथ काफूरी रंग के मीनाकार कांटे पहनकर जिलेदार की बीवी के यहां जाऊं तो दंग रह जाए."

"नहीं तो," शम्मी ने हंसते हुए कहा, "आप मेरी आंखों से प्यार करते हैं तो कभी का गर्म. . ."

फिर मैं अपनी इस हसीन दुनिया को जिसकी रचना पर सिर्फ दस रुपये खर्च होते थे, कल्पना में बसाए बाजार चला गया.

मेरे सिवा अनारकली से गुजरनेवाले हर आदमी ने गर्म सूट पहन रखा था. मैंने उन सूटों की ओर देखते हुए सोचा, लोग सचमुच गरीब हो गए हैं. इस महीने न मालूम कितना सोना चांदी हमारे मुल्क से बाहर चला गया है. कोटों की दुकान पर मैंने कई कोट देखे. फिर मैंने सोचा, सबसे पहले पुष्पामणि के लिए गुलाब जामन और इमरतियां खरीदनी चाहिए. कहीं वापसी पर सचमुच भूल ही न जाऊं. घर पहुंचकर उन्हें छिपाने से खूब तमाशा रहेगा. मिठाई की दुकान पर खौलते रोगन में कचौरियां खूब फूल रही थीं. मेरे मुंह में पानी भर आया. उसी तरह जैसे गुलाब जामन की कल्पना पर पुष्पामणि के मुंह में पानी भर आया था. कब्ज और एतरफल जमानी के खयाल के बावजूद सफेद पत्थर की मेज पर बैठकर बहुत लज्जत से कचौरियां खाने लगा.

हाथ धोने के बाद जब पैसों के लिए जेब टटोली तो उसमें कुछ भी न था. दस का नोट कहीं गिर गया था.

कोट की अंदरूनी जेब में एक बड़ा सूराख हो रहा था. नकली रेशम टिड्डियां चाट गई थीं. जेब में हाथ डालने पर उस जगह जहां 'मरांजा मरांजा एंड को' का लेबल लगा था, मेरा हाथ बाहर निकल आया. नोट वहीं से गिर गया होगा.

एक क्षण में यों दिखाई देने लगा जैसे कोई भोली-सी भेड़ अपनी खूबसूरत मुलायम-सी ऊन उतर जाने पर दिखाई देने लगती है.

हलवाई भांप गया. खुद ही बोला, "कोई बात नहीं बाबूजी, पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जायेंगे."

मैं कुछ न बोला. बोल ही न सका. सिर्फ शुक्रगुजार नजरों से हलवाई की ओर देखा. हलवाई के पास ही गुलाब जामन चाशनी में डूबे पड़े थे. रोगन में फूलती हुई कचौरियों के धुएं में टख इमरतियां जिगर पर दाग लगा रही थीं और जहन में पुष्पामणि की धुंघली-सी तस्वीर फिर गई.

मैं वहां से बादामी बाग की तरफ चल दिया. और आध पौन घंटे बादामी बाग की रेलवे लाइन के साथ-साथ चलता रहा. इस अरसे में जंक्शन की तरफ से एक मालगाड़ी आयी. उसके पांच मिनट बाद एक षंट करता हुआ इंजन, जिसमें से दहकते हुए सुर्ख कोयले लाइन पर गिर रहे थे. मगर उस वक्त पास की ही साल्ट रिफाइनरी में से बहुत सारे मजदूर ओवर टाइम लगाकर लौट रहे थे. मैं लाइन के साथ-साथ दरिया के पुल की ओर चल दिया. चांदनी रात में सर्दी के बावजूद कालेज के कुछ मनचले नौजवान किश्ती चला रहे थे.

कुदरत ने अजीब सजा दी मुझे. मैंने कहा, पुष्पामणि के लिए गोटे की मफरबी दसूती, गुलाब जामन और शम्मी के लिए काफूरी मीनाकार कांटे न खरीदने से बढ़कर क्या गुनाह हो सकता है. किस बेरहमी और बेदर्दी से मेरी एक हसीन मगर बहुत सस्ती दुनिया बर्बाद कर दी गई है. जी तो चाहता है कि मैं भी कुदरत का एक शाहकार तोड़-फोड़कर रख दूं.

मगर पानी में किश्ती चलाता हुआ लड़का कह रहा था, "इस मौसम में तो रावी में पानी घुटने-घुटने से ज्यादा कहीं नहीं होता."

मैं लाचार घर की तरफ लौटा. पुष्पामणि और बच्चू नन्हा देर हुई दहलीज से उठकर बिस्तरों में जा सोये थे. शम्मी चूल्हे के पास शहतूत और नीमखान कोयलों को तापती हुई कई मरतबा ऊंघी और कई मरतबा चौंकी भी. वह मुझे खाली हाथ देखकर ठिठक गई. उसके सामने मैंने चोर जेब के अंदर हाथ डाला और लेबल के नीचे से बाहर निकाल लिया. शम्मी सब कुछ समझ गई. वह कुछ न बोली.

यजदानी और संता सिंह क्लब में परेल खेल रहे थे. उन्होंने दो-दो घूंट पी भी रखी थी. मैं सोच रहा था काश मेरी जेब में भी एक दो रुपये होते. क्या हैरानी थी कि मैं बहुत सारे रुपये बना लेता. मगर मेरी जेब में तो कुल पौने चार आने थे. उस वक्त मैंने एक निराश आदमी की तरह जेब में हाथ डाला और कहा, बीवी बच्चों के लिए कुछ खरीदना कुदरत के नजदीक गुनाह है. इस हिसाब से परेल खेलने के लिए तो उसे अपनी जेब से दाम देने चाहिए. कोट में पीछे की तरफ मुझे कोई कागज सरकता हुआ मालूम हुआ. उसे सरकाते-सरकाते मैंने उसे दायीं जेब के सूराख से बाहर निकाला.

वह दस रुपये का वही नोट था जो उस दिन भीतर जेब की तह के सूराख में से गुजरकर कोट के अंदर ही अंदर गुम हो गया था.

उस दिन मैंने कुदरत से प्रतिशोध लिया. मैंने उसकी ख्वाहिश के मुताबिक परेल-वरेल न खेला. नोट को मुट्ठी में दबाए घर की तरफ भागा. अगर उस दिन मेरा इंतजार किए बगैर शम्मी ने काफूरी सूट बदल दिया होता तो मैं खुशी से यों दीवाना न होता.

फिर वही कल्पनाओं का दौर चलने लगा. गोया एक हसीन-से हसीन दुनिया की रचना में दस रुपये से ऊपर एक दमड़ी भी खर्च नहीं आती. जब मैं बहुत-सी चीजों की सूची बना रहा था तो शम्मी ने मेरे हाथ से कागज छीनकर पुर्जे-पुर्जे कर दिया और बोली, "इतने किले मत बनाइए, फिर नोट को नजर लग जाएगी."

शम्मी ठीक कहती है. मैंने सोचते हुए कहा. न यह कल्पना इतनी रंगीन हो और न इतना दुख पहुंचे. फिर मैंने कहा, "एक बात है शम्मी. मुझे डर है कि नोट फिर कहीं मुझसे गुम न हो जाये. तुम्हारी खेमू पड़ोसन बाहर जा रही है. उसके साथ जाकर तुम ये सब चीजें खरीद लाओ. डी.सी.एम. के गोले, गोटा, दसूती और पोपी के लिए गुलाब जामन जरूर लाना, जरूर."

'गर्म कोट' के बाद की 'लालबत्ती'

'गर्म कोट" राजेंद्रसिंह बेदी की कहानी पर बनी फिल्म थी, जिसकी पटकथा और संवाद भी बेदी ने ही लिखे थे. वह बहुत बढ़िया फिल्म मानी गयी थी.

उसके बाद उसी कोआपरेटिव यूनिट की ओर से एक और फिल्म की योजना बनायी गयी. पर उसकी कहानी बेदी से नहीं लिखवायी गयी. कहानी-लेखक के बजाय बेदी को उस फिल्म का प्रोड्यूसर बना दिया गया. और प्रोड्यूसर भी ऐसा, जिसे कुछ पता नहीं था कि फिल्म कैसे बन रही है, कहां तक बन गयी है . . .

फिल्म रिलीज की गयी, तो बुरी तरह से फेल हुई. फिल्म इंडस्ट्री में बेदी का नाम, प्रोड्यूसर के तौर पर, बदनाम होने से न रहा.

फिल्म का नाम था 'लाल बत्ती'.

उस फिल्म के बारे में बेदी के मन में बहुत तलखियां थीं. कभी उसका जिक्र होने पर वे कहते थे, 'मेरी एक नहीं सुनी गयी. कम से कम मेरा एक सुझाव ही मान लिया होता—फिल्म का नाम 'लाल बत्ती' के बजाय 'हरी बत्ती' रख दिया होता. तब फिल्म कुछ तो चली होती. पर वह लाल बत्ती तो प्रोड्यूसर के तौर पर जैसे मुझे दिखाई गयी थी कि मैं भविष्य में फिल्में बनाना बंद कर दूं."

प्रस्तुति : सु[illegible]

बच्चों के शोर से मेरी तबीयत बहुत घबराती है. लेकिन उ[illegible] मैं देर तक बच्चू नन्हें को उसकी मां की अनुपस्थिति में बहलाता रहा. वह रसोई से ईंधन की कोठरी, गुसलखाने, छत पर सब जगह उसे ढूंढ़ता फिरा. मैंने उसे पुचकारते हुए कहा, "वह ट्राइसकिल लेने गयी है."

"नहीं, जाने दो ट्राइसकिल गंदी चीज होती है आख थू."

"गुब्बारा लायेगी बीवी तुम्हारे लिए, बहुत खूबसूरत गुब्बारा."

बच्चू ने मेरे सामने थूक दिया, "ए ई गंडी."

मैंने कहा, "कोई देखे तो कैसा बेटियों जैसा बेटा है," पुष्पामणि को भी मैंने गोद में ले लिया और कहा, "पोपी मुन्ना आज गुलाब जामन जी भर के खाएगा न."

उसके मुंह में पानी भर आया. वह गोदी से उतर पड़ी और बोली, "ऐसा मालूम होता है जैसे एक बड़ा-सा गुलाब जामन खा रही हूं."

मुझे मेरी कल्पना की उड़ान से कौन रोक सकता था. कहीं मेरी कल्पना के किले जमीन पर न आ रहें. इसी डर से तो मैंने शम्मी को बाजार भेजा था. मैं सोच रहा था, शम्मी अब घोड़े हस्पताल के पास पहुंच गयी होगी. अब कॉलेज रोड की नुक्कड़ पर होगी.

और एक निहायत धीमी आवाज से कुंडी हिली.

शम्मी सचमुच आ गयी थी दरवाजे पर.

शम्मी अंदर आते हुए बोली, "मैंने दो रुपये खेमू से उधार लेकर भी खर्च कर डाले हैं."

"कोई बात नहीं." मैंने कहा.

फिर बच्चू, पोपी मुन्ना और मैं तीनों शम्मी के आगे-पीछे घूमने लगे. मगर शम्मी के हाथ में एक बंडल के सिवा कुछ न था. उसने मेज पर बंडल खोला. वह मेरे कोट के लिए बहुत नफीस वस्टर्ड था.

पुष्पामणि ने कहा, "बीबी मेरे गुलाब जामन. . ."

शम्मी ने जोर से एक चपत उसके मुंह पर लगा दी. □

अनुवाद : ब्रजेश्वर मदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज मेरे कू उनकी कमी बेचैन किये रहता है!

▣ त्रिलोचन पांडे

हमारी कैमरा टीम बेदीजी के घर पर गयी थी, उनके स्मृति चिह्नों को कैमरे में कैद करने. खार एक्सचेंज के पास गौथिक शैली का एक पुराना-सा मकान. यह मकान बेदी साहब के बेटे नरिंदर बेदी का ऑफिस भी था और रिहाइश भी. बीमारी के दिनों में बेदी साहब अपने माटुंगा वाले मकान को छोड़ यहीं आ गये थे, प्रवेश द्वार के दोनों ओर बड़ी-बड़ी पत्थर की मूर्तियां रखी थीं और गमले सजे हुए थे. घंटी बजाते ही एक उदास खूबसूरती लिये छरहरी महिला ने दरवाजा खोला. ये नरिंदर की पत्नी श्रीमती वीना बेदी थीं. उन्हीं के पीछे खड़ा था एक गोरा मझोले कद का आदमी. उसने कमीज और पाजामा पहन रखा था. बाद में हमें पता चला कि उसका नाम त्रिलोचन पांडे है. रहने वाला अल्मोड़ा का है और पिछले 22 साल से बेदी साहब के साथ रह रहा है. बीमारी के दिनों में बेदी साहब पूरी तरह उसी पर निर्भर करने लगे थे. और मरने से पहले उसके नाम 20 हजार रुपये कर गये थे. हमने उससे बात करने की कोशिश की तो पहले वह घबराया और फिर रोने लगा. बहुत कोशिश करने पर अटक-अटककर कुछ वाक्य ही वह बोल पाया. जब हमने उससे 20 हजार रुपयों की बात उठायी तो उसने रुंधे गले से कहा, "साब, मेरे को बोले थे कि तेरे को पहले दिये जाता हूं. अब मेरा आखिरी वक्त है, पता नहीं मेरे पीछे क्या हो, कोई छोटा-मोटा धंधा कर लेना, गुजारा हो जायेगा." उसने मुंह फिराकर अपने आंसू पोंछे और बोला, "साब, मेरे को लगता है कि मेरा बाप मर गया है. सन 62 में बीबी (श्रीमती कौशल्या अश्क) मेरे को बेदी साहब को सौंप गयी थीं, तब से अजून तलक उन्हीं को अपना बाप मानता रहा."

जब हमने उससे पूछा कि बेदी साहब के न रहने पर अब उसे कैसा लग रहा है तो फिर रोने लगा. काफी देर बाद बता पाया, "बीमारी के बाद वह मेरे पर ही आ गये थे. उनके सारे काम मैं ही करता था. उस समय जैसे उन्हें मेरी कमी बेचैन कर देती थी वैसे ही आज मेरे कू उनकी कमी बेचैन किये रहती है." उसने बड़े आग्रह के साथ हमें वे सारी जगहें और चीजें दिखायीं, जिन्हें बेदी साहब इस्तेमाल में लाते थे या जहां वे काम या आराम करते थे. □

हम दोनों एक दूसरे को तसल्ली भर देते रहते थे।

▣ वीना बेदी

बीमारी के दौरान और उसके बाद बेदी साब की मानसिक स्थिति कैसी हो गयी थी, हम इसे जानना चाहते थे. त्रिलोचन बार-बार रोने के कारण कुछ खास नहीं बता पाया. इस काम के लिए हमने उनकी पुत्रवधू श्रीमती वीना बेदी से आग्रह किया. उन्होंने बताया, "बीमारी के दौरान और उसके बाद भी वे अकेलापन महसूस करने लगे थे और जल्दी ही खीज भी उठते थे. वे चाहते थे कि लोग-बाग पहले की तरह ही उनसे मिलने-जुलने आयें और जब कुछ लोग आ जाते थे तो उन्हें घबराहट होने लगती थी और सोचने लगते थे कि जल्दी ही ये लोग चले जायें. आप तो जानते ही हैं कि हंसी-मजाक, जोक कट करना बहुत पसंद था. ऐसा आदमी अगर अकेलापन ढूंढने लगे तो आप सोच लीजिए कि उसकी मानसिक स्थिति क्या रही होगी. दरअसल उनका माइंड स्लो रहने लगा था. जो आदमी बातों का धनी था, वही कहीं जाने के सिलसिले में यह कहने लगे, 'मैं क्या करूंगा जाके, क्या बात करूंगा, मुझे तो बात ही नहीं करनी आती,' तो बताइए, उन्हें जानने वाले आदमी को कितनी तकलीफ होगी. . . . . नरिंदर की डैथ के बाद तो वे और भी खामोश हो गये थे. दोनों में प्यार भी खूब था और प्रोफेशनल राइवलरी भी खूब थी. दोनों ही एक दूसरे की पॉपुलर्टी से जलते थे. नरिंदर जब बहुत मूड में होते थे तो कहते थे, 'लोगों के तो बेटे बिगड़ जाते हैं, मेरा बाप बिगड़ गया है.' नरिंदर की डैथ के बाद हम दोनों एक दूसरे को तसल्ली भर देते रहते थे. . .". बार-बार डेथ की बातों ने वीनाजी को और भी उदास बना दिया था, इसलिए बात यहीं रुक गयी. □

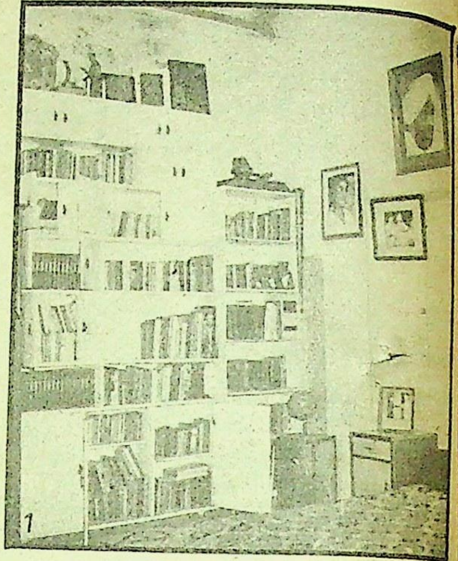

1

चित्र परिचय : 1. बेदी की लाइब्रेरी 2. बेदी का पुत्रवत सेवक : त्रिलोचन पांडे 3. लोगों के तो बेटे बिगड़ते हैं, मेरा बाप बिगड़ गया है- नरेंद्रसिंह बेदी 4. भूतपूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसेन के साथ 5. परिवार के सदस्य 6. बेदी के दरवाजे पर 7. भूतपूर्व राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के साथ 8. बेदी को मिले पुरस्कार

2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

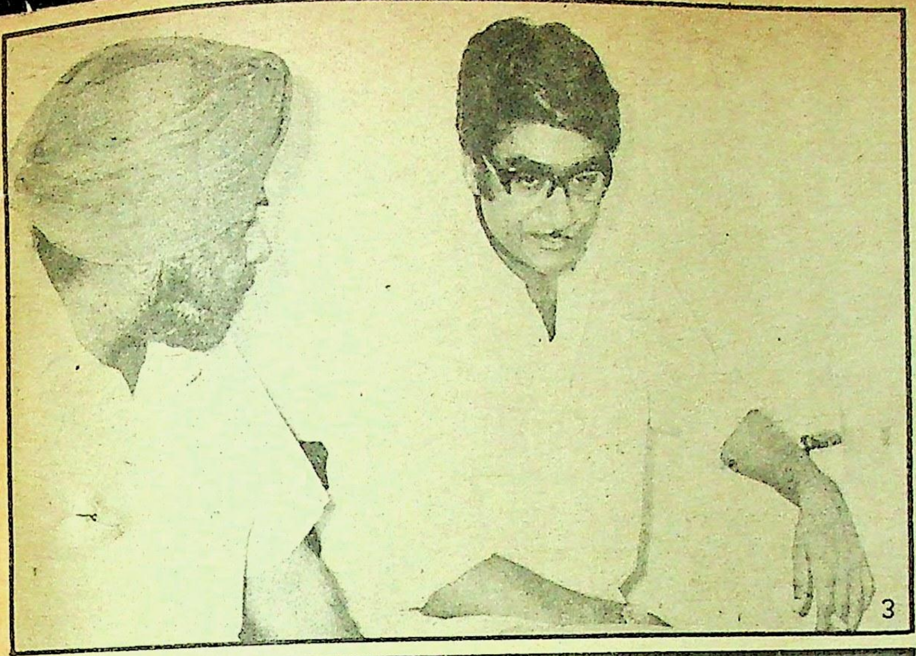

3

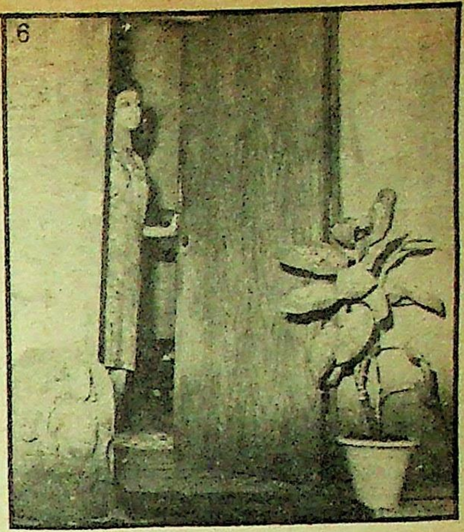

6

4

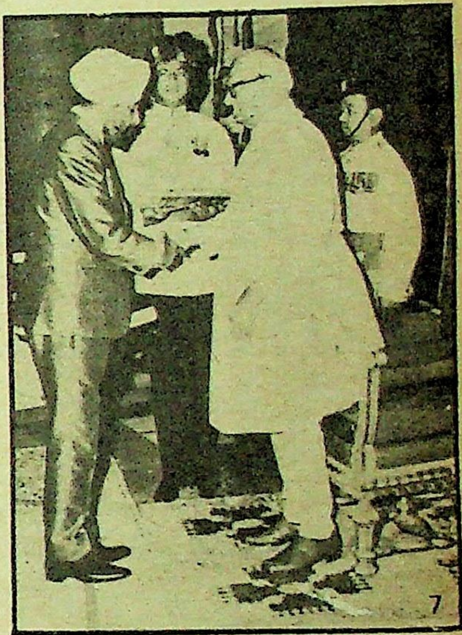

7

5

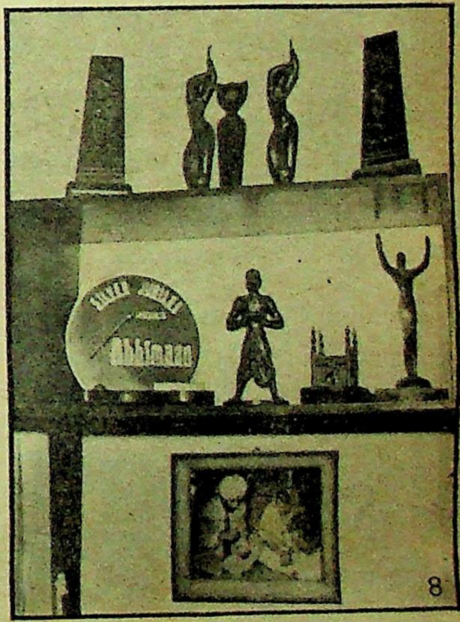

8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि : भवानीप्रसाद मिश्र और चंद्रगुप्त विद्यालंकार

दो मित्र विदा होते हैं ज्यों, ऐसे चल दूं!

भवानी भाई ने लिखना किसी बड़ी व्याकुलता या प्रेरणा से शुरू नहीं किया था. तब वे बड़ी बारीकी से यह समझ रहे थे कि लगभग सभी कवि कुछ बंधे-बंधाए ढंग से कुछ बंधी-बंधायी बातें कहते रहते हैं. यह 'छायावाद' का युग था. भवानी भाई के कवि को यह सब नहीं रुचा. जब-जब उन्होंने लिखा, मौन और मनन की होशियारी के बेमजा हो जाने पर ही लिखा. तभी तो आज रह-रह कर उनकी कविता बोल उठती है—

कलम अपनी साध,
और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध.

खुद को व्यक्त करना ही वे अपने कवि की नियति मानते रहे. सतर्क कवितामय जीवन जिस तरह भवानी भाई ने जिया, वह उन्हीं के शब्दों में सही अर्थ देता है. . . ., "मैं कविता नहीं लिखता, कविता मुझको लिखती है. हो सकता है, यह बात सुनने में अजीब लगे. किंतु मैं इस अंतर को जानता हूं और मुझे खबर है कि यह अंतर मेरे व्यक्तित्व का अंश है. कविता लिखते समय मेरा मन और मन ही नहीं समूचा अस्तित्व शब्दों से ध्वनित होने वाली झंकार से कांपता रहता है. ये झंकारें कभी अकेली-अकेली बजती हैं, कभी समवेत होकर समुदायों में. इसीलिए मैं कविता के संदर्भ में अपने को शब्दों की रौ में बहनेवाला कोई व्यक्ति सोचता हूं . . ."

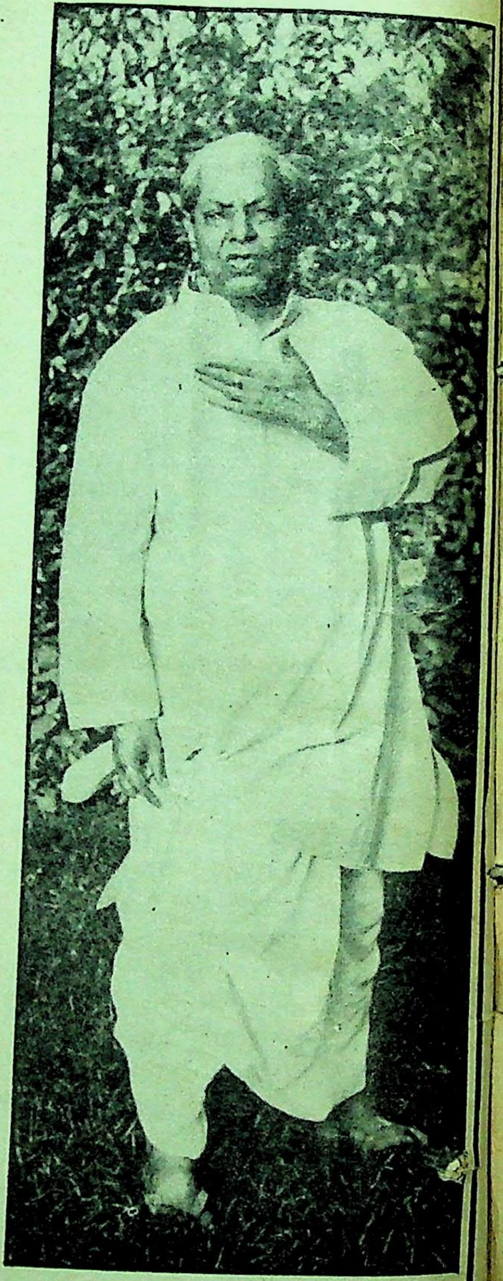

अपने साथ-साथ वे समकालीन कविता को लेकर भी गंभीरता से विचार करते रहे. कविता को लेकर उनका विचार इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि वे कविता को किसी काल विशेष से बांधकर चलने में यकीन नहीं रखते. लिखने के बाद कविता को बोलकर देखने . . . और उसमें बोलचाल की ताकत परखने का उनका अपना ही अंदाज रहा है. यही वजह है कि हिंदी के स्तरीय कवि-सम्मेलनों में श्रोताओं से लेकर विशाल पाठक-समुदाय तक उनकी पहुंच बहुत सार्थक रही है.

मिट्टी की गंध का सोंधापन और उसके प्रति एक विशिष्ट आत्मीय भाव भवानी भाई की कविता का 'प्राण' कहा जा सकता है. उन्हें अपने गांव की संकरी गली के मुकाबले विस्तृत पथों और उन पर दौड़ते हुए रथों पर दया आती है. जीवन की साधारणता को जिस तरह गूंथकर वे कविता में प्रस्तुत करते हैं, वह मुहावरे के तौर पर ही आम आदमी के कवि नहीं रह जाते. . . . बल्कि कविता का श्रोता या पाठक स्वयं चकित रह जाता है कि उसकी अपनी जिंदगी की भीतरी पर्तों में छिपा दर्द कविता में कैसे उभर आया !

निरंतर कुछ नया और प्रभावी करने लायक लिये यह कवि, अपने हर अगले संग्रह में पहले से अधिक प्रभावित करता रहा. . . . **अगले संग्रह में बहुत दिखूंगा मैं/गीले शब्दों को बचाकर कहां तक लिखूंगा मैं !**

अब उनका अगला संग्रह जब आयेगा. . . तो उसकी ताब केवल तभी देख पायेंगे.

प्रभु मुझ पर कृपा करो ऐसी
जब मृत्यु दिवस का सूर्य
छुए आकर मुझको
मैं हाथ हिलाकर
किसी विदाई के क्षण में
दो मित्र विदा होते हैं ज्यों
ऐसे चल दूं.. . . . .

भवानी भाई ने जब यह पंक्तियां लिखी थीं, तब किसे पता था कि ऐसे ही, ठीक ऐसे ही चले जायेंगे वे और छायावादोत्तर हिंदी कविता का एक दृढ़ स्तंभ हमारे बीच अनुपस्थित हो जायेगा. हम कभी 'गीत फरोश' और 'चकित है दुख' को याद करेंगे तो कभी 'गांधी पंचशती', 'अंधेरी कविताएं,' 'बुनी हुई रस्सी', 'व्यक्तिगत', 'खुशबू के शिलालेख', 'परिवर्तन जिए,' 'त्रिकाल संध्या,' 'अनाम तुम आते हो', 'इदं न मम्', 'शरीर कविता', 'फसलें और फूल', 'मानसरोवर दिन,' 'संप्रति', 'नीली रेखा के पास तक' और 'कालजयी' को. . . . जो लोग उनके गद्य-लेखक से मिलना चाहेंगे वे 'जिन्होंने मुझे रचा' और 'कुछ नीति कुछ राजनीति' पढ़ेंगे. . . . और चाहेंगे कि ऐसे सरस्वती-पुत्र और हों हमारे साहित्य में. 'सारिका-परिवार' की ओर से चंद्रगुप्त विद्यालंकार के साथ उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य साधक चंद्रगुप्त विद्यालंकार

मन्मथनाथ गुप्त

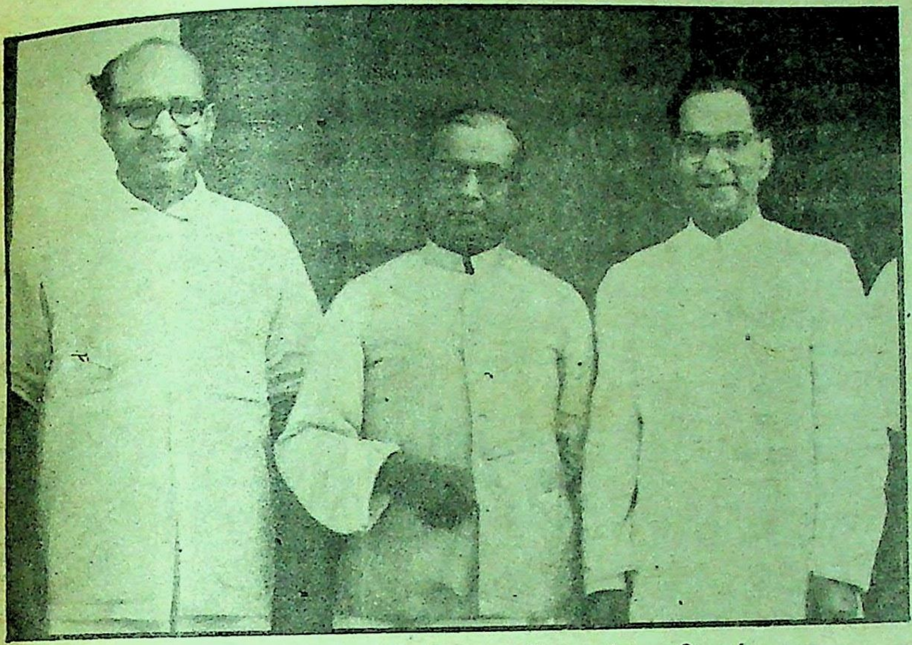

सर्वश्री मन्मथनाथ गुप्त, भगवतीचरण वर्मा तथा चंद्रगुप्त विद्यालंकार

चंद्रगुप्त विद्यालंकार गुरुकुल के स्नातक थे. उनकी छात्रावस्था के बहुत पहले ही यह तय हो चुका था कि पंजाब के हिंदुओं की मातृभाषा हिंदी है, यद्यपि वहां के हिंदू घर में पंजाबी बोलते थे और अखबार उर्दू में पढ़ते थे. शायद इस प्रकार धर्म के साथ मातृभाषा को जोड़ने की परिपाटी अलीगढ़ से चली, जहां उर्दू को मुसलमानों की भाषा करके सामने लाया गया, यद्यपि उर्दू की उत्पत्ति बाजारों में हुई, जहां आम लोग मिलते थे. यहां इस बहस में पड़ने की गुंजाइश नहीं कि यह कैसे हुआ कि धर्म के साथ मातृभाषा जुड़ गयी. हम तो इतना ही कहकर आगे निकल जायेंगे कि सैयद अहमद इसके लिए जिम्मेदार हों या स्वामी दयानंद, पाकिस्तान के निर्माण से लेकर खालिस्तान आंदोलन तक इस चिंतन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है.

मैंने यह बात इसलिए छेड़ी कि चंद्रगुप्त विद्यालंकार के सार्वजनिक जीवन का सूत्रपात हिंदी के एक मिशनरी के रूप में हुआ. वह बड़े चाव से यह सुनाते थे कि जब प्रेमचंद या निराला जैसी हिंदी की विभूतियां पंजाब में पधारीं तो उन्होंने कैसे उनके स्वागत आदि में भाग लिया. यद्यपि फतवा देने वालों ने फतवा दे दिया कि पंजाबी नहीं, हिंदी हिंदुओं की मातृभाषा है, पर अभी इसे व्यावहारिक रूप देने की लड़ाई जारी थी. उसमें गुरुकुल से निकले हुए प्रतिभाशाली व्यक्तियों—सत्यकेतु विद्यालंकार, अमरनाथ विद्यालंकार, चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि ने अपने-अपने ढंग से भाग लिया. यह लड़ाई कितनी कठिन थी, यह इसी से जाहिर है कि पश्चिमी पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) से आये हुए शरणार्थियों की बदौलत दिल्ली में अब भी प्रताप, मिलाप आदि उर्दू दैनिक अखबार चलते हैं. अवश्य इतिहास की नाड़ी की गति पहचानकर इन उर्दू अखबारों के मालिकों ने अपने हिंदी संस्करण निकाल दिये हैं, जो बराबर तरक्की कर रहे हैं और उनके उर्दू अखबार दिन-ब-दिन क्षीण और रक्तहीन होते जा रहे हैं.

चंद्रगुप्तजी आदि को हिंदी के मिशनरी के रूप में अस्त्र बाहर से, संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) आदि से मंगाने पड़े. लाला लाजपत राय उर्दू और अंग्रेजी के लेखक थे. यद्यपि वह गाहे-बगाहे हिंदू धर्म का झंडा भी उठाते थे. उस समय पंजाब में उर्दू के जरिये हिंदी की लड़ाई लड़ी गयी.

चंद्रगुप्तजी ने पंजाब में हिंदी की लड़ाई को बल पहुंचाने तथा अपने तरकश को भरने के लिए काशी की कई बार यात्रा की, क्योंकि उन दिनों प्रेमचंद, प्रसाद और पराड़कर के कारण काशी पर सारे हिंदी जगत की आंखें लगी हुई थीं. काशी का ज्ञानमंडल, प्रकाशन के क्षेत्र में शिवप्रसाद गुप्त और संपूर्णानंद के नेतृत्व में गंभीर साहित्य का सृजन कर रहा था. वह इलाहाबाद में कविवर हरिवंशराय बच्चन से भी मिले. जहां तक मुझे स्मरण है, प्रथम पत्नी के वियोग के बाद बच्चन की दूसरी शादी में चंद्रगुप्त परिवार का बहुत योग था. चंद्रगुप्त पटना और कलकत्ता तक साहित्यकारों से जाकर मिले और कइयों को वह लाहौर ले जाने में समर्थ हुए. वह जैनेंद्र और सुमित्रानंदन पंत से भी मिले. वही शिक्षा मंत्री अमरनाथ विद्यालंकार के जरिये हजारीप्रसाद द्विवेदी को चंडीगढ़ लिवा गये थे.

यह उस युग की बात है, जब चंद्रगुप्त हिंदी लेखक कम और हिंदी के मिशनरी अधिक थे. बाद को जब वह विभाजन के बाद दिल्ली में आकर बस गये तो इनमें से कई लोगों के साथ उनकी अंतरंगता बहुत बढ़ गयी. यहां तक कि उन्होंने बच्चनजी की संक्षिप्त जीवनी लिखी, जो 'आज के हिंदी कविमाला' में प्रकाशित हुई और उसके कई संस्करण हुए.

मृत्यु के छह महीना या कि सालभर (समय कितना जल्दी जाता है) पहले जब वह दिल्ली आये थे तो खालिस्तानी आंदोलन बहुत उपद्रवी रूप धारण कर चुका था. चंद्रगुप्त अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के बहुत अच्छे अध्येता थे जैसा कि 'विश्वदर्शन' के संपादन काल में हमें पता चल गया था. उनके साथ खालिस्तानी आंदोलन पर बातचीत हुई. किसी कमरे में बैठकर हम बातचीत के आदी नहीं थे. वह मेरे घर आये और हम दोनों टहलने के लिए निकल गये. वह टहलने के बहुत प्रेमी थे. मैं भी वैसा ही था. हम लोग इस मामले में अरस्तू के अनुयायी थे. अरस्तू अपने शिष्यों के साथ टहल-टहलकर बात करते थे.

चंद्रगुप्तजी ने विश्लेषण करते हुए जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है कि खालिस्तानी आंदोलन की जड़ें न भाषा में हैं, न धर्म में. पंजाबी को हिंदी वैसे ही अनायास आती है जैसे हंस को तैरना. रहा धर्म तो हिंदू धर्म की रक्षा के लिए ही सिक्ख धर्म का उद्भव और विकास हुआ. इसी कारण बहुत से हिंदू घरों में पहले बेटे को पंथ में अर्पित करने की प्रथा थी. असली झगड़ा है कि इस समय संसार के सारे सरमायेदार यह हृदयंगम कर चुके हैं कि भारत के टुकड़े-टुकड़े किये बगैर उस पर काबू नहीं पाया जा सकता. इसी कारण कहीं न कहीं किसी न किसी बहाने झगड़े पैदा किये जा रहे हैं पैसे देकर. उनका खयाल था कि अकाली आतंकवादियों को धन के अलावा विचारधारा भी बाहर से दी जा रही है.

हिंदी साहित्य के गत पचास साल के इतिहास में, विशेषकर पंजाब के इतिहास में उनका नाम बार-बार गौरव के साथ लिया जायेगा. मैंने लगभग बारह साल उनके साथ पुराना सचिवालय में काम किया. जब भी कोई समस्या लेकर उनके पास गया, उपकृत और चमत्कृत होकर लौट आया. यद्यपि वह अपने को बढ़कर प्रगतिशील नहीं कहते थे, पर वह गोर्की के प्रशंसकों में से थे. वह समाजवादी न होते हुए भी रूस के अनन्य प्रेमी थे. कला कला के लिए नहीं, बल्कि कला जीवन के लिए है, यह उनकी मान्यता रही. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

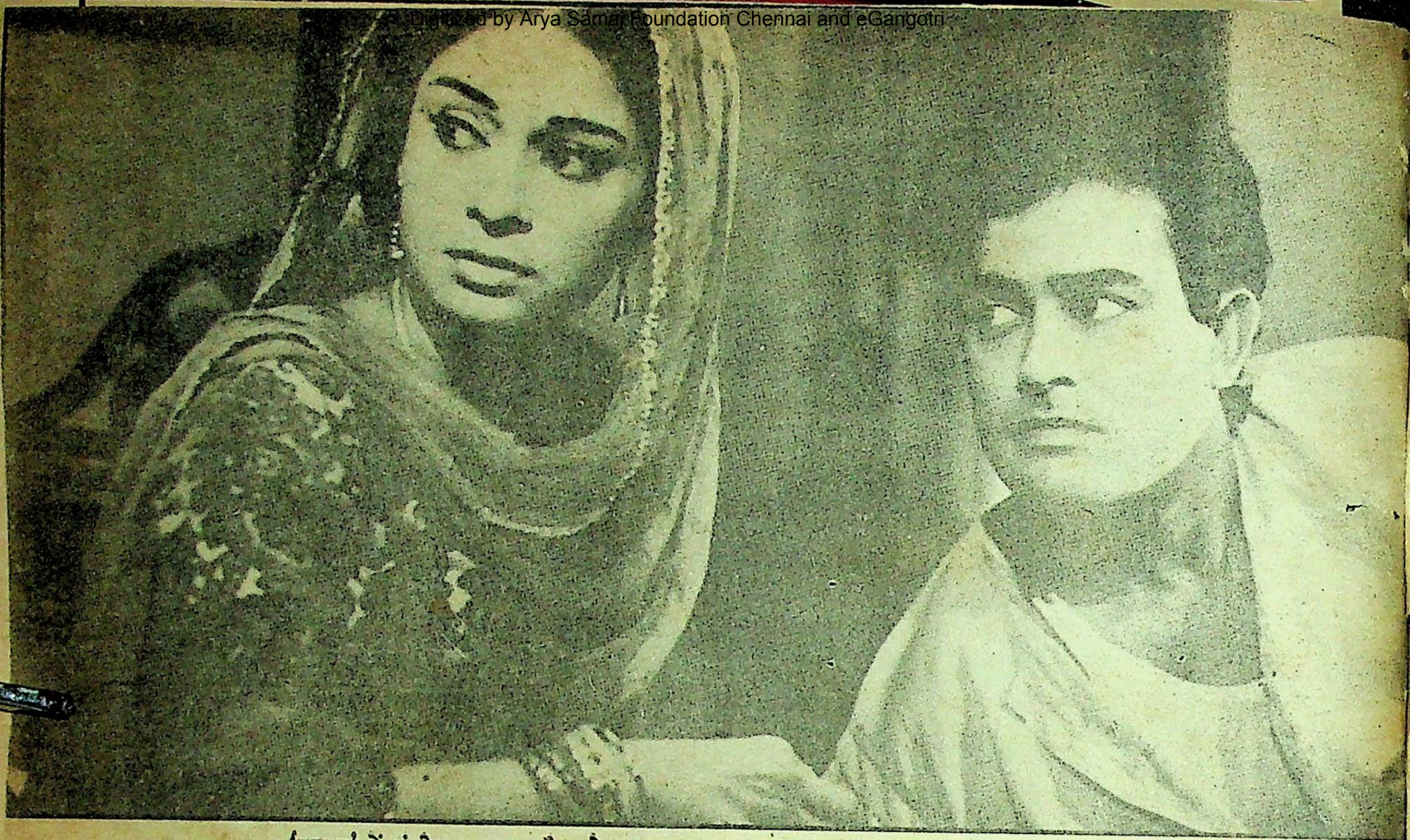

'दस्तक' में संजीव कुमार और रेहाना सुलतान : क्या सारी दुनिया रेड लाइट एरिया हो गयी है?

बेदी ने कला के साथ वेश्यावृत्ति नहीं की !

—ब्रजेश्वर मदान

अपने पचास साल के लेखकीय जीवन में पैंतीस साल बेदी ने फिल्मों को अर्पित किये. इन सालों में बेदी ने कई तरह के उतार-चढ़ाव देखे. जिसकी परिणति हम उनकी नवीनतम फिल्म 'आंखिन देखी' में देखते हैं, जो अभी तक दर्शकों का मुंह नहीं देख पायी. क्या यही इनाम था इस समर्पित फिल्मकार की इतनी सालों की सेवा का? प्रस्तुत है बेदी की फिल्मों का जायजा एक कथाकार, फिल्म पत्रकार की कलम से.

हिंदुस्तानी फिल्मों में अव्वल तो अच्छे लेखक गये नहीं, गये भी तो कई प्रेमचंद की तरह फिल्मों की घटिया व्यावसायिक रुचि के साथ समझौता न कर पानें के कारण वापस आ गये. जो वहां रहे, उन्होंने फिल्म लेखन को व्यावसायिक काम की तरह स्वीकार कर लिया. आर्थिक कारणों से फिल्मों के संवाद लिखने से शुरू करके अंत में घटिया और व्यावसायिक फिल्में लिखने तक पहुंच गये. अधिकतर लेखकों के साथ यही हुआ कि फिल्मों के संवाद लिखते-लिखते उनका समाज से भी संवाद टूट गया, लेकिन राजेंद्र सिंह बेदी उन लेखकों में से नहीं थे. भले ही वह फिल्मों में आर्थिक कारणों से आये लेकिन बाद में जब तक फिल्मी दुनिया में रहे, वह फिल्म को लेखक का माध्यम बनाने की कोशिश करते रहे. बात बहुत साफ है कि उन्हें फिल्मी दुनिया में लेखक की मुंशीवाली नियति स्वीकार नहीं थी.

जब बेदी साहेब फिल्मों में आये थे तो फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखने का काम मुंशी कहे जानेवाले मामूली लेखक किया करते थे और इस काम के लिए साहित्यिक सूझ-बूझ की जरूरत नहीं समझी जाती थ बल्कि ऐसी सूझ-बूझ फिल्मों के लिए अयोग्यत ही मानी जाती थी. कुछ घटनाएं इस प्रक की भी हुई थीं कि राजेंद्र सिंह बेदी को अप साहित्यिक कीर्ति के कारण ही काम मिलते मिलते रह गया.

सुना जाता है, एक जगह बेदी साहब को काम मिल रहा था, लेकिन रामानंद सागर ने वहां मुंशी प्रेमचंद का हवाला देते हुए कहा 'आप अपनी लाखों रुपये की गर्दन किस आदमी के हाथ में फंसा रहे हैं.' परिणाम यह निकला कि वह काम बेदी की बजाय सागर को मिल गया.

लेकिन उन दिनों एक अच्छी बात हुई थी कि बंबई की फिल्मी दुनिया में कुछ ऐसे बंगाली फिल्मकार आ चुके थे जो साहित्य से डरते नहीं थे. फिल्म 'बड़ी बहन' की पट कथा और संवाद लिखने के बाद बेदी की ख्याति उन निर्देशकों तक पहुंची. इस फिल्म के संवाद इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें अमिय चक्रवर्ती ने फिल्म 'दाग' के लिए अनुबंधित कर लिया. यह सन् 1949-50 की बात है. 'दाग' ने राजेंद्र सिंह बेदी को संवाद लेखक के रूप में पूरी तरह स्थापित कर दिया. 'दाग' के बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...उल्लेखनीय है कि इस फिल्म के दृश्य और संवाद अब तक फिल्मों में नकल किये जाते हैं. सबसे ज्यादा नकल किया जानेवाला दृश्य वह है जिसमें दिलीप कुमार भगवान की मूर्ति से लड़ रहा है. डायलाग कुछ इस प्रकार का था कि तू भी सेठ जगत नारायण का दोस्त है. आज भी फिल्मों में हीरो को उसी तर्ज पर भगवान से संवाद करते देखा जा सकता है. हां, सेठ का नाम जरूर बदल जाता है. यहां यह स्पष्ट करना भी जरूरी है कि आज उस प्रकार के दृश्य जरूर 'अति-नाटकीय' लग सकते हैं, लेकिन 'दाग' में बेदी के डायलाग नाटकीय नहीं लगते थे, बल्कि वह उन परिस्थितियों की स्वाभाविक परिणति के रूप में सामने आते थे जो उन्हें अमिय चक्रवर्ती ने संवाद लिखने के लिए प्रदान की थी.

ख्वाजा अहमद अब्बास तक ने इस फिल्म के बारे में लिखा है कि यह फिल्म आम रविश की फिल्मों से हटकर थी और बेदी साहब के संवादों ने उसे व्यावसायिक रविश से और भी परे हटा दिया था.

इस फिल्म के बाद ही बेदी साहब को विमल राय की फिल्म 'देवदास' मिली थी. जब पहली बार 'देवदास' बनी थी तो विमल राय ने उसमें कैमरामैन के तौर पर काम किया था. बिमल राय उन फिल्मकारों में से है जिन्होंने शुद्ध सिनेमाई कल्पनाशक्ति से सक्रिय होकर फिल्में बनायीं. वह जानते थे कि शरतचंद्र की साहित्यिकता से न्याय करने के लिए बेदी साहब के स्तर का लेखक होना चाहिए जो फिल्म के यथार्थ और भावनात्मक, दोनों पहलुओं से इंसाफ कर सकता है. इसमें शक नहीं कि बेदी साहब बिमल राय की कसौटी पर खरे उतरे. फिल्म देखते हुए लगता ही नहीं था कि फिल्म के पात्र किसी मुंशी के लिखे हुए संवाद बोल रहे हैं. बेदी साहब ने 'देवदास' के चरित्रों को जीवन की भाषा प्रदान की थी. प्रत्येक पात्र का मनोविज्ञान समझकर उसकी भाषा [illegible] किया गया है. [illegible] उनसे पहले बंबई हुई [illegible] जो फिल्म के चरित्रों के [illegible] ग्रंथियों को समझ सकें और [illegible] चरित्र के अनुसार उन्हें भाषा प्रदान कर सकें. अगर इस फिल्म के संवादों का विश्लेषण किया जाये तो उनमें सामंती समाज और मूल्यों का पतन देखा जा सकता है. 'देवदास' के अतिरिक्त बेदी साहब ने सोहराब मोदी के लिए 'मिर्जा गालिब' भी लिखी थी और इस फिल्म से उनका नाम हिंदुस्तान फिल्मोद्योग के चोटी के लेखकों में लिया जाने लगा.

बेदी साहब की लिखी हुई जिन फिल्मों का जिक्र ऊपर किया गया है, वे फिल्में फिल्मी भाषा में अपने जमाने की शाहकार फिल्में मानी जाती हैं. लेकिन बेदी साहब क्लासिकी रुचि की फिल्में लिखने के बावजूद साहित्य और सिनेमा में दवदासीय यथार्थ की ठोस भावुकता के कायल नहीं थे. वह हिंदी सिनेमा को यथार्थ के ठोस धरातल पर रखना चाहते थे. सिनेमा के माध्यम से भी दर्शकों को वही देना चाहते थे, जिसके लिए उन्हें साहित्य में शोहरत मिली थी. और वे मंटो व कृश्न चंदर की तरह साहित्य के एक स्तंभ बन गये थे. उनके सामने सवाल यह था कि जब कोई प्रवृत्ति साहित्य में सार्वभौमिक घटना होती है और युग का बोध एक होता है तो वह 'बोध' सिनेमा में सार्वभौमिक घटना क्यों नहीं हो सकता. आखिर क्यों फिल्मकार अपने युग की सच्चाई को नजरअंदाज कर रहे हैं. बिमल राय की 'दो बीघा जमीन' से वह बहुत प्रभावित हुए थे. उस फिल्म की सफलता से प्रेरित होकर उन्होंने स्वयं एक फिल्म कंपनी का निर्माण किया. फिल्म बनायी 'गर्म कोट'. 'गर्म कोट' में दो बीघा जमीन के हीरो-हीरोइन लिये—बलराज साहनी और निरूपा-राय.

इस कंपनी के माध्यम से वह यथार्थवादी फिल्मों के निर्माण को ही एक लेखक के रूप में सहयोग देना चाहते थे. दर्शकों को फिल्में के जरिये जीवन की वह उष्मा प्रदान करना चाहते थे जो व्यावसायिक सिनेमा नहीं दे पाता था. लेकिन 'गर्म कोट' बॉक्स आफिस पर सफल नहीं हुई. स्वयं बेदी के अनुसार फिल्म को 70 हजार का घाटा हुआ. यह सन् 1955 की बात है.

'गर्म कोट' उस समय के अनुसार अच्छी फिल्म थी, लेकिन ऐसा लगता था कि फिल्म में 'गर्म कोट' की कहानी की विषयवस्तु का सही विस्तार नहीं हो पाया था. कहानी को फैलाने के लिए उसमें कुछ 'स्टाक सिच्युएशन्स' जैसी चीजें आ गयीं. इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि फिल्म में 'भ्रष्ट व्यावसायिकता-वाला' कोई समझौता नहीं था. शायद दर्शकों को ठंड से कंपा देनेवाला यथार्थ रास नहीं आया. क्योंकि फिल्म में वैसी नकली स्थितियां नहीं थीं, जिनमें उष्मा ढूंढ़ने के दर्शक आदी हो चुके थे.

इससे यह तो स्पष्ट है कि राजेंद्र सिंह बेदी अपने-आपको सिर्फ पटकथा और संवाद लिखने तक सीमित नहीं रखना चाहते थे. वह शुद्ध सिनेमाई कल्पनाशक्ति से सक्रिय लेखक थे. व्यावसायिक फिल्में लिखते हुए भी फिल्मों को व्यावसायिकता से मुक्त करवाना चाहते थे. व्यावसायिक सिनेमा में भी उन्होंने स्तर की फिल्मों में ही काम स्वीकार किया. अपने समय के स्तरीय सिनेमा से जुड़े रहे. उदाहरण के तौर पर पहले बिमल राय के सिनेमा से. बिमल राय के लिए उन्होंने 'मधुमती' के भी डायलाग लिखे. बिमलराय के बाद वह ऋषिकेश मुकर्जी के लिए लिखते रहे और उनके लिए 'अनुराधा' 'अनुपमा', 'सत्यकाम' और 'अभिमान' जैसी फिल्में लिखीं.

'फागुन' की एक पार्टी में धर्मेंद्र और वहीदा रहमान

'सत्यकाम' के लिए उनके लिखे संवाद जिन्होंने फिल्म देखी है, उन्हें आज भी याद होंगे. जैसे वह समाज और व्यवस्था पर कोड़े बरसा रहे हों.

केवल उदाहरण के तौर पर 'सत्यकाम' का एक डायलाग था—"यह अफसर बहुत बदमाश है, रिश्वत बिल्कुल नहीं लेता." एक अन्य दृश्य में उनके यादगार संवाद थे, जिसमें धर्मेंद्र रेडियो से लड़ रहा है. ऋषिकेश मुकर्जी के लिए उन्होंने जो फिल्में लिखीं, उनमें से अधिकांश को राष्ट्रपति पुरस्कार मिले.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गर्म कोट' पर फिल्म बनाने के बाद भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी. उस फिल्म के बाद उन्होंने रेडियो के लिए लिखे अपने एक नाटक 'नक्काले मकानी' पर 'दस्तक' नाम से फिल्म बनायी.

यह एक ऐसे पति-पत्नी की कहानी थी, जिन्हें रहने के लिए 'रैड लाइट एरिया' में मकान मिलता है. यहां भी जीवन का एक कंपा देनेवाला ठंडा यथार्थ था जहां आदमी को सारी दुनिया रैड लाइट एरिया लगने लगे. उन्होंने रैड लाइट एरिया पर फिल्म बनायी, लेकिन कला के साथ कोई वेश्यावृत्ति नहीं की. यह फिल्म 'गर्म कोट' की तरह असफल नहीं रही.

इस फिल्म को उस वर्ष तीन राष्ट्रीय पुरस्कार मिले. यही नहीं, इस फिल्म से 'न्यू वेव' के नाम से फिल्मों में एक नया'ट्रेंड' शुरू हुआ.

'दस्तक' के बारे में यह भी उल्लेखनीय है कि इस फिल्म का निर्देशन भी राजेंद्र सिंह बेदी ने खुद किया था. शायद यह तजुर्बा उन्हें 'गर्म कोट' से हो गया था. 'दस्तक' की सफलता के बाद बेदी ने फिल्म 'फागुन' का निर्माण किया. यह फिल्म फ्लाप हो गयी. ख्वाजा अहमद अब्बास का कहना है कि बेदी साहब ने यह गलती शायद अपने बेटे के सुझाव से की जो चाहता था कि वह व्यावसायिक दृष्टि से हिट फिल्म बनायें. मगर यह विश्लेषण ठीक नहीं लगता. ऐसा लगता है कि बेदी साहेब ने 'फागुन' में नारी मनोविज्ञान का ऐसा विषय चुना जो हिंदी फिल्मों की दृष्टि से नया था और दर्शक उसे गहराई से न पकड़ पाता था और न उससे विचलित हो पाता था.

मानवीय रिश्तों की उष्मा और ठंडा यथार्थ इस फिल्म में भी था, लेकिन वह उसे 'दस्तक' की तरह जीवन के व्यापक संदर्भों से नहीं जोड़ पाये.

'फागुन' के बाद उन्होंने 'आंखिन देखी' का निर्माण किया—लेकिन वह फिल्म अभी रिलीज नहीं हुई. हो सकता है, उसमें भी जीवन का आंखें खोलनेवाला यथार्थ हो.

बेदी की कृति पर सबसे बड़ा शाहकार अभी आना बाकी है. एक निर्माता उनके उपन्यास 'एक चादर मैली-सी' पर फिल्म बना रहा है. गीता बाली की अगर मृत्यु न होती तो शायद यह फिल्म बेदी साहेब की जिंदगी में ही बन जाती.

अब देखना यह है कि नया फिल्मकार बेदी के ग्रामीण जीवन पर लिखे महाकाव्य को फिल्मी दुनिया का महाकाव्य बना पाता है या नहीं. □

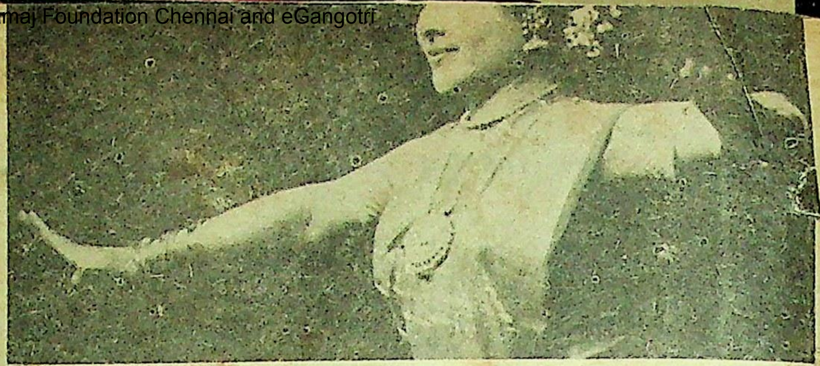

उसका अभिनय आत्मा की खुराक थी

राजेंद्र सिंह बेदी

वैजयंतीमाला की आंखें बहुत बड़ी-बड़ी हैं. ऐसे लगता है, जैसे उसे कुदरत ने नहीं, यामिनी राय ने बनाया हो. वे किसी हद तक कानों की ओर खिंची हुई हैं. उन्हें देखकर खयाल आता है कि वे सामने देखती हुई पीछे भी देख रही होंगी. ऐसी आंखें पूरे जलाल में आ जाने पर क्या होता होगा? उनमें से बरस रहा नूर मैंने नाटकीय दृश्यों में देखा है जहां उन आंखों के कारण संवाद लिखने और बोलने की जरूरत ही नहीं पड़ती.

मुझे वैजयंतीमाला के साथ चार फिल्मों में काम करने का मौका मिला है: 'देवदास', 'मधुमती', 'आस का पंछी' और 'रंगोली' में.

'देवदास' में वैजयंतीमाला का एक वेश्या का रोल था, जो किसी तरह भी हीरोइन का रोल नहीं कहा जा सकता था. लेकिन जिन्होंने शरतचंद्र का उपन्यास 'देवदास' पढ़ा है, वे जानते हैं कि चंद्रमुखी का रोल छोटा होने के बावजूद अपने आप में इतना तीखा है कि उसमें कि वह बात हीरोइन, पारो के हिस्से नहीं आती.

उन्हीं दिनों वैजयंतीमाला मद्रास की एक-दो हिंदी फिल्मों में काम कर चुकी थी. सो, जब वह हमारे सामने आयी तो हम उसे एक गुड़िया से ज्यादा नहीं समझते थे, जो चाबी देने से हाथ-पांव चलाने लगती है. उसके सामने हीरोइन के रोल में प्रसिद्ध बंगाली अभिनेत्री सुचित्रा सेन थी, जो सुंदर होने के साथ-साथ उच्चकोटि की कलाकार भी थी. उन्हीं दिनों उसे एक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला था. उसके सामने वैजयंतीमाला का टिक सकना बहुत मुश्किल था. और फिर उसके रोल में इतनी गहराई थी कि उसकी थाह को पहुंचना किसी ऐरे-गैरे का काम नहीं था. वेश्या चंद्रमुखी देवदास से इसलिए प्यार करती है कि वह पहला मर्द था, जिसने उससे नफरत की. उस नफरत ने चंद्रमुखी के अंदर की 'बुरी' स्त्री को हमेशा के लिए खत्म कर दिया और वह अपना पेशा छोड़कर शरीर के बजाय सिर्फ आत्मा बन गयी. वैजयंतीमाला ने कुछ उदास-सी अदाओं और बहकी-बहकी नजरों से उस बेहद मुश्किल रोल को बहुत बढ़िया ढंग से निभाया. जहां उसका नृत्य मनोरंजन का साधन था, वहां उसका अभिनय आत्मा की खुराक थी.

शायद इसीलिए बिमलराय ने वैजयंतीमाला को अपनी अगली फिल्म 'मधुमती' में... हिंदी फिल्मों के सबसे बड़े अभिनेता, दिलीप कुमार के साथ ... 'मधुमती' में कई ऐसे दृश्य आते हैं, जिनमें दिलीप कुमार केवल सुंदरता ...ह बेदी साहब को वैजयंतीमाला केवल मात्र प्रेम. वैजयंतीमाला ने दर्शकों के सामने प्रेम की वह ... रामानंद सागर को कि वे उसे पाने के लिए पुनर्जन्म की मुसीबतों को भी सहने के लिए तैयार थे. अगर वह पुनर्जन्म का सिलसिला न होता तो मैं उस फिल्म को कैसे लिखता?

'आस का पंछी' में वैजयंतीमाला का एक आम-सा रोल था और उसका कैनवस भी हीरो के मुकाबले में बहुत छोटा था. लेकिन रोल छोटा होने के बावजूद वैजयंतीमाला ने बहुत बड़ी कला का सबूत दिया.

'रंगोली' मैंने खुद लिखी और बनायी थी. तब वैजयंतीमाला के साथ मेरा सीधा वास्ता पड़ा, जिसमें कड़वे तजुरबे भी हुए और मीठे भी. लेकिन एक बात जो वैजयंतीमाला के हक में जा सकती है, वह यह कि एक बार 'कॉल-शीट' मंजूर कर लेने के बाद, बाकी कलाकारों के मुकाबले में, वह उसमें कम ही हेर-फेर करती है और सेट पर बहुत अच्छा सलूक होता है उसका. 'रंगोली' के शुरू में पहले ही दिन उसे लंबे संवादोंवाला एक नाटकीय दृश्य दिया गया था. हमारा खयाल था कि उसकी भाषा तमिल होने के कारण हिंदी लहजे को वह आसानी से नहीं अपना सकेगी. दृश्य एक दिन पहले शाम के समय उसके घर भेज दिया गया था. अगले दिन जब वह सेट पर आयी तो उसे न सिर्फ दृश्य का एक-एक शब्द याद था, बल्कि उसका लहजा और अदायगी भी देखने लायक थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar